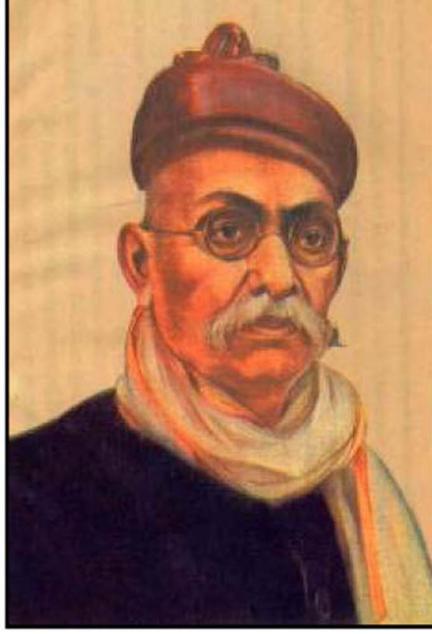


श्री साई सच्चरित्र

(हिन्दी)



मूल ग्रन्थ (मराठी भाषा) के रचयिता
कै. श्री गोविन्दराव रघुनाथ दाभोलकर(हेमाङ्गपन्त)

हिन्दी अनुवाद
श्री शिवराम ठाकुर

श्री साईबाबा संस्थान, शिरडी

श्री साई सच्चरित्र

प्रकाशक:
अध्यक्ष,
श्री साईबाबा संस्थान, शिरडी,
ता० राहाता जि० अहमदनगर

मुम्बई कार्यालय
साईनिकेतन,
८०४-बी, डा. आम्बेडकर रोड,
दादर, मुम्बई-४०० ०१४.
सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन
१७ वाँ संस्करण: सन् १९९९

हिंदी श्री साई सच्चरित्र



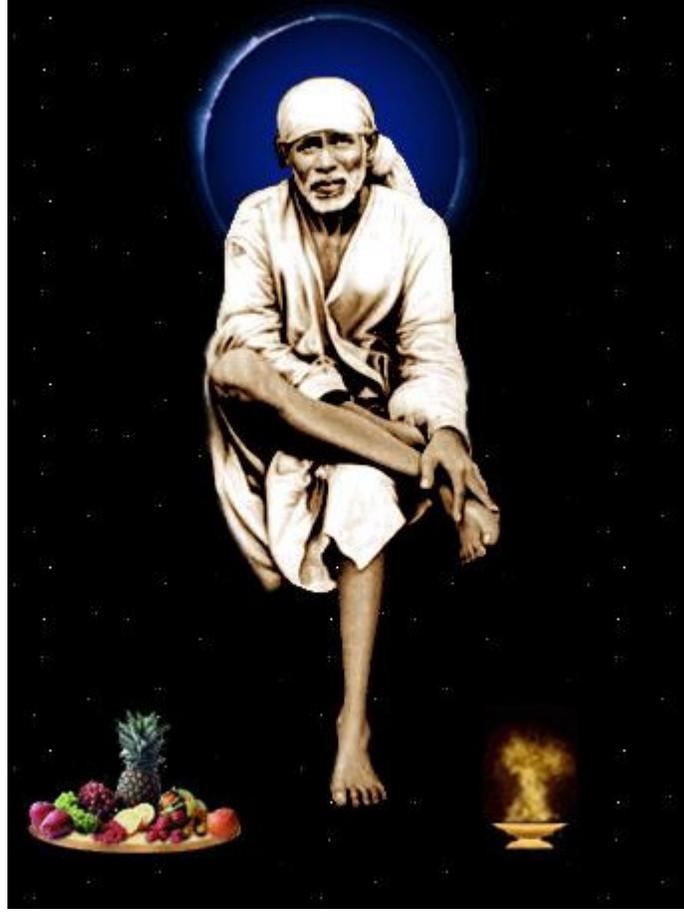
विषय सूची

१	वंदना, गेहू पीसने वाला एक अद्भुत सन्त, गेहूं पीसने की कथा तथा उसका तात्पर्य।
२	ग्रन्थ लेखन का ध्येय, कार्यारम्भ में असमर्थता और साहस, गरमागरम बहस, अर्थपूर्ण उपाधि, ' हेमाङ्गपन्त', गुरु की आवश्यकता ।
३	श्री साई बाबा की स्वीकृति, आज्ञा और प्रतिज्ञा, भक्तों का कार्य-समर्पण, बाबा की लीलायें, ज्योति-स्तम्भ स्वरूप, मातृ-प्रेम, रोहिला की कथा, उनके मधुर उपदेश।
४	श्री साई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन, संतों का अवतार कार्य, पवित्र तीर्थ शिरडी, श्री साई बाबा का व्यक्तित्व, गौली बुवा का अनुभव, श्री विठ्ठल का प्रगट होना, क्षीरसागर की कथा, दास गणू का प्रयोग-स्नान, तीन वाडे।
५	चाँद पाटील की बारात के साथ श्री साई बाबा का पुनः आगमन, अभिनन्दन तथा श्री साई शब्द से संबोधन, अन्य सन्तों से भेंट, वेशभूषा व नित्य कार्यक्रम, पादुकाओं की कथा, मोहिदीन के साथ कुश्ती और मोहिदीन के जीवन-परिवर्तन, जल का तेल में रुपान्तर, मिथ्या गुरु जौहर अली।
६	रामनवमी उत्सव, मस्जिद का जीर्णोद्धार, गुरु के स्पर्श की महिमा, चन्दन समारोह, उर्स और रामनवमी का समन्वय, मस्जिद का जीर्णोद्धार।
७	अद्भुत अवतार, श्री साई बाबा की प्रकृति, उनकी यौगिक क्रियाएँ, सर्वव्यापकता, कुष्ठ रोगी की सेवा, खापर्डे के पुत्र को प्लेग, पंढरपुर गमन, अद्भुत अवतार।
८	मानव जन्म का महत्व, श्री साई बाबा की भिक्षावृत्ति, बायजाबाई की सेवा- शुश्रूषा, श्री साईबाबा का शयन कक्ष, खुशालचन्द पर प्रेम।
९	विदा होते समय बाबा की आज्ञा का पालन और अवज्ञा करने के परिणामों के कुछ उदाहरण, भिक्षा वृत्ति और उसकी आवश्यकता, तर्खड़ कुटुम्ब के अनुभव।
१०	श्री साई बाबा का रहन-सहन, शयन-पटिया, शिरडी में निवास, उनके उपदेश, विनयशीलता, सुगम पथ।

<u>99</u>	सगुण ब्रह्म श्री साई बाबा, डाक्टर पंडित द्वारा पूजन, हाजी सिद्दीक फालके, तत्वों पर नियन्त्रण।
<u>92</u>	काका महाजनी, भाऊ साहेब धुमाल वकील, श्रीमती निमोणकर, नासिक के मुले शास्त्री, एक डाक्टर के द्वारा बाबा की लीलओं का अनुभव
<u>93</u>	अन्य कई लीलाएँ: रोग-निवारण:(१) भीमाजी पाटील, (२) बाला गणपत दर्जी, (३) बापूसाहेब बूटी, (४) आलन्दी स्वामी, (५) काका महाजन, (६) हरदा के दत्तोपन्त,
<u>94</u>	नांदेड़ के रतनजी वाड़िया, संत मौला साहेब, दक्षिणा मीमांसा, गणपतराव बोडस, श्रीमती तर्खंड, दक्षिणा का मर्म।
<u>95</u>	नारदीय कीर्तन-पद्धति, श्री चोलकर की शक्कररहित चाय, दो छिपकलियों के मिलन की कथा।
<u>96-97</u>	शीघ्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान की योग्यताएँ, बाबा का उपदेश, बाबा का वैशिष्ट्य।
<u>98-99</u>	हेमाडपंत पर बाबा की कृपा कैसे हुई ?, श्री साठे और श्रीमती राधाबाई देशमुख की कथा, उत्तम विचारों को प्रोत्साहन, उपदेश में नवीनता, निन्दा सम्बन्धी उपदेश, परिश्रम के लिए मजदूरी।
<u>20</u>	श्री काकासाहेब की नौकरानी द्वारा समाधान, श्री दासगणू की समस्या का विलक्षण समाधान, अद्वितीय शिक्षा पद्धति, ईशोपनिषद् की शिक्षा।
<u>21</u>	१) श्री. व्ही. एच. ठाकुर, (२) श्री अनन्तराव पाटणकर और (३) पंढरपुर के वकील की कथाएँ।
<u>22</u>	सर्प-विष से रक्षा: (१) श्री बाला साहेब मिरीकर, (२) श्री बापू साहेब बूटी (३) श्री अमीर शक्कर, (४) हेमाडपन्त, (५) बाबा के विचार।
<u>23</u>	योग और प्याज, शामा की सर्प-दंश से मुक्ति, हैजा: निवारणार्थ नियमों का उल्लंघन, गुरु भक्ति की कठिन परीक्षा।
<u>24</u>	श्री बाबा का हास्य-विनोद, चना लीला, (हेमाडपन्त) सुदामा की कथा, अण्णा चिंचणीकर और मौसी बाई की कथा, बाबा की भक्त-परायणता।
<u>25</u>	(१) दामू अण्णा कासार, अहमदनगर के रुई और अनाज के सौदे, (२) आम्र-लीला, प्रार्थना।
<u>26</u>	(१) भक्त पन्त, (२) हरिश्चन्द्र पितले और (३) गोपाल आम्बडेकर की कथाएँ।
<u>27</u>	भागवत और विष्णु सहस्रनाम प्रदान कर अनुगृहीत करना, गीता रहस्य, दादासाहेब
<u>28</u>	चिड़ियों का शिरड़ी को खींचा जाना: (१) लक्ष्मीचन्द, (२) बुरहानपुर की महिलाएँ,(३) मेघा का निर्वाण।
<u>29</u>	(१) मद्रासी भजनी मेला, (२) तेंडुलकर (पिता-पुत्र) (३) डॉ. केप्टन हाटे और (४) वामन नार्वेकर की कथाएँ।
<u>30</u>	शिरड़ी को खींचे गए भक्त : (१) वणी के काका वैद्य, (२) खुशाल चन्द, (३) बम्बई के रामलाल पंजाबी।
<u>31</u>	मुक्तिदान: (१) संन्यासी विजयानन्द, (२) बालाराम मानकर, (३) नूलकर, (४) मेघा और (५) बाघ की मुक्ति।
<u>32</u>	गुरु और ईश्वर की खोज: उपवास अमान्य, बाबा के सरकार।

<u>33</u>	उदी की महिमा: (१) बिच्छू का डंक, प्लेग की गांठ, जामनेर का विलक्षण चमत्कार, नारायणराव, बालामहाराज सुतार, अप्पासाहेब कुलकर्णी, हरीभाऊ कर्णिक।
<u>34</u>	उदी की महिमा: (२) डॉक्टर का भतीजा, डॉ. पिल्ले, शामा की भयाहू, ईरानी कन्या, हरदा के महानुभाव और बम्बई की महिला की प्रसव पीड़ा।
<u>35</u>	काका महाजनी के मित्र और सेठ, निर्बीज मुनक्के, बान्द्रा के एक गृहस्थ की अनिद्रा, बालाजी पाटील ने वासकर, साई बाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना।
<u>36</u>	आश्चर्यजनक कथाएँ: (१) गोवा के दो सज्जन, (२) श्रीमती औरंगाबादकर।
<u>37</u>	चावड़ी समारोह।
<u>38</u>	बाबा की हंडी, नानासाहेब द्वारा देव - मूर्ति की उपेक्षा, नैवेद्य वितरण, छाँछ (मट्ठा)का प्रसाद।
<u>39</u>	बाबा का संस्कृत ज्ञान: गीता के एक श्लोक की बाबा के द्वारा टीका, समाधि-मन्दिर का निर्माण।
<u>40</u>	श्री साई बाबा की कथाएँ: (१) बी.व्ही.देव की माता के उद्यापन समारोह में सम्मिलित होना, (२) हेमाङ्गपन्त के सहभोज में चित्र के रूप में प्रगट होना।
<u>41</u>	चित्र की कथा, चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी के पठन की कथा।
<u>42</u>	महासमाधि की ओर (१) भविष्य की आगाही, रामचन्द्र दादा पाटील और तात्या कोते पाटील की मृत्यु टालना, लक्ष्मीबाई शिन्दे को दान, समस्त प्राणियों में बाबा का निवास अंतिम क्षण।
<u>43-44</u>	महासमाधि की ओर: (२)पूर्व तैयारी-समाधि मंदिर, ईट का खण्डन, ७२ घण्टे की समाधि बापूसाहेब जोग का संन्यास, बाबा के अमृत तुल्य वचन।
<u>45</u>	सन्देह-निवारण: काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के शयन के लिए लकड़ी का तख्ता।
<u>46</u>	बाबा की गया यात्रा, बकरों की पूर्व जन्म की कथा।
<u>47</u>	पुनर्जन्म:विरभद्रप्पा और चेनबसप्पा (सर्प और मेंढक) की वार्ता।
<u>48</u>	भक्तों के संकट-निवारण:सद्गुरु के लक्षण, (१) शेवड़े और (२) सपटणेकर तथा श्रीमती सपटणेकर की कथाएँ (३) संतति-दान।
<u>49</u>	परीक्षा: (१) हरि कानोबा, (२) सोमदेव स्वामी, (३) नानासाहेब चान्दोरकर की कथाएँ।
<u>50</u>	(१) काकासाहेब दीक्षित, (२) श्री टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ।
<u>51</u>	उपसंहार: सद्गुरु साई की महानता, प्रार्थना, फलश्रुति और प्रसाद-याचना।

॥ ओम् श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः॥



॥ अथ श्रीसाईसच्चरित ॥ ॥ अध्याय १ ॥



वंदना, गेहूँ पीसने वाला एक अद्भुत सन्त - गेहूँ
पीसने की कथा तथा उसका तात्पर्य। वन्दना (भावार्थ)

पुरातन पद्धति के अनुसार श्री हेमाडपंत श्री साई सच्चरित्र का आरम्भ वन्दना द्वारा करते हैं।

(१) प्रथम श्री गणेश को साष्टांग नमन करते हैं, जो कार्य को निर्विघ्न समाप्त कर उस को यशस्वी बनाते हैं और कहते हैं कि श्री साई ही गणपति हैं।

(२) फिर भगवती सरस्वती को, जिन्होंने काव्य रचना की प्रेरणा दी और कहते हैं कि श्री साई भगवती से भिन्न नहीं हैं, जो कि स्वयं ही अपना जीवन संगीत बयान कर रहे हैं।

(३) फिर ब्रह्मा, विष्णु और महेश को, जो क्रमशः उत्पत्ति, स्थिति और संहारकर्त्ता हैं और कहते हैं कि श्री साई और वे अभिन्न हैं। वे स्वयं ही गुरु बनकर भवसागर से पार उतार देंगे।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

(४) फिर अपने कुलदेवता श्रीनारायण आदिनाथ की वन्दना करते हैं, जो कि कोकण में प्रगट हुए। कोकण वह भूमि है। जिसे श्री परशुरामजी ने समुद्र से निकालकर स्थापित किया था। तत्पश्चात् वे अपने कुल के आदिपुरुषों को नमन करते हैं।

(५) फिर श्री भारद्वाज मुनि को, जिनके गोत्र में उनका जन्म हुआ। पश्चात् उन ऋषियों को जैसे-याज्ञवल्क्य, भृगु, पाराशर, नारद, वेदव्यास, सनक-सनंदन, सनत्कुमार, शुक, शौनक, विश्वामित्र, वसिष्ठ, वाल्मीकि, वामदेव, जैमिनी, वैशंपायन, नव योगीन्द्र, इत्यादि तथा आधुनिक सन्त जैसे-निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई, जनार्दन, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम कान्हा, नरहरि आदि को नमन करते हैं।

(६) फिर अपने पितामह सदाशिव, पिता रघुनाथ और माता को, जो उनके बचपन में ही स्वर्ग गत हो गई थीं। फिर अपनी चाची को, जिन्होंने उनका भरण-पोषण किया और अपने प्रिय ज्येष्ठ भ्राता को नमन करते हैं।

(७) फिर पाठकों को नमन करते हैं, जिनसे उनकी प्रार्थना है कि वे एकाग्रचित्त होकर कथामृत का पान करें।

(८) अन्त में श्रीसच्चिदानंद सद्गुरु श्री साईनाथ महाराज को, जो कि श्री दत्तात्रेय के अवतार और उनके आश्रयदाता हैं और जो "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का बोध कराकर समस्त प्राणियों में एक ही ब्रह्म की व्याप्ति की अनुभूति कराते हैं।

श्री पाराशर, व्यास और शांडिल्य आदि के समान भक्ति के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कर अब ग्रंथकार महोदय निम्नलिखित कथा प्रारम्भ करते हैं।

गेहूँ पीसने की कथा

"सन् १९१० में मैं एक दिन प्रातःकाल श्री साई बाबा के दर्शनार्थ मस्जिद में गया। वहाँ का विचित्र दृश्य देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि साई बाबा मुँह हाथ धोने के पश्चात् चक्की पीसने की तैयारी करने लगे। उन्होंने फर्श पर एक टाट का टुकड़ा बिछा, उस पर हाथ से पीसने वाली चक्की रखी। वे कुछ गेहूँ सूप में निकाल लाये और अपनी कफनी की बाँहें चढ़ा, मुट्टी से चक्की में गेहूँ डालकर उन्हें पीसना आरम्भ कर दिया।

मैं सोचने लगा कि बाबा को चक्की पीसने से क्या लाभ है? उनके पास तो कोई है भी नहीं और वे अपना निर्वाह भी भिक्षावृत्ति द्वारा ही करते हैं। इस घटना के समय वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों की भी ऐसी ही धारणा थी। परंतु उनसे पूछने का साहस किसे था? बाबा के चक्की पीसने का समाचार शीघ्र ही सारे गाँव में फैल गया और उनकी यह विचित्र लीला देखने के हेतु तत्काल ही नर-नारियों की भीड़ मस्जिद की ओर दौड़ पड़ी।

उनमें से चार निडर स्त्रियाँ भीड़ को चीरती हुई ऊपर आईं और बाबा को बलपूर्वक वहाँ से हटाकर उनके हाथ से चक्की का खूँटा छीनकर तथा उनकी लीलाओं का गायन करते हुये उन्होंने गेहूँ पीसना प्रारम्भ कर दिया।

पहिले तो बाबा क्रोधित हुए, परन्तु फिर उनका भक्तिभाव देखकर वे शान्त होकर मुस्कराने लगे। पीसते-पीसते उन स्त्रियों के मन में ऐसा विचार आया कि बाबा के न तो घरद्वार है और न इनके कोई बाल-बच्चे हैं तथा न कोई देखरेख करने वाला ही है। वे स्वयं भिक्षावृत्ति द्वारा ही अपना निर्वाह करते हैं, अतः उन्हें भोजनादि के लिये आटे की आवश्यकता ही क्या है? बाबा तो परम दयालु हैं। हो सकता है कि यह आटा वे हम सब लोगों में ही वितरण कर दें। इन्हीं विचारों में मग्न रहकर गीत गाते-गाते ही उन्होंने सारा आटा पीस डाला। तब उन्होंने चक्की को हटाकर आटे को चार समान भागों में विभक्त कर लिया और अपना-अपना भाग लेकर वहाँ से जाने को उद्यत हुईं। अभी तक शान्त मुद्रा में निमग्न बाबा तत्क्षण ही क्रोधित हो उठे और उन्हें अपशब्द कहने लगे-" स्त्रियो ! क्या तुम पागल हो गई हो? तुम किसके बाप का माल हड़पकर ले जा रही हो? क्या कोई कर्जदार का माल है, जो इतनी आसानी से उठाकर लिये जा रही हो? अच्छा, अब एक कार्य करो कि इस आटे को ले जाकर गाँव की मेंड़(सीमा) पर बिखेर आओ।"

मैंने शिरडीवासियों से प्रश्न किया कि जो कुछ बाबाने अभी किया है, उसका यथार्थ में क्या तात्पर्य है? उन्होंने मुझे बतलाया कि गाँव में विषूचिका(हैजा) का जोरों से प्रकोप है और उसके निवारणार्थ ही बाबा का यह उपचार है। अभी जो कुछ आपने पीसते देखा था, वह गेहूँ नहीं, वरन् विषूचिका (हैजा) थी, जो पीसकर नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई है। इस घटना के पश्चात् सचमुच विषूचिका की संक्रामकता शांत हो गई और ग्रामवासी सुखी हो गये।

यह जानकर मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा। मेरा कौतूहल जागृत हो गया। मैं स्वयं से प्रश्न करने लगा कि आटे और विषूचिका (हैजा) रोग का भौतिक तथा पारस्परिक क्या सम्बंध है? इसका सूत्र कैसे ज्ञात हो? घटना बुद्धिगम्य सी प्रतीत नहीं होती। अपने हृदय की सन्तुष्टि के हेतु इस मधुर लीला का मुझे चार शब्दों में महत्व अवश्य प्रकट करना चाहिए। लीला पर चिन्तन करते हुए मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा और इस प्रकार बाबा का जीवन-चरित्र लिखने के लिए मुझे प्रेरणा मिली। यह तो सब लोगों को विदित ही है कि यह कार्य बाबा की कृपा और शुभ आशीर्वाद से सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।”

आटा पीसने का तात्पर्य

शिरडीवासियों ने इस आटा पीसने की घटना का जो अर्थ लगाया, वह तो प्रायः ठीक ही है; परन्तु उसके अतिरिक्त मेरे विचार से कोई अन्य अर्थ भी है। बाबा शिरडी में ६० वर्षों तक रहे और इस दीर्घ काल में उन्होंने आटा पीसने का कार्य प्रायः प्रतिदिन ही किया। पीसने का अभिप्राय गेहूँ से नहीं, वरन् अपने भक्तों के पापों, दुर्भाग्यों, मानसिक तथा शारीरिक तापों से था। उनकी चक्की के दो पाटों में ऊपर का पाट भक्ति तथा नीचे का कर्म था। चक्की का मुठिया जिससे कि वे पीसते थे, वह था ज्ञान। बाबा का दृढ़ विश्वास था कि जब तक मनुष्य के हृदय से प्रवृत्तियाँ, आसक्ति, घृणा तथा अहंकार नष्ट नहीं हो जाते, जिनका नष्ट होना अत्यन्त दुष्कर है; तब तक ज्ञान तथा आत्मानुभूति संभव नहीं है।

यह घटना कबीरदासजी की इसके तदनुरूप घटना की स्मृति दिलाती है। कबीरदास जी एक स्त्री को अनाज पीसते देखकर अपने गुरु निपटनिरंजन से कहने लगे कि मैं इसलिए रुदन कर रहा हूँ कि जिस प्रकार अनाज चक्की में पीसा जाता है, उसी प्रकार मैं भी भवसागर रुपी चक्की में पीसे जाने की यातना का अनुभव कर रहा हूँ।^१ उनके गुरु ने उत्तर दिया कि घबड़ाओ नहीं, चक्की के केन्द्र में जो ज्ञान रुपी दंड है, उसी को दृढ़ता से पकड़ लो, जिस प्रकार तुम मुझे करते देख रहे हो। उससे दूर मत जाओ; बस, केन्द्र की ओर ही अग्रसर होते जाओ और तब यह निश्चित है कि तुम इस भवसागर रुपी चक्की से अवश्य ही बच जाओगे।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

१. चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में, साबूत बचान कोय॥ - कबीर

॥ अथ श्रीसाईसच्चरित ॥ ॥ अध्याय २ ॥



ग्रंथ लेखन का ध्येय, कार्यारम्भ में असमर्थता और साहस, गरमागरम बहस, अर्थपूर्ण उपाधि हेमाडपन्त, गुरु की आवश्यकता।

गत अध्याय में ग्रन्थकार ने अपने मौलिक ग्रन्थ श्री साई सच्चरित्र (मराठी भाषा) में उन कारणों पर प्रकाश डाला था, जिनके द्वारा उन्हें ग्रन्थरचना के कार्य को आरम्भ करने की प्रेरणा मिली। अब वे ग्रन्थ पठन के योग्य अधिकारियों तथा अन्य विषयों का इस अध्याय में विवेचन करते हैं।

ग्रंथ लेखन का हेतु

किस प्रकार विषूचिका(हेजा) के रोग के प्रकोप को आटा पिसवाकर तथा उसको ग्राम के बाहर फेंककर रोका तथा उसका उन्मूलन किया, बाबा की इस लीला का प्रथम अध्याय में वर्णन किया जा चुका है। मैंने और भी लीलाएँ सुनीं, जिनसे मेरे हृदय को अति आनंद हुआ और यही आनन्द का स्रोत काव्य(कविता) रूप में प्रकट हुआ। मैंने यह भी सोचा कि इन महान् आश्चर्यजनक लीलाओं का वर्णन बाबा के भक्तों के लिये मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद सिद्ध होगा तथा उनके पाप समूल नष्ट हो जाएंगे। इसलिए मैंने बाबा की पवित्र जीवन गाथा और मधुर उपदेशों का लेखन प्रारम्भ कर दिया। श्री साई की जीवनी न तो उलझनपूर्ण है और न संकीर्ण ही है, वरन् सत्य और आध्यात्मिक मार्ग का वास्तविक दिग्दर्शन कराती है।

कार्य आरम्भ करने में असमर्थता और साहस

श्री. हेमाडपन्त को यह विचार आया कि मैं इस कार्य के लिए उपयुक्त पात्र नहीं हूँ। मैं तो अपने परम मित्र की जीवनी से भी भली भाँति परिचित नहीं हूँ और न ही अपनी प्रकृति से। तब फिर मुझ जैसा मूढ़मति भला एक महान् संतपुरुष की जीवनी लिखने का दुस्साहस कैसे कर सकता है? अवतारों की प्रवृत्ति के वर्णन में वेद भी अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं। किसी सन्त का चरित्र समझने के लिए स्वयं को पहले सन्त होना नितांत आवश्यक है। फिर मैं तो उनका गुणगान करने के सर्वथा अयोग्य ही हूँ। संत की जीवनी लिखने में एक महान् साहस की आवश्यकता है और कहीं ऐसा न हो कि चार लोगों के समक्ष हास्य का पात्र बनना पड़े, इसलिए श्री साई बाबा की कृपा प्राप्त करने के लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

महाराष्ट्र के संतश्रेष्ठ श्री ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है कि संतचरित्र के रचयिता से परमात्मा अति प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि-“साधुचरित शुभ सरिस कपासू। निरस विषद गुणमय फल जासू।। जो सहि दुःख पर छिद्र दुरावा। वंदनीय जेहि जग जस पावा।।” भक्तों को भी संतों की सेवा करने की इच्छा बनी रहती है। संतों की कार्य पूर्ण करा लेने की प्रणाली भी विचित्र ही है। यथार्थ प्रेरणा तो संत ही किया करते हैं, भक्त तो निमित्त मात्र, या कहिए कार्यपूर्ति के लिये एक यंत्र मात्र हैं। उदाहरणार्थ शक सं. १७०० में कवि महीपति को संत चरित्र लेखन की प्रेरणा हुई। सन्तों ने अंतःप्रेरणा पैदा की और कार्य पूर्ण हो गया। इसी प्रकार शक सं. १८०० में श्री दासगणू की सेवा स्वीकार हुई। महीपति ने चार काव्य रचे-भक्तविजय, संतविजय, भक्तलीलामृत और संतलीलामृत और दासगणू ने केवल दो भक्तलीलामृत और संतकथामृत-जिसमें आधुनिक संतों के चरित्रों का वर्णन है। भक्तलीलामृत के अध्याय ३१, ३२, और ३३ तथा संत कथामृत के ५७ वें अध्याय में श्रीसाई बाबा की मधुर जीवनी तथा अमूल्य उपदेशों का वर्णन सुन्दर एवं रोचक ढंग से किया गया है। इनका उद्धरण श्रीसाईलीला पत्रिका के अंक ११, १२, और १७ में दिया गया है। पाठकों से इनके पठन का अनुरोध है। इसी प्रकार श्रीसाईबाबा की अद्भुत लीलाओं का वर्णन एक बहुत सुन्दर छोटीसी पुस्तिका-श्रीसाईनाथ भजनमाला में किया गया है। इसकी रचना बान्द्रा की श्रीमती सावित्रीबाई रघुनाथ तेंडुलकर ने की है।

श्रीदासगणू महाराज ने भी श्रीसाईबाबा पर कई मधुर कविताओं की रचना की है। एक और भक्त अमीदास भवानी मेहता ने भी बाबा की कुछ कथाओं को गुजराथी में प्रकाशित किया है। 'साई प्रभा' नामक पत्रिका में भी कुछ लीलाएँ शिरडी के दक्षिणा भिक्षा संस्थान द्वारा प्रकाशित की गई हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जब श्रीसाईनाथ महाराज के जीवन पर प्रकाश डालने वाला इतना साहित्य उपलब्ध है, फिर और एक ग्रन्थ 'साई सच्चरित्र' रचने की आवश्यकता ही कहाँ पैदा होती है? इसका उत्तर केवल यही है कि श्रीसाई बाबा की जीवनी सागर के सदृश अगाध, विस्तृत और यथार्थ है। यदि उसमें गहरा गोता लगाया जाए तो ज्ञान एवं भक्ति रूपी अमूल्य रत्नों की सहज ही प्राप्ति हो सकती है, जिनसे मुमुक्षुओं को बहुत लाभ होगा। श्रीसाई बाबा की जीवनी, उनके दृष्टान्त एवं उपदेश महान् आश्चर्य से परिपूर्ण हैं। दुःख और दुर्भाग्यग्रस्त मानवों को इनसे शान्ति और सुख प्राप्त होगा तथा लोक व परलोक में श्रेयस् की प्राप्ति होगी। **यदि श्री साई बाबा के उपदेशों का, जो कि वैदिक शिक्षा के समान ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं, ध्यानपूर्वक श्रवण एवं मनन किया जाए तो भक्तों को अपने मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाएगी,** अर्थात् ब्रह्म से अभिन्नता, अष्टांग योग की सिध्द और समाधि आनन्द आदि की प्राप्ति सरलता से हो जाएगी। यह सोचकर ही मैंने चरित्र की कथाओं को संकलित करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही यह विचार भी आया कि मेरे लिए सबसे उत्तम साधना भी केवल यही है। जो भोले-भाले प्राणी श्री साई बाबा के दर्शनों से अपने नेत्र सफल करने के सौभाग्य से वंचित रहे हैं, उन्हें यह चरित्र अति आनन्ददायक प्रतीत होगा। अतः मैंने श्रीसाईबाबा के उपदेश और दृष्टान्तों की खोज प्रारम्भ कर दी, जो कि उनकी असीम सहज प्राप्त आत्मानुभूतियोंका निचोड़ था। मुझे बाबा ने प्रेरणा दी और मैंने भी अपना अहंकार उनके श्री-चरणों पर न्योछावर कर दिया। मैंने सोचा कि अब मेरा पथ अति सुगम हो गया है और बाबा मुझे इहलोक और परलोक में सुखी बना देंगे।

मैं स्वयं बाबा की आज्ञा प्राप्त करने का साहस नहीं कर सकता था। अतः मैंने श्री. माधवराव उपनाम शामा से, जो कि बाबा के अंतरंग भक्तों में से थे, इस हेतु प्रार्थना की। उन्होंने इस कार्य के निमित्त श्री साईबाबा से विनम्र शब्दों में इस प्रकार प्रार्थना की कि " ये अण्णासाहेब आपकी जीवनी लिखने के लिए अति उत्सुक हैं। परन्तु आप कृपया ऐसा न कहना कि मैं तो एक फकीर हूँ तथा मेरी जीवनी लिखने की आवश्यकता ही क्या है? आपकी केवल कृपा और अनुमति से ही ये लिख सकेंगे, अथवा आपके श्री-चरणों का पुण्यप्रताप ही इस कार्य को सफल बना देगा। आपकी अनुमति तथा आशीर्वाद के अभाव में कोई भी कार्य यशस्वी नहीं हो सकता।" यह प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई। उन्होंने आश्वासन और उदी देकर अपना वरद-हस्त मेरे मस्तक पर रखा और कहने लगे कि " इन्हें जीवनी और दृष्टान्तों को एकत्रित कर लिपिबद्ध करने दो, मैं इनकी सहायता करूँगा। **मैं स्वयं ही अपनी जीवनी लिखकर भक्तों की इच्छा पूर्ण करूँगा।** परन्तु इनको अपना अहं त्यागकर मेरी शरण में आना चाहिए। जो अपने जीवन में इस प्रकार आचरण करता है, उसकी मैं अत्यधिक सहायता करता हूँ। मेरी जीवन-कथाओं की बात तो सहज है, मैं तो इन्हें घर बैठे अनेक प्रकार से सहायता पहुँचाता हूँ। जब इनका अहं पूर्णतः नष्ट हो जाएगा और खोजनेपर लेशमात्र भी न मिलेगा, तब मैं इनके अन्तःकरण में प्रकट होकर स्वयं ही अपनी जीवनी लिखूँगा। मेरे चरित्र और उपदेशों के श्रवण मात्र से ही भक्तों के हृदय में श्रद्धा जागृत होकर सरलतापूर्वक आत्मानुभूति एवं परमानन्द की प्राप्ति हो जाएगी। ग्रन्थ में अपने मत का प्रतिपादन और दूसरों का खंडन तथा अन्य किसी विषय के पक्ष या विपक्ष में व्यर्थ के वादविवाद की कुचेष्टा नहीं होनी चाहिए।"

अर्थपूर्ण उपाधि 'हेमाडपंत'

'वादविवाद' शब्द से हमको स्मरण हो आया कि मैंने पाठकों को वचन दिया है कि 'हेमाडपंत' उपाधि किस प्रकार प्राप्त हुई, इसका वर्णन करूँगा। अब मैं उसका वर्णन करता हूँ।

श्री काकासाहेब दीक्षित व नानासाहेब चाँदोरकर मेरे अति घनिष्ठ मित्रों में से थे। उन्होंने मुझसे शिरडी जाकर श्रीसाई बाबा के दर्शनों का लाभ उठाने का अनुरोध किया। मैंने उन्हें वचन दिया, परन्तु कुछ बाधा आ जाने के कारण मेरी शिरडी-यात्रा स्थगित हो गई। मेरे एक घनिष्ठ मित्र का पुत्र लोनावला में रोगग्रस्त हो गया था। उन्होंने सभी सम्भव आधिभौतिक और आध्यात्मिक उपचार किये, परन्तु ऐसे सभी प्रयत्न निष्फल हुए और ज्वर किसी प्रकार भी कम न हुआ। अन्त में उन्होंने अपने गुरुदेव को उसके सिरहाने बिठलाया, परन्तु परिणाम पूर्ववत् ही हुआ। यह घटना देखकर मुझे विचार आया कि जब गुरु एक बालक के प्राणों की भी रक्षा करने में असमर्थ हैं, तब उनकी उपयोगिता ही क्या है? और जब उनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं, तब फिर शिरडी जाने से क्या प्रयोजन? ऐसा सोचकर

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

मैं सोचने लगा कि बाबा 'हेमाडपंत' के नाम से मुझे क्यों सम्बोधित करते हैं? यह शब्द तो 'हेमाद्रिपंत' का अपभ्रंश है। 'हेमाद्रिपंत' देवगिरि के यादव राजवंशी महाराजा महादेव और रामदेव के विख्यात मंत्री थे। वे 'उच्च कोटि के विद्वान्, उत्तम प्रकृति और 'चतुर्वर्ग चिंतामणि'(जिसमें आध्यात्मिक विषयों का विवेचन है) और 'राजप्रशस्ति' जैसे उत्तम काव्यों के रचयिता थे। उन्होंने ही हिसाब-किताब रखने की नवीन प्रणाली का आविष्कार किया था और बही खाते की पद्धति को जन्म दिया था और कहाँ मैं इसके विपरीत एक अज्ञानी, मूर्ख और मंदमति हूँ। अतः मेरी समझ में यह न आ सका कि मुझे इस विशेष उपाधि से विभूषित करने का क्या तात्पर्य है? गहन विचार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कहीं मेरे अहंकार को चूर्ण करने के लिए ही तो बाबा ने इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया है, ताकि मैं भविष्य में सदैव के लिए निरभिमानी एवं विनम्र हो जाऊँ, अथवा कहीं यह मेरे वाक्चातुर्य के उपलक्ष में मेरी प्रशंसा तो नहीं है?

भविष्य पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि बाबा के द्वारा 'हेमाडपंत' की उपाधि से विभूषित करना कितना अर्थपूर्ण और भविष्यगोचर था। सर्वविदित है कि कालान्तर में दाभोलकर ने श्रीसाईबाबा संस्थान का प्रबन्ध कितने सुचारु एवं विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था। हिसाब-किताब आदि कितने उत्तम प्रकार से रखे तथा साथ ही साथ महाकाव्य 'साई सच्चरित्र' की रचना भी की। इस ग्रन्थ में महत्वपूर्ण और आध्यात्मिक विषयों जैसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, शरणागति व आत्मनिवेदन आदि का समावेश है।

गुरु की आवश्यकता

इस विषय में बाबा ने क्या उद्गार प्रकट किये, इस पर हेमाडपंत द्वारा लिखित कोई लेख या स्मृतिपत्र प्राप्त नहीं है। परंतु काकासाहेब दीक्षित ने इस विषय पर उनके लेख प्रकाशित किये हैं। बाबा से भेंट करने के दूसरे दिन 'हेमाडपंत' और काकासाहेब ने मस्जिद में जाकर घर लौटने की अनुमति माँगी। बाबा ने स्वीकृति दे दी।

किसी ने प्रश्न किया- " बाबा, कहाँ जाएँ ?"

उत्तर मिला-"ऊपर जाओ।"

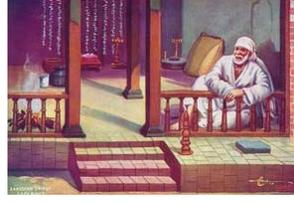
प्रश्न- " मार्ग कैसा है?"।

बाबा- अनेक पंथ हैं। यहाँ से भी एक मार्ग है। परन्तु यह मार्ग दुर्गम है तथा सिंह और भेड़िये भी मिलते हैं।

काकासाहेब- यदि पथ प्रदर्शक भी साथ हो तो?

बाबा- तब कोई कष्ट न होगा। मार्ग-प्रदर्शक तुम्हारी सिंह, भेड़िये और खन्दकों से रक्षा कर तुम्हें सीधे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। परन्तु उसके अभाव में जंगल में मार्ग भूलने या गड्ढे में गिर जाने की सम्भावना है। दाभोलकर भी उपयुक्त प्रसंग के अवसर पर वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने सोचा कि जो कुछ बाबा कह रहे हैं, वह " गुरु की आवश्यकता क्यों है?" इस प्रश्न का उत्तर है(साईलीला भाग१, संख्या ५ व पृष्ठ ४७ के अनुसार)। उन्होंने सदा के लिए मन में यह गाँठ बाँध ली कि अब कभी इस विषय पर वादविवाद नहीं करेंगे कि स्वतंत्र या परतंत्र व्यक्ति आध्यात्मिक विषयों के लिए कैसा सिद्ध होगा? प्रत्युत्त इसके विपरीत यथार्थ में परमार्थ-लाभ केवल गुरु के उपदेश-पालन में ही निहित है। इन उपदेशों का वर्णन मूल काव्य-ग्रंथ के इसी अध्याय में किया गया है, जिसमें लिखा है कि राम और कृष्ण महान अवतारी होते हुए भी आत्मानुभूति के लिए राम को अपने गुरु वसिष्ठ और कृष्ण को अपने गुरु सांदीपनि की शरण में जाना पड़ा था। इस मार्ग में उन्नति प्राप्त करने के लिए केवल श्रद्धा और धैर्य - ये ही दो गुण सहायक हैं।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥



श्री साईबाबा की स्वीकृति, आज्ञा और प्रतिज्ञा, भक्तों को कार्य समर्पण, बाबा की लीलाएँ ज्योतिस्तंभ स्वरूप, मातृप्रेम - रोहिला की कथा, उनके मधुर अमृतोपदेश।

श्री साईबाबा की स्वीकृति और वचन देना

जैसा कि गत अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, बाबा ने सच्चरित्र लिखने की अनुमति देते हुए कहा कि सच्चरित्र लेखन के लिए मेरी पूर्ण अनुमति है। तुम अपना मन स्थिर कर, मेरे वचनों में श्रद्धा रखो और निर्भय होकर कर्तव्य पालन करते रहो। यदि मेरी लीलाएँ लिखी गईं तो अविद्या का नाश होगा तथा ध्यान व भक्तिपूर्वक श्रवण करने से, दैहिक बुद्धि नष्ट होकर भक्ति और प्रेम की तीव्र लहर प्रवाहित होगी और जो इन लीलाओं की अधिक गहराई तक खोज करेगा, उसे ज्ञानरूपी अमूल्य रत्न की प्राप्ति हो जायेगी।

इन वचनों को सुनकर हेमाडपंत को अति हर्ष हुआ और वे निर्भय हो गए। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि अब कार्य अवश्य ही सफल होगा।

बाबा ने शामा की ओर दृष्टिपात कर कहा-“ जो, प्रेमपूर्वक मेरा नामस्मरण करेगा, मैं, उसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा। उसकी भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। जो मेरे चरित्र और कृत्यों का श्रद्धापूर्वक गायन करेगा, उसकी मैं हर प्रकार से सदैव सहायता करूँगा। जो भक्तगण हृदय और प्राणों से मुझे चाहते हैं, उन्हें मेरी कथाएँ श्रवण कर स्वभावतः प्रसन्नता होगी। विश्वास रखो कि जो कोई मेरी लीलाओं का कीर्तन करेगा, उसे परमानन्द और चिरसन्तोष की उपलब्धि हो जायेगी। यह मेरा वैशिष्ट्य है कि जो कोई अनन्य भाव से मेरी शरण आता है, जो श्रद्धापूर्वक मेरा पूजन, निरन्तर स्मरण और मेरा ही ध्यान किया करता है, उसको मैं मुक्ति प्रदान कर देता हूँ।” १

१. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेम वहाम्यहम् ॥ गीता ९ ॥२२॥

“ जो नित्यप्रति मेरा नामस्मरण और पूजन कर मेरी कथाओं और लीलाओं का प्रेमपूर्वक मनन करते हैं, ऐसे भक्तों में सांसारिक वासनाएँ और अज्ञानरूपी प्रवृत्तियाँ कैसे ठहर सकती हैं ? मैं उन्हें मृत्यु के मुख से बचा लेता हूँ।”

“ मेरी कथाएँ श्रवण करने से मुक्ति हो जाएगी। अतः मेरी कथाओं को श्रद्धापूर्वक सुनो, मनन करो। सुख और सन्तोष-प्राप्ति का सरल मार्ग ही यही है। इससे श्रोताओं के चित्त को शांति प्राप्त होगी और जब ध्यान प्रगाढ़ और विश्वास दृढ़ हो जायगा, तब अखंड चैतन्यघन से अभिन्नता प्राप्त हो जायगी। केवल ‘साई’ ‘साई’ के उच्चारणमात्र से ही उनके समस्त पाप नष्ट हो जाएंगे।”

भिन्न भिन्न कार्यों की भक्तों को प्रेरणा

भगवान अपने किसी भक्त को मन्दिर, मठ, किसी को नदी के तीर पर घाट बनवाने, किसी को तीर्थपर्यटन करने और किसी को भगवत् कीर्तन करने एवं भिन्न-भिन्न कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। परन्तु उन्होंने मुझे ‘साई सच्चरित्र’-लेखन की प्रेरणा की। किसी भी विद्या का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण मैं इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य था। अतः मुझे इस दुष्कर कार्य का दुस्साहस क्यों करना चाहिए? श्री साई महाराज की यथार्थ जीवनी का वर्णन करने की सामर्थ्य किसे है? उनकी कृपा मात्र से ही कार्य सम्पूर्ण होना सम्भव है। इसलिए जब मैंने लेखन प्रारम्भ किया तो बाबा ने मेरा अहं नष्ट कर दिया और उन्होंने स्वयं अपना चरित्र रचा। अतः इस चरित्र का श्रेय उन्हीं को है, मुझे नहीं। जन्मतः ब्राह्मण होते हुए भी मैं दिव्य चक्षु-विहीन था, अतः ‘साई सच्चरित्र’ लिखने में सर्वथा अयोग्य

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

था। परन्तु श्रीहरिकृपा से क्या सम्भव नहीं है? मूक भी वाचाल हो जाता है और पंगु भी गिरिपर चढ़ जाता है। अपनी इच्छानुसार कार्य पूर्ण करने की युक्ति वे ही जानें। हारमोनियम और बंसी को यह आभास कहाँ कि ध्वनि कैसे प्रसारित हो रही है? इसका ज्ञान तो वादक को ही है। चन्द्रकांतमणि की उत्पत्ति और ज्वार भाटे का रहस्य मणि अथवा उदधि नहीं, वरन् शशिकलाओं के घटने-बढ़ने में ही निहित है।

बाबा का चरित्र: ज्योतिस्तम्भ स्वरूप

समुद्र में अनेक स्थानोंपर ज्योतिस्तम्भ इसलिये बनाए जाते हैं, जिससे नाविक चट्टानों और दुर्घटनाओं से बच जाएँ और जहाज को कोई हानि न पहुँचे। इस भवसागर में श्री साईबाबा का चरित्र ठीक उपर्युक्त भाँति ही उपयोगी है। वह अमृत से भी अति मधुर और सांसारिक पथ को सुगम बनाने वाला है। जब वह कानों के द्वारा हृदय में प्रवेश करता है, तब दैहिक बुद्धि नष्ट हो जाती है और हृदय में एकत्रित करने से, समस्त कुशंकाएँ अदृश्य हो जाती हैं। अहंकार का विनाश हो जाता है तथा बौद्धिक आवरण लुप्त होकर ज्ञान प्रगट हो जाता है। **बाबा की विशुद्ध कीर्ति का वर्णन निष्ठापूर्वक श्रवण करने से भक्तों के पाप नष्ट होंगे। अतः यह मोक्ष प्राप्ति का भी सरल साधन है।** सत्ययुग में शम तथा दम, त्रेता में त्याग, द्वापर में पूजन और कलियुग में भगवत्कीर्तन ही मोक्ष का साधन है। यह अन्तिम साधन, चारों वर्णों के लोगों को साध्य भी है। अन्य साधन, योग, ध्यान-धारणा आदि आचरण करने में कठिन हैं, परन्तु चरित्र तथा हरिकीर्तन का श्रवण तो अत्यन्त ही सुलभ है। केवल उनपर ध्यान देने की ही आवश्यकता है। कथा-श्रवण और कीर्तन से इन्द्रियों की स्वाभाविक विषयासक्ति नष्ट हो जाती है और भक्त वासना-रहित होकर आत्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर हो जाता है। इसी फल को प्रदान करने के हेतु उन्होंने सच्चरित्र का निर्माण कराया। भक्तगण अब सरलतापूर्वक चरित्र का अवलोकन करें और साथ ही उनके मनोहर स्वरूप का ध्यान कर, गुरु और भगवत्-भक्ति के अधिकारी बनें तथा निष्काम होकर आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त हों। 'साई सच्चरित्र' का सफलतापूर्वक सम्पूर्ण होना, यह साई-महिमा ही समझें, हमें तो केवल एक निमित्त मात्र ही बनाया गया है।

मातृप्रेम

गाय का अपने बछड़े पर प्रेम सर्वविदित ही है। उसके स्तन सदैव दुग्ध से पूर्ण रहते हैं और जब भूखा बछड़ा स्तन की ओर दौड़कर आता है दुग्ध की धारा स्वतः प्रवाहित होने लगती है। उसी प्रकार माता भी अपने बच्चे की आवश्यकता का पहले से ही ध्यान रखती है और ठीक समय पर स्तनपान कराती है। वह बालक का श्रृंगार उत्तम ढंग से करती है, परन्तु बालक को इसका कोई भान ही नहीं होता। बालक के सुन्दर श्रृंगारादि को देखकर माता के हर्ष का पारावार नहीं रहता। माता का प्रेम विचित्र, असाधारण और निःस्वार्थ है, जिसकी कोई उपमा नहीं है। ठीक इसी प्रकार सद्गुरु का प्रेम अपने शिष्य पर होता है। ऐसा ही प्रेम बाबा का मुझ पर था और उदाहरणार्थ वह निम्न प्रकार था:-

सन् १९१६ में मैंने नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। जो पेन्शन मुझे मिलती थी, वह मेरे कुटुम्ब के निर्वाह के लिये अपर्याप्त थी। उसी वर्ष की गुरुपूर्णिमा के दिवस मैं अन्य भक्तों के साथ शिरडी गया। वहाँ अण्णा चिचणीकर ने स्वतः ही मेरे लिये बाबा से इस प्रकार प्रार्थना की, " इनके ऊपर कृपा करो। जो पेन्शन इन्हें मिलती है, वह निर्वाह-योग्य नहीं है। कुटुम्ब में वृद्धि हो रही है। कृपया और कोई नौकरी दिला दीजिए, ताकि इनकी चिन्ता दूर हो और ये सुखपूर्वक रहें।" बाबा ने उत्तर दिया कि "इन्हें नौकरी मिल जायेगी, परन्तु अब इन्हें मेरी सेवा में ही आनन्द लेना चाहिए। इनकी इच्छाएँ सदैव पूर्ण होंगी, **इन्हें अपना ध्यान मेरी ओर आकर्षित कर, अधार्मिक तथा दुष्ट जनों की संगति से दूर रहना चाहिए।** इन्हें सबसे दया और नम्रता का बर्ताव और अंतःकरण से मेरी उपासना करनी चाहिए। यदि ये इस प्रकार आचरण कर सके तो नित्यानन्द के अधिकारी हो जाएंगे।"

रोहिला की कथा

यह कथा श्री साई बाबा के समस्त प्राणियों पर समान प्रेम की सूचक है। एक समय रोहिला जाति का एक मनुष्य शिरडी में आया। वह ऊँचा- पूरा, सुदृढ़ एवं सुगठित शरीर का था। बाबा के प्रेम से मुग्ध होकर वह शिरडी में ही रहने लगा। वह आठों प्रहर अपनी उच्च और कर्कश ध्वनि में कुरान शरीफ के कलमे पढ़ता और " अल्लाहो अकबर" के नारे लगाता था। शिरडी के अधिकांश लोग खेतों में दिन भर काम करने के पश्चात् जब रात्रि में घर

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

लौटते तो रोहिला की कर्कश पुकारें उनका स्वागत करती थीं। इस कारण उन्हें रात्रि में विश्राम न मिलता था, जिससे वे अधिक कष्ट और असुविधा का अनुभव करने लगे। कई दिनों तक तो वे स्तब्ध रहे, परन्तु जब कष्ट असहनीय हो गया, तब उन्होंने बाबा के समीप जाकर रोहिला को मना कर इस उत्पात को रोकने की प्रार्थना की। बाबा ने उन लोगों की इस प्रार्थना पर ध्यान दिया। इसके विपरीत गाँववालों को आड़े हाथों लेते हुए बोले कि वे अपने कार्य पर ध्यान दें और रोहिला की ओर ध्यान न दें। बाबा ने उनसे कहा कि रोहिला की पत्नी बुरे स्वभाव की है और वह रोहिला को तथा मुझे अधिक कष्ट पहुँचाती है, परन्तु वह उसके कलमों के समक्ष उपस्थित होने का साहस करने में असमर्थ है और इसी कारण वह शांति और सुख में है। यथार्थ में रोहिला की कोई पत्नी न थी। बाबा का संकेत केवल कुविचारों की ओर था। अन्य विषयों की अपेक्षा बाबा प्रार्थना और ईश-आराधना को महत्त्व देते थे। अतः उन्होंने रोहिला के पक्ष का समर्थन कर, ग्रामवासियों को शांतिपूर्वक थोड़े समय तक उत्पात सहन करने का परामर्श दिया।

बाबा के मधुर अमृतोपदेश

एक दिन दोपहर की आरती के पश्चात् भक्तगण अपने घरों को लौट रहे थे, तब बाबा ने निम्नलिखित अति सुन्दर उपदेश दिया:-

“तुम चाहे कहीं भी रहो, जो इच्छा हो, सो करो; परन्तु यह सदैव स्मरण रखो कि जो कुछ तुम करते हो, वह सब मुझे ज्ञात है। मैं ही समस्त प्राणियों का प्रभु और घट-घट में व्याप्त हूँ। मेरे ही उदर में समस्त जड़ व चेतन प्राणी समाए हुए हैं। मैं ही समस्त ब्रह्मांड का नियंत्रणकर्ता व संचालक हूँ। मैं ही उत्पत्ति, स्थिति व संहारकर्ता हूँ। मेरी भक्ति करने वालों को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। मेरे ध्यान की उपेक्षा करनेवाला, माया के पाश में फँस जाता है। समस्त जन्तु, चीटियाँ तथा दृश्यमान, परिवर्तमान और स्थायी विश्व मेरे ही स्वरूप हैं।”

इस सुन्दर तथा अमूल्य उपदेश को श्रवण कर मैंने तुरन्त यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब भविष्य में अपने गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी मानव की सेवा न करूँगा। “तुझे नौकरी मिल जाएगी”- बाबा के इन वचनों का विचार मेरे मस्तिष्क में बारंबार चक्कर काटने लगा। मुझे विचार आने लगा, क्या सचमुच ऐसा घटित होगा? भविष्य की घटनाओं से स्पष्ट है कि बाबा के वचन सत्य निकले और मुझे अल्पकाल के लिए नौकरी मिल गई। इसके पश्चात् मैं स्वतंत्र होकर एकचित्त से जीवनपर्यन्त बाबा की ही सेवा करता रहा।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मेरी पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि वे समस्त बाधाएँ - जैसे आलस्य, निद्रा, मन की चंचलता व इन्द्रिय-आसक्ति दूर कर और एकचित्त हो अपना ध्यान बाबा की लीलाओं की ओर दें और स्वाभाविक प्रेम निर्माण कर भक्ति-रहस्य को जानें तथा अन्य साधनाओं में व्यर्थ श्रमित न हों। **उन्हें केवल एक ही सुगम उपाय का पालन करना चाहिए और वह है श्रीसाईलीलाओं का श्रवण।** इससे उनका अज्ञान नष्ट होकर मोक्ष का द्वार खुल जाएगा। जिसप्रकार अनेक स्थानों में भ्रमण करता हुआ भी लोभी पुरुष अपने गड़े हुऐ धन के लिए सतत चिन्तित रहता है, उसी प्रकार श्री साई को अपने हृदय में धारण करो। अगले अध्याय में श्री साई बाबा के शिरडी आगमन का वर्णन होगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥



श्री साई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन सन्तों का अवतार कार्य, पवित्र तीर्थ शिरडी, श्री साई बाबा का व्यक्तित्व, गौली महाराज का अनुभव, श्री विठ्ठल का प्रगट होना, क्षीरसागर की कथा, दासगणू का प्रयाग-स्नान, श्रीसाई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन, तीन वाड़े।

संतों का अवतार कार्य

भगवद्गीता (चौथा अध्याय ७-८) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि " जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार धारण करता हूँ। धर्म-स्थापन, दुष्टों का विनाश तथा साधुजनों के परित्राण के लिए मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ।" साधु और संत भगवान के प्रतिनिधिस्वरूप हैं। वे उपयुक्त समय पर प्रगट होकर अपनी कार्यप्रणाली द्वारा अपना अवतार-कार्य पूर्ण करते हैं। अर्थात् जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाते हैं; जब धार्मिक उपदेशों की उपेक्षा होने लगती है; जब शूद्र उच्च जातियों के अधिकार छीनने लगते हैं, जब धर्म के आचार्यों का अनादर तथा निंदा होने लगती है; जब लोग निषिद्ध भोज्य पदार्थों और मदिरा आदि का सेवन करने लगते हैं; जब धर्म की आड़ में निंदित कार्य होने लगते हैं; जब भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी परस्पर लड़ने लगते हैं; जब धार्मिक उपदेशों की उपेक्षा होने लगती है; जब प्रत्येक व्यक्ति सोचने लगता है कि मुझसे श्रेष्ठ विद्वान् दूसरा नहीं है; जब ब्राह्मण संध्यादि कर्म छोड़ देते हैं; कर्मठ पुरुषों को धार्मिक कृत्यों में अरुचि उत्पन्न हो जाती है जब योगी ध्यानादि कर्म छोड़ देते हैं और जब जनसाधारण की ऐसी धारणा हो जाती है कि केवल धन, संतान और स्त्री ही सर्वस्व है तथा इस प्रकार जब लोग सत्य-मार्ग से विचलित होकर अधःपतन की ओर अग्रसर होने लगते हैं, तब संत प्रगट होकर अपने उपदेशों एवं आचरण के द्वारा धर्म की संस्थापना करते हैं। वे समुद्र के ज्योतिस्तम्भ की तरह हमारा उचित मार्गदर्शन करते तथा सत्य पथ पर चलने को प्रेरित करते हैं। इसी मार्ग पर अनेकों संत-निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, गोरा, गोणाई, एकनाथ, तुकाराम, नरहरि, नरसी भाई, सजन कसाई, सावंता माली और रामदास तथा कई अन्य संत सत्य-मार्ग का दिग्दर्शन कराने के हेतु भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रकट हुए और इन सबके पश्चात् शिरडी में श्री साई बाबा का अवतार हुआ।

पवित्र तीर्थ शिरडी

अहमदनगर जिले में गोदावरी नदी के तट बड़े ही भाग्यशाली हैं, जिन पर अनेक संतों ने जन्म धारण किया और अनेकों ने वहाँ आश्रय पाया। ऐसे संतों में श्री ज्ञानेश्वर महाराज प्रमुख थे। शिरडी, अहमदनगर जिले के राहाता तालुका में है। गोदावरी नदी पार करने के पश्चात् मार्ग सीधा शिरडी को जाता है। आठ मील चलने पर जब आप नीमगाँव पहुँचेंगे तो वहाँ से शिरडी दृष्टिगोचर होने लगती है। कृष्णानदी के तट पर अन्य तीर्थस्थान गाणगापूर, नरसिंहवाड़ी और औदुम्बर के समान ही शिरडी भी प्रसिद्ध तीर्थ है। जिस प्रकार दामाजी ने मंगलवेढा को (पंढरपुर के समीप), समर्थ रामदास ने सज्जनगढ़ को, दत्तावतार श्रीनरसिंह सरस्वती ने वाड़ी को पवित्र किया, उसी प्रकार श्री साईनाथ ने शिरडी में अवतीर्ण होकर उसे पावन बनाया।

श्री साईबाबा का व्यक्तित्व

श्री साईबाबा के सान्निध्य से शिरडी कामहत्त्व विशेष बढ़ गया। अब हम उनके चरित्र का अवलोकन करेंगे। उन्होंने इस भवसागर पर विजय प्राप्त कर ली थी, जिसे पार करना महान् दुष्कर तथा कठिन है। शांति उनका आभूषण था तथा वे ज्ञान की साक्षात् प्रतिमा थे। वैष्णव भक्त सदैव वहाँ आश्रय पाते थे। दानवीरों में वे राजा कर्ण के समान दानी थे। वे समस्त सारों के साररूप थे। ऐहिक पदार्थों से उन्हें अरुचि थी। सदा आत्मस्वरूप में निमग्न रहना ही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। अनित्य वस्तुओं का आकर्षण उन्हें छू भी नहीं गया था। उनका हृदय शीशे के सदृश उज्जल था। उनके श्री-मुख से सदैव अमृत वर्षा होती थी। अमीर और गरीब उनके लिए दोनों एक समान थे। मान-अपमान की उन्हें किंचित्मात्र भी चिंता न थी। वे निर्भय होकर सम्भाषण करते, भाँति-भाँति के लोगों से

कहीं बाहर से आयेंगे? वे तो यहीं विराजमान हैं। जब भक्तों में प्रेम और भक्ति का स्रोत प्रवाहित होगा तो विडल स्वयं ही यहाँ प्रगट हो जायेंगे।

सप्ताह समाप्त होने के बाद विडल भगवान इस प्रकार प्रकट हुए। काकासाहेब दीक्षित सदैव की भाँति स्नान करने के पश्चात् जब ध्यान करने को बैठे तो उन्हें विडल के दर्शन हुए। दोपहर के समय जब वे बाबा के दर्शनार्थ मस्जिद पहुँचे तो बाबा ने उनसे पूछा “ क्यों विडल पाटील आए थे न ? क्या तुम्हें उनके दर्शन हुए? वे बहुत चंचल है। उनको दृढता से पकड़ लो । यदि थोड़ी भी असावधानी की तो वे बचकर निकल जायेंगे।” यह प्रातःकाल की घटना थी और दोपहर के समय उन्हें पुनः दर्शन हुए। उसी दिन एक चित्र बेचने वाला विठोबा के २५-३० चित्र लेकर वहाँ बेचने को आया। यह चित्र ठीक वैसा ही था, जैसा कि काकासाहेब दीक्षित को ध्यान में दर्शन हुए थे। चित्र देखकर और बाबा के शब्दों का स्मरण कर काकासाहेब को बड़ा विस्मय और प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक चित्र सहर्ष खरीद लिया और उसे अपने देवघर में प्रतिष्ठित कर दिया ।

ठाणा के अवकाशप्राप्त मामलतदार श्री. बी.व्ही. देव ने अपने अनुसंधान के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि शिरडी पंढरपुर की परिधि में आती है। दक्षिण में पंढरपुर श्रीकृष्ण का प्रसिद्ध स्थान है, अतः शिरडी की द्वारका है। (साई लीला पत्रिका भाग १२, अंक १,२,३ के अनुसार)

द्वारका की एक और व्याख्या सुनने में आई है, जो कि कै.नारायण अय्यर द्वारा लिखित “भारतवर्ष का स्थायी इतिहास” में स्कन्दपुराण (भाग२,पृष्ठ ९०) से उद्धृत की गई है। वह इस प्रकार है:-

“ चतुर्वर्णामपि वर्गाणां यत्र द्वाराणि सर्वतः।
अतो द्वारावतीत्युक्ता विद्वद्भिस्तत्त्ववादिभिः।।”

जो स्थान चारों वर्णों के लोगों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए सुलभ हो, दार्शनिक लोग उसे द्वारका के नाम से पुकारते हैं। शिरडी में बाबा की मस्जिद केवल चारों वर्णों के लिए ही नहीं, अपितु दलित, अस्पृश्य और भागोजी सिंदिया जैसे कोढ़ी आदि सब के लिए खुली थी। अतः शिरडी को द्वारका कहना ही सर्वथा उचित है।

भगवंतराव क्षीरसागर की कथा,

श्री विडलपूजन में बाबा को कितनी रुचि थी, यह भगवंतराव क्षीरसागर की कथा से स्पष्ट है। भगवंतराव के पिता विठोबा के परम भक्त थे, जो प्रतिवर्ष पंढरपुर को वारी लेकर जाते थे। उनके घर में एक विठोबा की मूर्ति थी, जिसकी वे नित्यप्रति पूजा करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र भगवंतराव ने वारी, पूजन श्राद्ध इत्यादि समस्त कर्म करना छोड़ दिया। जब भगवंतराव शिरडी आए तो बाबा उन्हें देखते ही कहने लगे कि “ इनके पिता मेरे परम मित्र थे। इसी कारण मैंने इन्हें यहाँ बुलाया है। इन्होंने कभी नैवेद्य अर्पण नहीं किया तथा मुझे और विठोबा को भूखों मारा है। इसलिये मैंने इन्हें यहाँ आने को प्रेरित किया है। अब मैं इन्हें हठपूर्वक पूजा में लगा दूँगा।”

दासगणू का प्रयागस्नान

गंगा और यमुना नदी के संगम पर प्रयाग एक प्रसिद्ध पवित्र तीर्थस्थान है। हिन्दुओं की ऐसी भावना है कि वहाँ स्नानादि करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण प्रत्येक पर्व पर सहस्रों भक्तगण वहाँ जाते हैं और स्नान का लाभ उठाते हैं। एक बार दासगणू ने भी वहाँ जाकर स्नान करने का निश्चय किया। इस विचार से वे बाबा से आज्ञा लेने उनके पास गए। बाबा ने कहा कि “ इतनी दूर व्यर्थ भटकने की क्या आवश्यकता है? अपना प्रयाग तो यहीं है। मुझ पर विश्वास करो। ” आश्चर्य! महान् आश्चर्य ! जैसे ही दास गणू बाबा के चरणों पर नत हुए तो बाबा के श्री चरणों से गंगा-यमुना की धारा वेग से प्रवाहित होने लगी। यह चमत्कार देखकर दास गणू का प्रेम और भक्ति उमड़ पड़ी। आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। उन्हें कुछ अंतःस्फूर्ति हुई और उनके मुख से श्री साई बाबा की स्रोतस्विनी स्वतः प्रवाहित होने लगी।

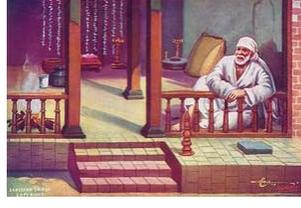
श्री साई बाबा का शिरडी में प्रथम आगमन

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

'समाधि मंदिर' के नाम से विख्यात है। इस मंदिर के स्थान पर पहले एक बगीचा था, जिसमें बाबा स्वयं पौधों को सींचते और उनकी देखभाल किया करते थे। जहाँ पहले एक छोटी सी कुटी भी नहीं थी, वहाँ तीन-तीन वाड़ों का निर्माण हो गया। इन सब में साठे-वाड़ा पूर्वकाल में बहुत ही उपयोगी था।

बगीचे की कथा, वामन तात्या की सहायता से स्वयं बगीचे की देखभाल, शिरडी से श्रीसाई बाबा की अस्थायी अनुपस्थिति तथा चाँद पाटील की बारात में पुनः शिरडी में लौटना, देवीदास, जानकीदास और गंगागीर की संगति, मोहिद्दीन तम्बोली के साथ कुश्ती,मस्जिद में निवास, श्री. डेंगले व अन्य भक्तों पर प्रेम तथा अन्य घटनाओं का अगले अध्याय में वर्णन किया गया है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥



चाँद पाटील की बारात के साथ श्री साई बाबा का पुनः आगमन, अभिनंदन तथा 'श्री साई' शब्द से सम्बोधन, अन्य संतों से भेंट, वेश-भूषा व नित्य कार्यक्रम, पादुकाओं की कथा, मोहिद्दीन के साथ कुश्ती, मोहिद्दीन का जीवन परिवर्तन, जल का तेल में रुपान्तर, मिथ्या गुरु जौहरअली।

जैसा गत अध्याय में कहा गया है, मैं अब श्री साई बाबा के शिरडी से अंतर्द्वान होने के पश्चात् उनका शिरडी में पुनः किस प्रकार आगमन हुआ, इसका वर्णन करूँगा।

चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः आगमन

जिला औरंगाबाद (निजाम स्टेट) के धूप ग्राम में चाँद पाटील नामक एक धनवान् मुस्लिम रहते थे। जब वे औरंगाबाद को जा रहे थे तो मार्ग में उनकी घोड़ी खो गई। दो मास तक उन्होंने उसकी खोज में घोर परिश्रम किया, परन्तु उसका कहीं पता न चल सका। अन्त में वे निराश होकर उसकी जीन को पीठ पर लटकाए औरंगाबाद से लौट रहे थे। तब लगभग १४ मील चलने के पश्चात् उन्होंने एक आम्रवृक्ष के नीचे एक फकीर को चिलम तैयार करते देखा, जिसके सिर पर एक टोपी, तन पर कफनी और पास में एक सटका था। फकीर के बुलाने पर चाँद पाटील उनके पास पहुँचे। जीन देखते ही फकीर ने पूछा "यह जीन कैसी?" चाँद पाटील ने निराशा के स्वर में कहा "क्या कहूँ? मेरी एक घोड़ी थी, वह खो गई है और यह उसी की जीन है।"

फकीर बोले-"थोड़ा नाले की ओर भी तो ढूँढ़ो।" चाँद पाटील नाले के समीप गए तो अपनी घोड़ी को वहाँ चरते देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि फकीर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, वरन् कोई उच्च कोटि का मानव दिखलाई पड़ता है। घोड़ी को साथ लेकर जब वे फकीर के पास लौटकर आए, तब तक चिलम भरकर तैयार हो चुकी थी। केवल दो वस्तुओं की और आवश्यकता रह गई थी। एक तो चिलम सुलगाने के लिये अग्नि और द्वितीय साफी को गीला करने के लिये जल की। फकीर ने अपना चिमटा भूमि में घुसेड़ कर ऊपर खींचा तो उसके साथ ही एक प्रज्वलित अंगारा बाहर निकला और वह अंगारा चिलम पर रखा गया। फिर फकीर ने सटके से ज्योंही बलपूर्वक जमीन पर प्रहार किया, त्योंही वहाँ से पानी निकलने लगा और उसने साफी को भिंगोकर चिलम को लपेट लिया। इस प्रकार सब प्रबन्ध करं फकीर ने चिलम पी और तत्पश्चात् चाँद पाटील को भी दी। यह सब चमत्कार देखकर चाँद पाटील का बड़ा विस्मय हुआ। चाँद पाटील ने फकीर से अपने घर चलने का आग्रह किया। दूसरे दिन चाँद पाटील के साथ फकीर उनके घर चला गया और वहाँ कुछ समय तक रहा। पाटील धूप ग्राम का अधिकारी था। उसके घर पर अपने साले के लड़के का विवाह होने वाला था और बारात शिरडी को जाने वाली थी। इसलिये चाँद पाटील शिरडी को प्रस्थान करने का पूर्ण प्रबन्ध करने लगा। फकीर भी बारात के साथ ही गया। विवाह निर्विन्ध समाप्त हो गया और बारात कुशलतापूर्वक धूप ग्राम को लौट आई। परन्तु वह फकीर शिरडी में ही रुक गया और जीवनपर्यन्त वहीं रहा।

फकीर को 'साई' नाम कैसे प्राप्त हुआ?

जब बारात शिरडी में पहुँची तो खंडोबा के मंदिर के समीप म्हालसापति के खेत में एक वृक्ष के नीचे ठहराई गई। खंडोबा के मंदिर के सामने ही सब बैलगाड़ियाँ खोल दी गई और बारात के सब लोग एक-एक करके नीचे उतरने लगे। तरुण फकीर को उतरते देख म्हालसापति ने "आओ साई" कहकर उनका अभिनन्दन किया तथा अन्य उपस्थित लोगों ने भी 'साई' शब्द से ही सम्बोधन कर उनका आदर किया। इसके पश्चात् वे 'साई' नाम से ही प्रसिद्ध हो गए।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

सबको मान्य हुआ और डॉ. कोठारे को इसकी सूचना दी गई । उन्होंने शिरडी आकर पादुकाओं की रुपरेखा बनाई तथा इस विषय में उपासनी महाराज से भी खंडोबा के मंदिर में भेंट की। उपासनी महाराज ने उसमें बहुत से सुधार किए और कमल फुलादि खींच दिये तथा नीचे लिखा श्लोक भी रचा, जो नीम वृक्ष के माहात्म्य व बाबा की योगशक्ति का द्योतक था , जो इस प्रकार है:-

सदा निंबवृक्षस्य मूलाधिवासात्
सुधास्त्रविणं तिक्तमप्यप्रियं तम्
तरुं कल्पवृक्षाधिकं साधयन्तं
नमामीश्वरं सद्गुरुं साईनाथम् ।।

अर्थात्- मैं भगवान साईनाथ को नमन करता हूँ, जिनका सान्निध्य पाकर नीम वृक्ष कटु तथा अप्रिय होते हुये भी अमृत वर्षा करता था । (इस वृक्ष का रस अमृत कहलाता है) इसमें अनेक व्याधियों से मुक्ति देने के गुण होने के कारण इसे ' कल्पवृक्ष' से भी श्रेष्ठ कहा गया है ।

उपासनी महाराज का विचार सर्वमान्य हुआ और कार्य रूप में भी परिणत हुआ । पादुकाएँ बम्बई में तैयार कराई गईं और कम्पाउंडर के हाथ शिरडी भेज दी गई । बाबा की आज्ञानुसार इनकी स्थापना श्रावण की पूर्णिमा के दिन की गई । इस दिन प्रातःकाल ११ बजे जी.के.दीक्षित उन्हें अपने मस्तक पर धारण कर खंडोबा के मंदिर से बड़े समारोह और धूमधाम के साथ द्वारकामाई में लाए । बाबा ने पादुकाएँ स्पर्श कर कहा कि " ये भगवान के श्री चरण हैं । इनकी नीम वृक्ष के नीचे स्थापना कर दो।" इसके एक दिन पूर्व ही बम्बई के एक पारसी भक्त पास्ता शेट ने २५ रुपयों का मनीऑर्डर भेजा। बाबा ने ये रुपये पादुकाओं की स्थापना के निमित्त दे दिए। स्थापना में कुल १०० रुपये व्यय हुये, जिनमें ७५ रुपये चन्दे द्वारा एकत्रित हुए। प्रथम पाँच वर्षों तक डॉ. कोठारे दीपक के निमित्त २ रुपये मासिक भेजते रहे। उन्होंने पादुकाओं के चारों ओर लगाने के लिये लोहे की छड़ें भी भेजीं। स्टेशन से छड़ें ढोने और छप्पर बनाने का खर्च (७ रुपये ८ आने) सगुण मेरु नायक ने दिये। आजकल जरबाड़ी (नाना पुजारी) पूजन करते हैं और सगुण मेरु नायक नैवेद्य अर्पण करते तथा संध्या को दीपक जलाते हैं। भाई कृष्ण जी पहले अक्कलकोट महाराज के शिष्य थे। अक्कलकोट जाते हुए, वे शक १८३४ में पादुका स्थापन के शुभ अवसर पर शिरडी आए और दर्शन करने के पश्चात् जब उन्होंने बाबा से अक्कलकोट प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी, तब बाबा कहने लगे, " अरे। अक्कलकोट में क्या है? तुम वहाँ व्यर्थ क्यों जाते हो? वहाँ के महाराज तो यहीं (मैं स्वयं) हैं। " यह सुनकर भाई ने अक्कलकोट जाने का विचार त्याग दिया। पादुकाएँ स्थापित होने के पश्चात् वे बहुधा शिरडी आया करते थे। श्री.बी.व्ही.देव ने अंत में ऐसा लिखा है कि इन सब बातों का विवरण हेमाडपंत को विदित नहीं था। अन्यथा वे श्री साई सच्चरित्र में लिखना कभी नहीं भूलते।

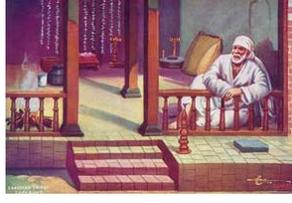
मोहिदीन तम्बोली के साथ कुशती और जीवन परिवर्तन

शिरडी में एक पहलवान था, जिसका नाम मोहिदीन तम्बोली था। बाबा का उससे किसी विषय पर मतभेद हो गया। फलस्वरूप दोनों में कुशती हुई और बाबा हार गये। इसके पश्चात् बाबा ने अपनी पोशाक और रहन-सहन में परिवर्तन कर दिया। वे कफनी पहनते, लंगोट बाँधते और एक कपड़े के टुकड़े से सिर ढँकते थे। वे आसन तथा शयन के लिए एक टाट का टुकड़ा काम में लाते थे। इस प्रकार फटे-पुराने चिथड़े पहिन कर वे बहुत सन्तुष्ट प्रतीत होते थे। वे सदैव यही कहा करते थे कि " गरीबी अक्वल बादशाही, अमीरी से लाख सवाई, गरीबों का अल्ला भाई। " गंगागीर को भी कुशती से बड़ा अनुराग था। एक समय जब वह कुशती लड़ रहा था, तब इसी प्रकार उसको भी त्याग की भावना जागृत हो गई। इसी उपयुक्त अवसर पर उसे देव वाणी सुनाई दी " **भगवान् के साथ खेल में अपना शरीर लगा देना चाहिए।** " इस कारण वह संसार छोड़ आत्म-अनुभूति की ओर झुक गया। पुणताम्बे के समीप एक मठ स्थापित कर वह अपने शिष्यों सहित वहाँ रहने लगा। श्री साई बाबा लोगों से न मिलते और न वार्तालाप करते थे। जब कोई उनसे कुछ प्रश्न करता तो वे केवल उतना ही उत्तर देते थे। दिन के समय वे नीम वृक्ष के नीचे विराजमान रहते थे। कभी-कभी वे गाँव की मेंड़ पर नाले के किनारे एक बबूल-वृक्ष की छाया में भी बैठे रहते थे और संध्या को अपनी इच्छानुसार कहीं भी वायु-सेवन को निकल जाया करते थे। नीमगाँव में वे बहुधा बालासाहेब डेंगले के गृह पर जाया करते थे। बाबा श्री बालासाहेब को बहुत प्यार करते थे। उनके छोटे भाई, जिसका नाम नानासाहेब था, के द्वितीय विवाह करने पर भी उनको कोई संतान न थी। बालासाहेब ने नानासाहेब को श्री साई बाबा के

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

पूर्व देवीदास लगभग १० या ११ वर्ष की अवस्था में शिरडी आए थे और हनुमान मंदिर में रहते थे। देवीदास सुडौल, सुन्दर आकृति तथा तीक्ष्ण बुद्धि के थे। वे त्याग की साक्षात्मूर्ति तथा अगाध ज्ञानी थे। बहुत-से सज्जन जैसे तात्या कोते, काशीनाथ व अन्य लोग, उन्हें अपने गुरु-समान मानते थे। लोग जौहर अली को उनके सम्मुख लाए। विवाद में जौहर अली बुरी तरह पराजित हुआ और शिरडी छोड़ वैजापूर को भाग गया। वह अनेक वर्षों के पश्चात् शिरडी आया और श्री साईबाबा की चरण-वन्दना की। उसका यह भ्रम कि “ वह स्वयं गुरु था और श्री साईबाबा उसके शिष्य” अब दूर हो चुका था। श्री साईबाबा उसे गुरु-समान ही आदर करते थे, उसका स्मरण कर उसे बहुत पश्चाताप हुआ। इस प्रकार श्री साईबाबा ने अपने प्रत्यक्ष आचरण से आदर्श उपस्थित किया कि अहंकार से किस प्रकार छुटकारा पाकर शिष्य के कर्तव्यों का पालन कर, किस तरह आत्मानुभव की ओर अग्रसर होना चाहिए। ऊपर वर्णित कथा म्हालसापति के कथनानुसार है। अगले अध्याय में रामनवमी का त्यौहार, मस्जिद की पहली हालत एवं पश्चात् उसके जर्णोद्धार इत्यादि का वर्णन होगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु।शुभंभवतु॥



रामनवमी उत्सव व मस्जिद का जीर्णोद्धार, गुरु के कर-स्पर्श की महिमा, चंदन समारोह, उर्स और रामनवमी का समन्वय, मस्जिद का जीर्णोद्धार ।

गुरु के कर-स्पर्श के गुण

जब सद्गुरु ही नाव के खिवैया हैं तो वे निश्चय ही कुशलता तथा सरलतापूर्वक इस भवसागर के पार उतार देंगे। 'सद्गुरु' शब्द का उच्चारण करते ही मुझे श्री साई की स्मृति आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे स्वयं मेरे सामने ही खड़े हैं और मेरे मस्तक पर उदी लगा रहे हैं। देखो, देखो, वे अब अपना वरद् हस्त उठाकर मेरे मस्तक पर रख रहे हैं। अब मेरा हृदय आनन्द से भर गया है। मेरे नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। सद्गुरु के कर-स्पर्श की शक्ति महान् आश्चर्यजनक है। लिंग(सूक्ष्म) शरीर, जो संसार को भस्म करने वाली अग्नि से भी नष्ट नहीं होता है, वह केवल गुरु के कर-स्पर्श से ही पल भर में नष्ट हो जाता है। अनेक जन्मों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति, जिन्हें धार्मिक और ईश्वरीय प्रसंगों में पूर्ण अरुचि है, उनके भी मन स्थिर हो जाते हैं। श्री साईबाबा के मनोहर रूप के दर्शन कर कंठ प्रफुल्लता से रुँध जाता है, आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और जब हृदय भावनाओं से भर जाता है, तब सोऽहं भाव की जागृति होकर आत्मानुभव के आनन्द का आभास होने लगता है। मैं और तू का भेद (द्वैतभाव) नष्ट हो जाता है और तत्क्षण ही ब्रह्म के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है। जब मैं धार्मिक ग्रन्थों का पठन करता हूँ तो क्षण-क्षण में सद्गुरु की स्मृति हो आती है। बाबा राम या कृष्ण का रूप धारण कर मेरे सामने खड़े हो जाते हैं और स्वयं अपनी जीवन-कथा मुझे सुनाने लगते हैं। अर्थात् जब मैं भागवत का श्रवण करता हूँ, तब बाबा श्री कृष्ण का स्वरूप धारण कर लेते हैं और तब मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वे ही भागवत या भक्तों के कल्याणार्थ उद्धवगीता सुना रहे हैं। जब कभी भी मैं किसी से वार्तालाप किया करता हूँ तो मैं बाबा की कथाओं को ध्यान में लाता हूँ, जिससे उनका उपयुक्त अर्थ समझाने में सफल हो सकूँ। जब मैं लिखने के लिए बैठता हूँ, तब एक शब्द या वाक्य की रचना भी नहीं कर पाता हूँ, परन्तु जब वे स्वयं कृपा कर मुझसे लिखवाने लगते हैं, तब फिर उसका कोई अंत नहीं होता। जब भक्तों में अहंकार की वृद्धि होने लगती है तो वे शक्ति प्रदान कर उसे अहंकारशून्य बनाकर अंतिम ध्येय की प्राप्ति करा देते हैं तथा उसे संतुष्ट कर अक्षय सुख का अधिकारी बना देते हैं। जो बाबा को नमन कर अनन्य भाव से उनकी शरण जाता है, उसे फिर कोई साधना करने की आवश्यकता नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उसे सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं। १ ईश्वर के पास पहुँचने के चार मार्ग हैं - कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति। इन सबमें भक्तिमार्ग अधिक कंटकाकीर्ण, गड्ढों और खाइयों से परिपूर्ण है। परन्तु यदि सद्गुरु पर विश्वास कर गड्ढों और खाइयों से बचते और पदानुक्रमण करते हुए सीधे अग्रसर होते जाओगे तो तुम अपने ध्येय अर्थात् ईश्वर के समीप आसानी से पहुँच जाओगे। श्री साईबाबा ने निश्चयात्मक स्वर में कहा है कि स्वयं ब्रह्म और उनकी विश्व उत्पत्ति, रक्षण और लय करने आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के पृथकत्व में भी एकत्व है। इसे ही ग्रन्थकारों ने दर्शाया है। भक्तों के कल्याणार्थ श्री साईबाबा ने स्वयं जिन वचनों से आश्वासन दिया था, उनको नीचे उद्धृत किया जाता है-

“ मेरे भक्तों के घर अन्न तथा वस्त्रों का कभी अभाव नहीं होगा। यह मेरा वैशिष्ट्य है कि जो भक्त मेरी शरण आ जाते हैं और अंतःकरण से मेरे उपासक हैं, उनके कल्याणार्थ मैं सदैव चिंतित रहता हूँ। २

१.-२ सर्वधर्मान्परित्यज्यं मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। - गीता १८/६६

कृष्ण भगवान ने भी गीता में यही समझाया है। इसलिये भोजन तथा वस्त्र के लिए अधिक चिंता न करो। यदि कुछ माँगने की ही अभिलाषा है तो ईश्वर को ही भिक्षा में माँगो। सांसारिक मान व उपाधियाँ त्यागकर ईश-कृपा

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ। वे समझ नहीं पा रहे थे कि किस अज्ञात कारण से बाबा इतने क्रोधित हुए। उन्होंने तात्या को क्यों पीटा और तत्क्षण ही उनका क्रोध क्यों शांत हो गया? बाबा कभी-कभी अति गंभीर तथा शांत मुद्रा में रहते थे और बड़े प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप किया करते थे। परन्तु अनायास ही बिना किसी गोचर कारण के वे क्रोधित हो जाया करते थे। ऐसी अनेक घटनाएँ देखने में आ चुकी हैं, परन्तु मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता कि उनमें से कौन सी लिखूँ और कौन सी छोड़ूँ। अतः जिस क्रम से वे याद आती जाएंगी, उसी प्रकार उनका वर्णन किया जायगा। अगले अध्याय में बाबा यवन हैं या हिन्दू, इसका विवेचन किया जायेगा तथा उनके योग, साधन, शक्ति और अन्य विषयों पर भी विचार किया जाएगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

सप्ताह पारायणः प्रथम विश्राम

नेत्रों की व्याधि दूर हो गई। इस प्रकार अनेक रोगी नीरोग हो गए। यह घटना तो केवल उदाहरणस्वरूप ही यहाँ लिखी गई है।

बाबा की यौगिक क्रियाएँ

बाबा को समस्त यौगिक प्रयोग और क्रियाएँ ज्ञात थीं। उनमें से केवल दो का ही उल्लेख यहाँ किया जाता है:-

(१) **धौति क्रिया** (आँतें स्वच्छ करने की क्रिया) प्रति तीसरे दिन बाबा मस्जिद से पर्याप्त दूरी पर, एक वट वृक्ष के नीचे किया करते थे। एक अवसर पर लोगों ने देखा कि उन्होंने अपनी आँतों को उदर के बाहर निकालकर उन्हें चारों ओर से स्वच्छ किया और समीप के वृक्ष पर सूखने के लिये रख दिया। शिरडी में इस घटना की पुष्टि करने वाले लोग अभी भी जीवित हैं। उन्होंने इस सत्य की परीक्षा भी की थी।

साधारण धौति क्रिया एक ३" चौड़े व २२ १/२ फुट लम्बे गीले कपड़े के टुकड़े से की जाती है। इस कपड़े को मुँह के द्वारा उदर में उतार लिया जाता है तथा उसे लगभग आधा घंटे तक रखे रहते हैं, ताकि उसका पूरा-पूरा प्रभाव हो जावे। तत्पश्चात् उसे बाहर निकाल लेते हैं। पर बाबा की तो यह धौति क्रिया सर्वथा विचित्र और असाधारण ही थी।

(२) **खण्डयोग** - एक समय बाबा ने अपने शरीर के अवयव पृथक्-पृथक् कर मस्जिद के भिन्न-भिन्न स्थानों में बिखेर दिए। अकस्मात् उसी दिन एक महाशय मस्जिद में पधारे और अंगों को इस प्रकार यहाँ-वहाँ बिखरा देखकर बहुत ही भयभीत हुए। पहले उनकी इच्छा हुई कि लौटकर ग्राम अधिकारी के पास यह सूचना भिजवा देनी चाहिए कि किसी ने बाबा का खून कर उनके टुकड़े- टुकड़े कर दिए हैं। परन्तु सूचना देने वाला ही पहले पकड़ा जाता है, यह सोचकर वे मौन रहे। दूसरे दिन जब वे मस्जिद में गये तो बाबा को पूर्ववत् दृष्ट पुष्ट और स्वस्थ देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि पिछले दिन जो दृश्य देखा था, वह कहीं स्वप्न तो नहीं था?

बाबा बाल्याकाल से ही यौगिक क्रियाएँ किया करते थे और उन्हें जो अवस्था प्राप्त हो चुकी थी, उसका सत्य ज्ञान किसी को भी नहीं था। चिकित्सा के नाम से उन्होंने कभी किसी से एक पैसा भी स्वीकार नहीं किया। अपने उत्तम लोकप्रिय गुणों के कारण उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। उन्होंने अनेक निर्धनों और रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया। इस प्रसिद्ध डॉक्टरों के डॉक्टर (मसीहों के मसीहा) ने कभी अपने स्वार्थ की चिन्ता न कर अनेक विन्धों का सामना किया तथा स्वयं असहनीय वेदना और कष्ट सहन कर सदैव दूसरों की भलाई की और उन्हें विपत्तियों में सहायता पहुँचाई। वे सदा परकल्याणार्थ चिंतित रहते थे। ऐसी ही एक घटना नीचे लिखी जाती है, जो उनकी सर्वव्यपकता तथा महान् दयालुता की द्योतक है।

बाबा की सर्वव्यापकता और दयालुता

सन् १९१० में बाबा दीवाली के शुभ अवसर पर धूनी के समीप बैठे हुए अग्नि ताप रहे थे तथा साथ ही धूनी में लकड़ी भी डालते जा रहे थे। धूनी प्रचण्डता से प्रज्वलित थी। कुछ समय पश्चात् उन्होंने लकड़ियाँ डालने के बदले अपना हाथ धूनी में डाल दिया। हाथ बुरी तरह से झुलस गया। नौकर माधव तथा माधवराव देशपांडे ने बाबा को धूनी में हाथ डालते देखकर तुरन्त दौड़कर उन्हें बलपूर्वक पीछे खींच लिया।

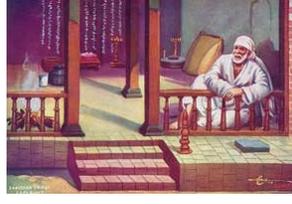
माधवराव ने बाबा से कहा, “देवा! आपने ऐसा क्यों किया ?” बाबा सावधान होकर कहने लगे, “यहाँ से कुछ दूरी पर एक लुहारिन जब भट्टी धौंक रही थी, उसी समय उसके पति ने उसे बुलाया। कमर से बँधे हुए शिशु का ध्यान छोड़ वह शीघ्रता से वहाँ दौड़कर गई। अभाग्यवश शिशु फिसल कर भट्टी में गिर पड़ा। मैंने तुरन्त भट्टी में हाथ डालकर शिशु के प्राण बचा लिए हैं। मुझे अपना हाथ जल जाने का कोई दुःख नहीं है, परन्तु मुझे हर्ष है कि एक मासूम शिशु के प्राण बच गए।”

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

नानासाहेब नीमगाँव पहुँचे (जो शिरडी से कुछ ही दूरी पर है) , बाबा पास बैठे हुए म्हालसापति, अप्पा शिंदे और काशीराम से वार्तालाप कर रहे थे। उसी समय मस्जिद में स्तब्धता छा गई और बाबा ने अचानक ही कहा, “ चलो, चारों मिलकर भजन करें। पंढरपुर के द्वार खुले हुए हैं-” यह भजन प्रेमपूर्वक गाएँ (“ पंढरपुरला जायाचें जायाचें तिथेंच मजला राह्याचें । तिथेंच मजला राह्याचें, घर तें माझ्या रायांचे।।) सब मिलकर गाने लगे। (भावार्थ-“मुझे पंढरपुर जाकर वहीं रहना है, क्योंकि वह मेरे स्वामी (ईश्वर) का घर है।”) बाबा गाते जाते और भक्तगण उसे दुहराते जाते थे। कुछ समय में नानासाहेब ने वहाँ सहकुटुम्ब पहुँचकर बाबा को प्रणाम किया। उन्होंने बाबा से पंढरपुर को साथ पधारने तथा वहाँ निवास करने की प्रार्थना की। पाठको ! अब इस प्रार्थना की आवश्यकता ही कहाँ थी? भक्तगण ने नानासाहेब को बतलाया कि बाबा पंढरपुर निवास के भाव में पहले ही से हैं। यह सुनकर नानासाहेब द्रवित हो श्री- चरणों पर गिर पड़े और बाबा की आज्ञा, उदी तथा आशीर्वाद प्राप्त कर वे पंढरपुर को रवाना हो गये।

बाबा की कथाएं अनन्त हैं। अन्य विषय जैसे - मानव जन्म का महत्व, बाबा का भिक्षा-वृत्ति पर निर्वाह, बायजाबाई की सेवा तथा अन्य कथाओं को अगले अध्याय के लिए शेष रखकर अब मुझे यहाँ विश्राम करना चाहिए।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



मानव जन्म का महत्त्व, श्रीसाईबाबा की भिक्षावृत्ति, बायजाबाई की सेवा- शुश्रूषा, श्रीसाईबाबा का शयनकक्ष, खुशालचन्द पर प्रेम।

जैसा कि गत अध्याय में कहा गया है, अब श्री हेमाडपन्त मानव जन्म की महत्ता को विस्तृत रूप में समझाते हैं। श्रीसाईबाबा किस प्रकार भिक्षा उपार्जन करते थे, बायजाबाई उनकी किस प्रकार सेवा-शुश्रूषा करती थीं, वे मस्जिद में तात्या कोते और म्हालसापति के साथ किस प्रकार शयन करते तथा खुशालचन्द पर उनका कैसा स्नेह था, इसका आगे वर्णन किया जाएगा।

मानव जन्म का महत्त्व

इस विवित्र संसार में ईश्वर ने लाखों प्राणियों (हिन्दू शास्त्र के अनुसार ८४ लाख योनियों) को उत्पन्न किया है (जिनमें देव, दानव, गन्धर्व, जीवजन्तु और मनुष्य आदि सम्मिलित हैं), जो स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में निवास करते और भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं। इन प्राणियों में **जिनका पुण्य प्रबल है, वे स्वर्ग में निवास करते और अपने सत्कृत्यों का फल भोगते हैं। पुण्य के क्षीण होते ही वे फिर निम्न स्तर में आ जाते हैं और वे प्राणी, जिन्होंने पाप या दुष्कर्म किए हैं, नरक को जाते और अपने कुकर्मों का फल भोगते हैं। जब उनके पाप और पुण्यों का समन्वय हो जाता है, तब उन्हें मानव-जन्म और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। जब पाप और पुण्य दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब वे मुक्त हो जाते हैं। अपने कर्म तथा प्रारब्ध के अनुसार ही आत्माएँ जन्म लेतीं या काया-प्रवेश करती हैं।**

मनुष्य शरीर अनमोल

यह सत्य है कि समस्त प्राणियों में चार बातें एक समान हैं - आहार, निद्रा, भय और मैथुन। मानव प्राणी को ज्ञान एक विशेष देन है, जिसकी सहायता से ही वह ईश्वर- दर्शन कर सकता है, जो अन्य किसी योनि में सम्भव नहीं। यही कारण है कि देवता भी मानव योनि से ईर्ष्या करते हैं तथा पृथ्वी पर मानव-जन्म धारण करने के हेतु सदैव लालायित रहते हैं, जिससे उन्हें अंत में मुक्ति प्राप्त हो।

किसी-किसी का ऐसा भी मत है कि मानव-शरीर अति दोषयुक्त है। यह कृमि, मज्जा और कफ से परिपूर्ण, क्षण-भंगुर, रोग-ग्रस्त तथा नश्वर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कथन अंशतः सत्य है। परन्तु इतना दोषपूर्ण होते हुए भी मानव-शरीर का मूल्य अधिक है, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति केवल इसी योनि में संभव है। मानव शरीर प्राप्त होने पर ही तो ज्ञात होता है कि यह शरीर नश्वर और विश्व परिवर्तनशील है और इस प्रकार धारणा कर इन्द्रिय-जन्य विषयों को तिलांजलि देकर तथा सत्-असत् का विवेक कर ईश्वर-साक्षात्कार किया जा सकता है। इसलिए यदि हम शरीर को तुच्छ और अपवित्र समझ कर उसकी उपेक्षा करें तो हम ईश्वर दर्शन के अवसर से वंचित रह जाएंगे। यदि हम उसे मूल्यवान समझ कर उसका मोह करेंगे तो हम इन्द्रिय-सुखों की ओर प्रवृत्त हो जाएंगे और तब हमारा पतन भी सुनिश्चित ही है।

इसलिये उचित मार्ग, जिसका अवलम्बन करना चाहिए, यह है कि न तो देह की उपेक्षा करो और न ही उसमें आसक्ति रखो। केवल इतना ही ध्यान रहे कि किसी घुडसवार का अपनी यात्रा में अपने घोड़े पर तब तक ही मोह रहता है, जब तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर लौट न आए।

इसलिए ईश्वर- दर्शन या आत्मसाक्षात्कार के निमित्त शरीर को सदा ही लगाए रखना चाहिए, जो जीवन का मुख्य ध्येय है। ऐसा कहा जाता है कि अनेक प्राणियों की उत्पत्ति करने के पश्चात् भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ;

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

परन्तु इसके विपरीत जो अवज्ञा करते, उन्हें दुर्भाग्य व दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता था। इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं और अन्य विषयों का अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायेगा।

विशेष

इस अध्याय के नीचे दी हुई टिप्पणी बाबा के खुशालचन्द पर प्रेम के संबंध में है। किस प्रकार उन्होंने काकासाहेब दीक्षित को राहाता जाकर खुशालचन्द को लिवा लाने को कहा और उसी दोपहर को खुशालचन्द से स्वप्न में शिरडी आने को कहा, इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, क्योंकि इसका वर्णन इस सच्चरित्रके ३० वें अध्याय में किया जाएगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

इसी प्रकार श्री साईबाबा शास्त्रग्रंथों की शिक्षा दिया करते थे।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ - गीता अ. ६, श्लोक ३०

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह



श्री साईबाबा का रहन सहन, शयन पटिया, शिरङ्गी में निवास, उनके उपदेश, उनकी विनयशीलता, नानावली सुगम पथ ।

प्रारम्भ

श्री साईबाबा का सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण करो, क्योंकि वे सदैव दूसरों के कल्याणार्थ तत्पर तथा आत्मलीन रहते थे। उनका स्मरण करना ही जीवन और मृत्यु की पहली हल करना है। साधनाओं में यह अति श्रेष्ठ तथा सरल साधना है, क्योंकि इसमें द्रव्य व्यय नहीं होता। केवल मामूली परिश्रम से ही भविष्य नितान्त फलदायक होता है। जब तक इन्द्रियाँ बलिष्ठ हैं, क्षण-क्षण इस साधना को आचरण में लाना चाहिए। अन्य सब देवी-देवता तो भ्रमित करने वाले हैं, केवल गुरु ही ईश्वर हैं। हमें उनके ही पवित्र चरणकमलों में श्रद्धा रखनी चाहिए। वे तो हर इन्सान के भाग्यविधाता और प्रेममय प्रभु हैं। जो अनन्य भाव से उनकी सेवा करेंगे, वे भवसागर से निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त होंगे। न्याय अथवा मीमांसा या दर्शनशास्त्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार नदी या समुद्र पार करते समय नाविक पर विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार का विश्वास हमें भवसागर से पार होने के लिए सद्गुरु पर करना चाहिए। सद्गुरु तो केवल भक्तों के भक्ति-भाव की ओर ही देखकर उन्हें ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करा देते हैं।

गत अध्याय में बाबा की भिक्षावृत्ति, भक्तों के अनुभव तथा अन्य विषयों का वर्णन किया गया है। अब पाठकगण सुनें कि श्रीसाईबाबा किस प्रकार रहते, शयन करते और शिक्षा प्रदान करते थे।

बाबा का विचित्र बिस्तर

पहले हम यह देखेंगे कि बाबा किस प्रकार शयन करते थे। श्री नानासाहेब डेंगले एक चार हाथ लम्बा और एक हथेली चौड़ी लकड़ी का तख्ता श्रीसाईबाबा के शयन के हेतु लाये। तख्ता कहीं नीचे रख कर उस पर सोते, ऐसा न कर बाबा ने पुरानी चिन्दियों से मस्जिद की बल्ली से उसे झूले के समान बाँधकर उस पर शयन करना प्रारम्भ कर दिया। चिन्दियों के बिलकुल पतली और कमजोर होने के कारण लोगों को उसका झूला बनाना एक पहेली-सा बन गया। चिन्दियाँ को केवल तख्ते का भी भार वहन नहीं कर सकती थीं। फिर वे बाबा के शरीर का भार किस प्रकार सहन कर सकेंगी? जिस प्रकार भी हो, यह तो राम ही जानें, परन्तु यह तो बाबा की एक लीला थी; जो फटी चिन्दियाँ तख्ते तथा बाबा का भार सँभाल रही थीं। तख्ते के चारों कोनों पर दीपक रात्रि भर जला करते थे। बाबा को तख्ते पर बैठे या शयन करते हुए देखना, देवताओं को भी दुर्लभ दृश्य था। सब आश्चर्यचकित थे कि बाबा किस प्रकार तख्ते पर चढ़ते होंगे और किस प्रकार नीचे उतरते होंगे। कौतूहलवश लोग इस रहस्योद्घाटन के हेतु दृष्टि लगाए रहते थे, परन्तु यह समझने में कोई भी सफल न हो सका और इस रहस्य को जानने के लिए भीड़ उत्तरोत्तर ही बढ़ने लगी। इस कारण बाबा ने एक दिन तख्ता तोड़कर बाहर फेंक दिया। यद्यपि बाबा को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी उनका प्रयोग नहीं किया और न कभी उनकी ऐसी इच्छा ही हुई। वे तो स्वतः ही स्वाभाविक रूप से पूर्णता प्राप्त होने के कारण उनके पास आ गई थीं।

ब्रह्म का सगुण अवतार

बाह्यदृष्टिसे श्रीसाईबाबा साढ़े तीन हाथ लम्बे एक सामान्य पुरुष थे, फिर भी प्रत्येक के हृदय में वे विराजमान थे। अंदर से वे आसक्ति-रहित और स्थिर थे, परन्तु बाहर से जन-कल्याण के लिये सदैव चिन्तित रहते थे। अंदर से वे संपूर्ण रूप से निःस्वार्थी थे। भक्तों के निमित्त उनके हृदय में परम शांति विराजमान थी, परन्तु बाहर से वे अशान्त

सुगम पथ सन्तों की कथाओं का श्रवण करना और उनका समागम

यद्यपि बाह्य दृष्टि से श्रीसाईबाबा का आचरण सामान्य पुरुषों के सदृश ही था, परन्तु उनके कार्यों से उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता और चतुराई स्पष्ट ही प्रतीत होती थी। उनके समस्त कर्म भक्तों की भलाई के निमित्त ही होते थे। उन्होंने कभी भी अपने भक्तों को किसी आसन या प्राणायाम के नियमों अथवा किसी उपासना का आदेश कभी नहीं दिया और न उनके कानों में कोई मन्त्र ही फूँका। उनका तो सभी के लिए यही कहना था कि **चातुर्य त्याग कर सदैव 'साई साई' यही स्मरण करो। इस प्रकार आचरण करने से समस्त बन्धन छूट जाएंगे और तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जाएगी।** पंचाग्नि, तप, त्याग, स्मरण, अष्टांग योग आदि का साध्य होना केवल ब्राह्मणों को ही सम्भव है।

मन का कार्य विचार करना है। बिना विचार किए वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि तुम उसे किसी विषय में लगा दोगे तो वह उसी का चिन्तन करने लगेगा और यदि उसे गुरु को अर्पण कर दोगे तो वह गुरु के सम्बन्ध में ही चिन्तन करता रहेगा। आप लोग बहुत ध्यानपूर्वक साई की महानता और श्रेष्ठता श्रवण कर ही चुके हैं। यह स्वाभाविक स्मरण और पूजन ही साई का कीर्तन है। सन्तों की कथा का स्मरण उतना कठिन नहीं, जितना कि अन्य साधनाओं का, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ये कथाएँ सांसारिक भय को निर्मूल कर आध्यात्मिक पथ पर आरुढ़ करती हैं। इसलिए इन कथाओं का हमेशा श्रवण और मनन करो तथा आचरण में भी लाओ। सांसारिक कार्यों में लगे रहने पर भी अपना चित्त साई और उनकी कथाओं में लगाए रहो। तब तो यह निश्चित है कि वे कृपा अवश्य करेंगे। यह मार्ग अति सरल होने पर भी क्या कारण है कि सब कोई इसका अवलम्बन नहीं करते? कारण केवल यह है कि ईश-कृपा के अभाववश लोगों में सन्त कथाएँ श्रवण करने की रुचि उत्पन्न नहीं होती। ईश्वर की कृपा से ही प्रत्येक कार्य सुचारु एवं सुंदर ढंग से चलता है। सन्तों की कथा का श्रवण ही सन्तसमागम सदृश है। सन्त-सान्निध्य का महत्व अति महान् है। उससे दैहिक बुद्धि, अहंकार और जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति हो जाती है। हृदय की समस्त ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और ईश्वर से मिलन हो जाता है, जोकि चैतन्यघन स्वरूप है। विषयों से निश्चय ही विरक्ति बढ़ती है तथा दुःखों और सुखों में स्थिर रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और आध्यात्मिक उन्नति सुलभ हो जाती है। यदि तुम कोई साधन जैसे- नामस्मरण, पूजन या भक्ति इत्यादि नहीं करते, परन्तु अनन्य भाव से केवल सन्तों के ही शरणागत हो जाओ तो वे तुम्हें आसानी से भवसागर के उस पार उतार देंगे। इसी कार्य के निमित्त ही सन्त विश्व में प्रगट होते हैं। पवित्र नदियाँ - गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि जो संसार के समस्त पापों को धो देती हैं, वे भी सदैव इच्छा करती हैं कि कोई महात्मा अपने चरण-स्पर्श से हमें पावन करे। ऐसा सन्तों का प्रभाव है। गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही श्रीसाई चरणों की प्राप्ति संभव है।

मैं श्रीसाई के मोह-विनाशक चरणों का ध्यान कर यह अध्याय समाप्त करता हूँ। उनका स्वरूप कितना सुन्दर और मनोहर है ! मस्जिद के किनारे पर खड़े हुए वे सब भक्तों को, उनके कल्याणार्थ उदी वितरण किया करते हैं, जो इस विश्व को मिथ्या मानकर सदा आत्मानंद में निमग्न रहते थे, ऐसे सच्चिदानंद श्रीसाईमहाराज के चरणकमलों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

इच्छानुसार मस्जिद में आने-जाने लगे। कभी-कभी बाबा उन्हें कुछ रुपयें भी भेंट में दे दिया करते थे। इस प्रकार हाजी बाबा के दरबार में सम्मिलित हो गए।

बाबा का तत्त्वों पर नियंत्रण

बाबा के तत्त्व-नियंत्रण की दो घटनाओं के उल्लेख के साथ ही यह अध्याय समाप्त हो जाएगा।

(१) एक बार सन्ध्या समय शिरड़ी में भयानक झंझावात आया। आकाश में घने और काले बादल छाए हुए थे। पवन झकोर से बह रहा था। बादल गरजते और बिजली चमक रही थी। मूसलधार वर्षा प्रारंभ हो गई। जहाँ देखो, वहाँ जल ही जल दृष्टिगोचर होने लगा। सब पशु, पक्षी और शिरड़ीवासी अधिक भयभीत होकर मस्जिद में एकत्रित हुए। शिरड़ी में देवियाँ तो अनकों हैं, परन्तु उस दिन सहायतार्थ कोई न आई। इसलिए सभी ने अपने भगवान साई से, जो भक्ति के ही भूखे थे, संकट-निवारण करने की प्रार्थना की। बाबा को भी दया आ गई और वे बाहर निकल आए। मस्जिद के समीप खड़े होकर उन्होंने बादलों की ओर दृष्टि कर गरजते हुए शब्दों में कहा कि “बस, शांत हो जाओ।” कुछ समय के बाद ही वर्षा का जोर कम हो गया और पवन मन्द पड़ गया तथा आँधी भी शान्त हो गई। आकाश में चन्द्र देव उदित हो गए। तब सब लोग अति प्रसन्न होकर अपने-अपने घर लौट आए।

(२) एक अन्य अवसर पर मध्याह्न के समय धूनी की अग्नि इतनी प्रचण्ड होकर जलने लगी कि उसकी लपटें ऊपर छत तक पहुँचने लगीं। मस्जिद में बैठे हुए लोगों की समझ में न आता था कि जल डाल कर अग्नि शांत कर दें अथवा कोई अन्य उपाय काम में लावें। बाबा से पूछने का साहस भी कोई नहीं कर पा रहा था।

परन्तु बाबा शीघ्र परिस्थिति को जान गए। उन्होंने अपना सटका उठाकर सामने के खम्भे पर बलपूर्वक प्रहार किया और बोले “नीचे उतरो और शान्त हो जाओ।” सटके की प्रत्येक टोकर पर लपटें कम होने लगीं और कुछ मिनटों में ही धूनी शान्त और यथापूर्व हो गई। श्रीसाई ईश्वर के अवतार हैं। जो उनके सामने नत होकर उनके शरणागत होगा, उस पर वे अवश्य कृपा करेंगे। जो भक्त इस अध्याय की कथाएँ प्रतिदिन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पठन करेगा, उसका दुःखों से शीघ्र ही छुटकारा हो जाएगा। केवल इतना ही नहीं, वरन् उसे सदैव श्रीसाई चरणों का स्मरण बना रहेगा और उसे अल्प काल में ही ईश्वर-दर्शन की प्राप्ति होकर, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाएंगी और इस प्रकार वह निष्काम बन जाएगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

अद्भुत लीला देखकर सब भक्त और मुले शास्त्री द्रवित हो गए। “ गेरु लाओ, आज भगवा वस्त्र रँगेंगे”- बाबा के इन शब्दों का अर्थ अब सब की समझ में आ गया। ऐसी अद्भुत लीला श्री साईबाबा की थी।

डॉक्टर

एक समय एक मामलतदार अपने एक डॉक्टर मित्र के साथ शिरडी पधारे। डॉक्टर का कहना था कि मेरे इष्ट श्रीराम हैं। मैं किसी यवन को मस्तक न नमाऊँगा। अतः वे शिरडी जाने में असहमत थे। मामलतदार ने समझाया कि “ तुम्हें नमन करने को कोई बाध्य न करेगा और नहीं तुम्हें कोई ऐसा करने को कहेगा। अतः मेरे साथ चलो, आनन्द रहेगा।” वे शिरडी पहुँचे और बाबा के दर्शन को गए। परन्तु डॉक्टर को ही सबसे आगे जाते देख और बाबा की प्रथम ही चरण-वन्दना करते देख सब को बड़ा विस्मय हुआ। लोगों ने डॉक्टर से अपना निश्चय बदलने और इस भाँति एक यवन को दंडवत् करने का कारण पूछा। डॉक्टर ने बतलाया कि बाबा के स्थान पर उन्हें अपने प्रिय इष्ट देव श्रीराम के दर्शन हुए और इसलिए उन्होंने नमस्कार किया। जब वे ऐसा कह ही रहे थे, तभी उन्हें साईबाबा का रूप पुनः देखने लगा। वे आश्चर्यचकित होकर बोले-“ क्या यह स्वप्न है? ये यवन कैसे हो सकते हैं? अरे ! अरे! यह तो पूर्ण योग-अवतार हैं।” दूसरे दिन से उन्होंने उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक बाबा स्वयं बुलाकर आशीर्वाद नहीं देंगे, तब तक मस्जिद में कदापि न जाऊँगा। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। चौथे दिन उनका एक इष्ट मित्र खानदेश से शिरडी आया। वे दोनों मस्जिद में बाबा के दर्शन करने गए। नमस्कार होने के बाद बाबाने डॉक्टर से पूछा, “ आपको बुलाने का कष्ट किसने किया? आप यहाँ कैसे पधारे ?” यह जटिल और सूचक प्रश्न सुनकर डॉक्टर द्रवित हो गए और उसी रात्रि को बाबा ने उनपर कृपा की। डॉक्टर को निद्रा में ही परमानन्द का अनुभव हुआ। वे अपने शहर लौट आए तो भी उन्हें १५ दिनों तक वैसा ही अनुभव होता रहा। इस प्रकार उनकी साईभक्ति कई गुणा बढ़ गई। उपर्युक्त कथाओं की शिक्षा, विशेषतः मुले शास्त्री की, यही है कि हमें अपने गुरु में दृढ विश्वास होना चाहिए। अगले अध्याय में बाबा की अन्य लीलाओं का वर्णन होगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

खून की उल्टियाँ हुआ करती थीं, परन्तु बाबा के समक्ष उसे कोई उल्टी न हुई। जिस समय से बाबा ने अपने श्री-मुख से आशा और दयापूर्ण शब्दों में उक्त उद्गार प्रगट किए, उसी समय से रोग ने भी पल्टा खाया। बाबा ने रोगी को भीमाबाई के घर में ठहरने को कहा। यह स्थान इस प्रकार के रोगी को सुविधाजनक और स्वास्थ्यप्रद तो न था, फिर भी बाबा की आज्ञा कौन टाल सकता था? वहाँ पर रहते हुए बाबाने दो स्वप्न देकर उसका रोग हरण कर लिया। पहले स्वप्न में रोगी ने देखा कि वह एक विद्यार्थी है और शिक्षक के सामने कविता मुख्याग्र न सुना सकने के दण्डस्वरूप बेटों की मार से असहनीय कष्ट भोग रहा है। दूसरे स्वप्न में उसने देखा कि कोई हृदय पर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे की ओर पत्थर घुमा रहा है, जिससे उसे असह्य पीड़ा हो रही है। स्वप्न में इस प्रकार कष्ट पाकर वह स्वस्थ हो गया और घर लौट आया। वह कभी-कभी शिरड़ी आता और साईबाबा की दया का स्मरण कर साष्टांग प्रणाम करता था। बाबा अपने भक्तों से किसी वस्तु की आशा न रखते थे। वे तो केवल स्मरण, दृढ़ निष्ठा और भक्ति के भूखे थे। महाराष्ट्र के लोग प्रतिपक्ष या प्रतिमास सदैव सत्यनारायण का व्रत किया करते हैं। परन्तु अपने गाँव पहुँचने पर भीमाजी पाटील ने सत्यनारायण व्रत के स्थान पर एक नया ही 'सत्य साई व्रत' प्रारम्भ कर दिया।

बाला गणपत दर्जी

एक दूसरे-भक्त, जिनका नाम बाला गणपत दर्जी था, एक समय जीर्ण ज्वर से पीड़ित हुए। उन्होंने सब प्रकार की दवाइयाँ और काढ़े लिए, परन्तु इनसे कोई लाभ न हुआ। जब ज्वर तिलमात्र भी न घटा तो वे शिरड़ी दौड़े आए और बाबा के श्रीचरणों की शरण ली। बाबा ने उन्हें विचित्र आदेश दिया कि " लक्ष्मी मंदिर के पास जाकर एक काले कुत्ते को थोड़ासा दही और चावल खिलाओ।" वे यह समझ न सके कि इस आदेश का पालन कैसे करें? घर पहुँचकर चावल और दही लेकर वे लक्ष्मी मंदिर पहुँचे, जहाँ उन्हें एक काला कुत्ता पूँछ हिलाते हुए दिखा। उन्होंने वह चावल और दही उस कुत्ते के सामने रख दिया, जिसे वह तुरन्त ही खा गया। इस चरित्र की विशेषता का वर्णन कैसे करूँ कि उपर्युक्त क्रिया करने मात्र से ही बाला दर्जी का ज्वर हमेशा के लिए जाता रहा।

बापूसाहेब बूटी

श्रीमान् बापूसाहेब बूटी एक बार अम्लपित्त के रोग से पीड़ित हुए। उनकी आलमारी में अनेक औषधियाँ थीं, परन्तु कोई भी गुणकारी न हो रही थी। बापूसाहेब अम्लपित्त के कारण अति दुर्बल हो गए और उनकी स्थिति इतनी गम्भीर हो गई कि वे अब मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन करने में भी असमर्थ थे। बाबा ने उन्हें बुलाकर अपने सम्मुख बिठाया और बोले, "सावधान, अब तुम्हें दस्त न लगेंगे।" अपनी उँगली उठाकर फिर कहने लगे, " उलटियाँ भी अवश्य रुक जाएँगी। " बाबा ने ऐसी कृपा की कि रोग समूल नष्ट हो गया और बूटीसाहेब पूर्ण स्वस्थ हो गए।

एक अन्य अवसर पर भी वे हैजा से पीड़ित हो गए। फलस्वरूप उनकी प्यास अधिक तीव्र हो गई। डॉ. पिल्ले ने हर तरह के उपचार किए, परन्तु स्थिति न सुधरी। अन्त में वे फिर बाबा के पास पहुँचे और उनसे तृषारोग निवारण की औषधि के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर बाबा ने उन्हें " मीठे दूध में उबाला हुआ बादाम, अखरोट और पिस्ते का काढ़ा पियो।" - यह औषधि बतला दी।

दूसरा डॉक्टर या हकीम बाबा की बतलाई हुई इस औषधि को प्राणघातक ही समझता, परन्तु बाबा की आज्ञा का पालन करने से यह रोगनाशक सिद्ध हुई और आश्चर्य की बात है कि रोग समूल नष्ट हो गया।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

श्री नानासाहेब चाँदोरकर को भी एक बार उदर में बहुत पीड़ा होने लगी। वे दिनरात मछली के समान तड़पने लगे । डॉक्टरों ने अनेक उपचार किए, परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्त में वे बाबा की शरण में आए । बाबाने उन्हें घी के साथ बर्फी खाने की आज्ञा दी। इस औषधि के सेवन से वे पूर्ण स्वस्थ हो गए।

इन सब कथाओं से यही प्रतीत होता है कि सच्ची औषधि, जिससे अनेकों को स्वास्थ्य -लाभ हुआ, वह बाबा के केवल श्रीमुख से उच्चारित वचनों एवं उनकी कृपा का ही प्रभाव था।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

सप्ताह पारायण:द्वितीय विश्राम

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

हुए तो तुरन्त उसमें से एक पैसा वापस कर देते थे। जब बाबा की कीर्ति दूर-दूर तक फैली और लोगों के झुण्ड के झुण्ड बाबा के दर्शनार्थ आने लगे, तब बाबा ने उनसे दक्षिणा लेना आरम्भ कर दिया। श्रुति कहती है कि स्वर्ण मुद्रा के अभाव में भगवतपूजन भी अपूर्ण है। अतः जब ईश्वर-पूजन में मुद्रा आवश्यक है तो फिर सन्तपूजन में क्यों न हो ? इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि ईश्वर, राजा, सन्त या गुरु के दर्शन, अपनी सामर्थ्यानुसार बिना कुछ अर्पण किए, कभी न करना चाहिए। उन्हें क्या भेंट दी जाए? अधिकतर मुद्रा या धन। इस सम्बन्ध में उपनिषदों में वर्णित नियमों का अवलोकन करें। बृहदारण्यक उपनिषद् में बताया गया है कि दक्ष प्रजापति ने देवता, मनुष्य और राक्षसों के सामने एक अक्षर 'द' का उच्चारण किया। देवताओं ने इसका अर्थ लगाया कि उन्हें दम अर्थात् आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों ने समझा कि उन्हें दान का अभ्यास करना चाहिए तथा राक्षसों ने सोचा कि हमें दया का अभ्यास करना चाहिए। मनुष्यों को दान की सलाह दी गई। तैत्तिरीय उपनिषद् में दान व अन्य सत्त्व गुणों को अभ्यास में लाने की बात कही गयी है। दान के संबंध में लिखा है:- " विश्वासपूर्वक दान करो, उसके बिना दान व्यर्थ है। उदार हृदय तथा विनम्र बन कर, आदर और सहानुभूतिपूर्वक दान करो। " भक्तों को कांचन-त्याग का पाठ पढ़ाने तथा उनकी आसक्ति दूर करने और चित्त शूद्ध कराने के लिए ही बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे। परन्तु उनकी एक विशेषता भी थी। बाबा कहा करते थे कि "जो कुछ भी मैं स्वीकार करता हूँ, मुझे उसके शत गुणोंसे अधिक वापस करना पड़ता है।" इसके अनेक प्रमाण हैं।

एक घटना

श्री. गणपतराव बोडस, प्रसिद्ध कलाकार, अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं कि बाबा के बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने अपने रुपयोंकी थैली उनके सामने उँडेल दी। श्री बोडस लिखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन में फिर उन्हें धन का अभाव कभी न हुआ तथा प्रचुर मात्रा में लाभ ही होता रहा। इसका एक भिन्न अर्थ भी है। अनेकों बार बाबा ने किसी प्रकार की दक्षिण स्वीकार भी नहीं की। इसके दो उदाहरण हैं। बाबा ने प्रो.सी.के. नारके से १५ रुपये दक्षिणा माँगी। वे प्रत्युत्तर में बोले कि मेरे पास तो एक पाई नहीं है। तब बाबा ने कहा कि "मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास कोई द्रव्य नहीं है, परन्तु तुम योगवासिष्ठ का अध्ययन तो करते हो, उसमें से ही दक्षिणा दो।" यहाँ दक्षिणा का अर्थ है- पुस्तक से शिक्षा ग्रहण कर हृदयंगम करना, जोकि बाबा का निवासस्थान है।

(२) एक दूसरी घटना में, उन्होंने एक महिला श्रीमती आर. ए. तर्खड़ से छः रुपये दक्षिणा माँगी। महिला बहुत दुःखी हुई, क्योंकि उनके पास देने को कुछ भी न था। उनके पति ने उन्हें समझाया कि बाबा का अर्थ तो षड्रिपुओं से है, जिन्हें बाबा को समर्पित कर देना चाहिए। बाबा इस अर्थ से सहमत हो गए। यह ध्यान देने योग्य है कि बाबा के पास दक्षिणा के रूप में बहुत-सा द्रव्य एकत्रित हो जाता था। सब द्रव्य वे उसी दिन व्यय कर देते और दूसरे दिन फिर सदैव की भाँति निर्धन बन जाते थे। जब उन्होंने महासमाधि ली तो १० वर्ष तक हजारों रुपया दक्षिणा मिलने पर भी उनके पास स्वल्प राशि ही शेष थी। संक्षेप में दक्षिणा लेने का मुख्य ध्येय तो भक्तों को केवल शुद्धीकरण का पाठ ही सिखाना था।

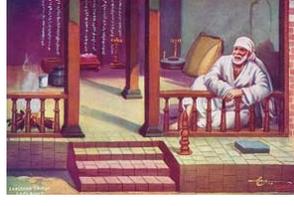
दक्षिणा का मर्म

ठाणे के श्री. बी.व्ही. देव, (सेवा-निवृत्त प्रान्त मामलतदार, जो बाबा के परम भक्त थे) ने इस विषय पर एक लेख (साई लीला पत्रिका, भाग ७ पृष्ठ ६२६) अन्य विषयों सहित प्रकाशित किया है, जो निम्न प्रकार है: - " बाबा हर एक व्यक्ति से दक्षिणा नहीं लेते थे। यदि बाबा के बिना माँगे किसी ने दक्षिणा भेंट की तो वे कभी तो स्वीकार कर लेते और कभी अस्वीकार भी कर देते थे। वे केवल भक्तों से ही कुछ माँगा करते थे। उन्होंने उन लोगों से कभी कुछ न माँगा, जो सोचते थे कि बाबा के माँगने पर ही दक्षिणा देंगे। यदि किसी ने उनकी इच्छा के विरुद्ध दक्षिणा दे दी तो वे वहाँ से उसे उठाने को कह देते थे। वे यथायोग्य राशि भक्तों की इच्छा, भक्ति और सुविधा के अनुसार ही उनसे माँगा करते थे। स्त्री और बालकों से भी वे दक्षिणा ले लेते थे। उन्होंने सभी धनाढ्यों या निर्धनों से कभी दक्षिणा नहीं माँगी। बाबा के माँगने पर भी जिन्होंने दक्षिणा न दी, उनसे वे कभी क्रोधित नहीं हुए। यदि किसी मित्र द्वारा उन्हें दक्षिणा भिजवाई गई होती और उसका उसे स्मरण न रहता तो बाबा किसी न किसी प्रकार उसे स्मरण कराकर वह दक्षिणा ले लेते थे। कुछ अवसरों पर वे दक्षिणा की राशि में से कुछ अंश लौटा भी देते और देने वालों को सँभाल कर रखने या पूजन में रखने के लिए कह देते थे। इससे दाता या भक्त को बहुत लाभ पहुँचता था। यदि किसी ने अपनी इच्छित राशि से अधिक भेंट की तो वे वह अधिक राशि लौटा देते थे। किसी-किसी से तो वे उसकी इच्छित राशि से भी अधिक माँग बैठते थे और यदि उसके पास नहीं होती तो दूसरे से उधार लेने या दूसरों से माँगने को भी कहते थे। किसी-किसी से तो दिन में ३-४ बार दक्षिणा माँगा करते थे।

दक्षिणा में एकत्रित राशि में से बाबा अपने लिए बहुत थोड़ा खर्च किया करते थे। जैसे-चिलम पीने की तंबाखू और धूनी के लिए लकड़ियाँ मोल लेने के लिये आदि। शेष अन्य व्यक्तियों को विभिन्न राशियों में भिक्षास्वरूप दे देते थे। शिरडी संस्थान की समस्त सामग्रियाँ राधाकृष्णमाई की प्रेरणा से ही धनी भक्तों ने एकत्र की थीं। अधिक मूल्यवाले पदार्थ लाने वालों से बाबा अति क्रोधित हो जाते और अपशब्द कहने लगते थे। उन्होंने श्री नानासाहेब चाँदोकर से कहा कि मेरी सम्पत्ति केवल एक कौपीन और टमरेल है। लोग बिना कारण ही मूल्यवान पदार्थ लाकर मुझे दुःखित करते हैं। कामिनी और कांचन मार्ग में दो मुख्य बाधाएँ हैं और बाबा ने इसके लिए दो पाठशालाएँ खोली थीं। यथा- दक्षिणा ग्रहण करना और राधाकृष्णमाई के यहाँ भोजना -इस बात की परीक्षा करने के लिए कि क्या उनके भक्तों ने इन आसक्तियों से छुटकारा पा लिया है या नहीं। इसीलिए जब कोई आता तो वे उनसे दक्षिणा माँगते और उनसे शाला में (राधाकृष्णमाई के घर) जाने को कहते। यदि वे इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि वे कामिनी और कांचन की आसक्ति से विरक्त हैं तो बाबा की कृपा और आशीर्वाद से उनकी आध्यात्मिक उन्नति निश्चय ही हो जाती थी।

श्री देव ने गीता और उपनिषद् से घटनाएँ उद्धृत की हैं और कहते हैं कि किसी तीर्थस्थान में किसी पूज्य सन्त को दिया हुआ दान दाता को बहुत कल्याणकारी होता है। शिरडी और शिरडी के प्रमुख देवता साईबाबा से पवित्र और है ही क्या?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



शीघ्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान की योग्यताएँ, बाबा का उपदेश, बाबा का वैशिष्ट्य (इन दो अध्यायों में एक धनाढ्य ने किस प्रकार साईबाबा से शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहा था, उसका वर्णन है।)

पूर्व विषय

गत अध्याय में श्री चोलकर का अल्प संकल्प किस प्रकार पूर्णतः फलीभूत हुआ, इसका वर्णन किया गया है। उस कथा में श्रीसाईबाबा ने दर्शाया था कि प्रेम तथा भक्तिपूर्वक अर्पित की हुई तुच्छ वस्तु भी वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे, परन्तु यदि वह अहंकारसहित भेंट की गई तो वह अस्वीकृत कर दी जाती थी। पूर्ण सच्चिदानन्द होने के कारण वे बाह्य आचार-विचारों को विशेष महत्त्व न देते थे और विनम्रता और आदरसहित भेंट की गई वस्तु का स्वागत करते थे।

यथार्थ में देखा जाय तो सद्गुरु साईबाबा से अधिक दयालु और हितैषी दूसरा इस संसार में कौन हो सकता है? उनकी तुलना (समानता) समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि या कामधेनु से भी नहीं हो सकती। जिस अमूल्य निधि की उपलब्धि हमें सद्गुरु से होती है, वह कल्पना से भी परे है।

ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आए हुए एक धनाढ्य व्यक्ति को श्रीसाईबाबा ने किस प्रकार उपदेश किया, उसे अब श्रवण करें।

एक धनी व्यक्ति (दुर्भाग्य से मूल ग्रंथ में उसका नाम और परिचय नहीं दिया गया है) अपने जीवन में सब प्रकार से संपन्न था। उसके पास अतुल सम्पत्ति, घोड़े, भूमि और अनेक दास और दासियाँ थीं। जब बाबा की कीर्ति उसके कानों तक पहुँची तो उसने अपने एक मित्र से कहा कि “ मेरे लिए अब किसी वस्तु की अभिलाषा शेष नहीं रह गई है, इसलिए अब शिरडी जाकर बाबा से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यदि किसी प्रकार उसकी प्राप्ति हो गई तो फिर मुझसे अधिक सुखी और कौन हो सकता है?” उनके मित्र ने उन्हें समझाया कि “ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सहज नहीं है, विशेषकर तुम जैसे मोहग्रस्त को, जो सदैव स्त्री, सन्तान और द्रव्योपार्जन में ही फँसा रहता है। तुम्हारी ब्रह्मज्ञान की आकांक्षा की पूर्ति कौन करेगा, जो भूलकर भी कभी एक फूटी कौड़ी का भी दान नहीं देता ?”

अपने मित्र के परामर्श की उपेक्षा कर वे आने-जाने के लिए एक ताँगा लेकर शिरडी आये और सीधे मस्जिद पहुँचे। साईबाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे और प्रार्थना की कि “आप यहाँ आनेवाले समस्त लोगों को अल्प समय में ही ब्रह्म-दर्शन करा देते हैं, केवल यही सुनकर मैं बहुत दूर से इतना मार्ग चलकर आया हूँ । मैं इस यात्रा से अधिक थक गया हूँ। यदि कहीं मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाए तो मैं यह कष्ट उठाना अधिक सफल और सार्थक समझूँगा।”

बाबा बोले “ मेरे प्रिय मित्र । इतने अधीर न होओ। मैं तुम्हें शीघ्र ही ब्रह्म का दर्शन करा दूँगा। मेरे सब व्यवहार तो नगद ही हैं और मैं उधार कभी नहीं करता। इसी कारण अनेक लोग धन, स्वास्थ्य, शक्ति, मान, पद आरोग्य तथा अन्य पदार्थों की इच्छापूर्ति के हेतु मेरे समीप आते हैं। ऐसा तो कोई विरला ही आता है, जो ब्रह्मज्ञान का पिपासु हो । भौतिक पदार्थों की अभिलाषा से यहाँ आने वाले लोगों का कोई अभाव नहीं, परन्तु आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का आगमन बहुत ही दुर्लभ है। मैं सोचता हूँ कि यह क्षण मेरे लिए बहुत ही धन्य तथा शुभ है, जब आप जैसे महानुभाव यहाँ पधारकर मुझे ब्रह्मज्ञान देने के लिए जोर दे रहे हैं। मैं सहर्ष आपको ब्रह्म-दर्शन करा दूँगा।”

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

यह कहकर बाबा ने उन्हें ब्रह्म - दर्शन कराने के हेतु अपने पास बिठा लिया और इधर-उधर की चर्चाओं में लगा दिया, जिससे कुछ समय के लिए वे अपना प्रश्न भूल गए। उन्होंने एक बालक को बुलाकर नंदू मारवाड़ी के यहाँ से पाँच रुपए उधार लाने को भेजा। उड़के ने वापस आकर बतलाया कि नन्दू का तो कोई पता नहीं है और उसके घर पर ताला पड़ा है। फिर बाबा ने उसे दूसरे व्यापारी के यहाँ भेजा। इस बार भी लड़का रुपए लाने में असफल ही रहा। इस प्रयोग को दो-तीन बार दुहराने पर भी उसका परिणाम पूर्ववत् ही निकला।

हमें ज्ञात ही है कि बाबा स्वयं सगुण ब्रह्म के अवतार थे। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इस पाँच रुपये जैसी तुच्छ राशि की यथार्थ में उन्हें आवश्यकता ही क्या थी? और उस ऋण को प्राप्त करने के लिए इतना कठिन परिश्रम क्यों किया गया? उन्हें तो इसकी बिलकुल आवश्यकता ही न थी। वे तो पूर्ण रीति से जानते होंगे कि नन्दूजी घर पर नहीं है। यह नाटक तो उन्होंने केवल अन्वेषक के परीक्षार्थ ही रचा था। ब्रह्मजिज्ञासु महाशय जी के पास नोटों की अनेक गड़्डियाँ थीं और यदि वे सचमुच ही ब्रह्मज्ञान के अकांक्षी होते तो इतने समय तक शान्त न बैठते। जब बाबा व्यग्रतापूर्वक पाँच रुपये उधार लाने के लिए बालक को यहाँ-वहाँ दौड़ा रहे थे तो वे दर्शन बने ही न बैठे रहते। वे जानते थे कि बाबा अपने वचन पूर्ण करके ऋण अवश्य चुकायेंगे। यद्यपि बाबा द्वारा इच्छित राशि बहुत ही अल्प थी, फिर भी वह स्वयं संकल्प करने में असमर्थ ही रहा और पाँच रुपया उधार देने तक का साहस न कर सका। पाठक थोड़ा विचार करें कि ऐसा व्यक्ति बाबा से ब्रह्मज्ञान, जो विश्व की अति श्रेष्ठ वस्तु है, उसकी प्राप्ति के लिए आया है। यदि बाबा से सचमुच प्रेम करने वाला अन्य कोई व्यक्ति होता तो वह केवल दर्शक न बनकर तुरन्त ही पाँच रुपये दे देता। परन्तु इन महाशय की दशा तो बिलकुल ही विपरीत थी। उन्होंने न रुपये दिए और न शान्त ही बैठे, वरन् वापस जल्द लौटने की तैयारी करने लगे और अधीर होकर बाबा से बोले कि “ अरे बाबा ! कृपया मुझे शीघ्र ब्रह्मज्ञान दो। ” बाबा ने उत्तर दिया कि “ मेरे प्यारे मित्र ! क्या इस नाटक से तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया? मैं तुम्हें ब्रह्मदर्शन कराने का ही तो प्रयत्न कर रहा था ! संक्षेप में तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का दर्शन करने के लिए पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है:-

- (१) पाँच प्राण
- (२) पाँच इन्द्रियाँ
- (३) मन
- (४) बुद्धि तथा
- (५) अहंकार।

यह हुआ ब्रह्मज्ञान। आत्मानुभूति का मार्ग भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार तलवार की धार पर चलना।”

श्री साईबाबा ने फिर इस विषय पर विस्तृत वक्तव्य दिया, जिसका सारांश यह है:-

ब्रह्मज्ञान या आत्मानुभूति की योग्यताएँ

सामान्य मनुष्यों को प्रायः अपने जीवन-काल में ब्रह्म के दर्शन नहीं होते। उसकी प्राप्ति के लिए कुछ योग्यताओं का भी होना नितान्त आवश्यक है।

(१) मुमुक्षुत्व (मुक्ति की तीव्र उत्कण्ठा)

जो सोचता है कि मैं बन्धन में हूँ और इस बन्धन से मुक्त होना चाहे तो इस ध्येय की प्राप्ति के लिए उत्सुकता और दृढ़ संकल्प से प्रयत्न करता रहे तथा प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहे, वही इस आध्यात्मिक मार्ग पर चलने योग्य है।

(२) विरक्ति

लोक-परलोक के समस्त पदार्थों से उदासीनता का भाव। ऐहिक वस्तुएँ, लाभ और प्रतिष्ठा, जो कि कर्मजन्य हैं-जब तक इनसे उदासीनता उत्पन्न न होगी, तब तक उसे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने का अधिकार नहीं।

(३) अन्तर्मुखता

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

आए और जिन्होंने दिन-रात ही उनका ध्यान किया, उन्हें उनसे अभिन्नता प्राप्त हुई, जिस प्रकार कि माधुर्य और मिश्री, लहर और समुद्र तथा नेत्र और कांति में अभिन्नता हुआ करती है। जो आवागमन के चक्र से मुक्त होना चाहें, वे शांत और स्थिर होकर अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करें। दुःखदायी कटु शब्दों के प्रयोग से किसी को दुःखित न कर सदैव उत्तम कार्यों में संलग्न रहकर अपना कर्तव्य करते हुए अनन्य भाव से भयरहित हो उनकी शरण में जाना चाहिए। जो पूर्ण विश्वास से उनकी लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करेगा तथा अन्य वस्तुओं की चिंता त्याग देगा, उसे निस्संदेह ही आत्मानुभूति की प्राप्ति होगी। उन्होंने अनेकों से नाम का जपकर अपनी शरण में आने को कहा। जो यह जानने को उत्सुक थे कि “मैं कौन हूँ?” बाबा ने उन्हें भी लीलाएँ श्रवण और मनन करने का परामर्श दिया। किसी को भगवत् लीलाओं का श्रवण, किसी को भगवत्पादपूजन तो किसी को अध्यात्मरामायण व ज्ञानेश्वरी तथा धार्मिक ग्रन्थों का पठन एवं अध्ययन करने को कहा। अनेकों को अपने चरणों के समीप ही रखकर बहुतों को खंडोबा के मन्दिर में भेजा तथा अनेकों को विष्णु सहस्रनाम का जप करने व छान्दोग्य उपनिषद् तथा गीता का अध्ययन करने को कहा। उनके उपदेशों की कोई सीमा न थी। उन्होंने किन्हीं को प्रत्यक्ष और बहुतों को स्वप्न में दृष्टांत दिए। एक बार वे एक मदिरा-सेवी के स्वप्न में प्रगट होकर उसकी छाती पर चढ़ गए और जब उसने मद्यपान त्यागने की शपथ खाई, तभी उसे छोड़ा। किसी-किसी को मंत्र जैसे “गुरुर्ब्रह्मा”¹ आदि का अर्थ स्वप्न में समझाया तथा कुछ हठयोगियों को हठयोग छोड़ने की राय देकर चुपचाप बैठ धैर्य रखने को कहा। उनके सुगम पथ और विधि का वर्णन ही असम्भव है। साधारण सांसारिक व्यवहारों में उन्होंने अपने आचरण द्वारा ऐसे अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए, जिनमें से एक यहाँ नीचे दिया जाता है।

परिश्रम के लिए मजदूरी

एक दिन बाबा ने राधाकृष्णामाई के घर के समीप आकर एक सीढ़ी लाने को कहा। तब एक भक्त सीढ़ी ले आया और उनके बतलाए अनुसार वामन गोंदकर के घर पर उसे लगाया। वे उनके घर पर चढ़ गए और राधाकृष्णामाई के छप्पर पर से होकर दूसरे छोर से नीचे उतर आए। इसका अर्थ किसी की समझ में न आया। राधाकृष्णामाई इस समय ज्वर से काँप रही थीं। इसलिए हो सकता है कि उनका ज्वर दूर करने के लिए ही उन्होंने ऐसा कार्य किया हो। नीचे उतरने के पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने सीढ़ी लाने वाले के दो रुपये पारिश्रमिक स्वरूप दिये। तब एक ने साहस कर उनसे पूछा कि इतने अधिक पैसे देना क्या अर्थ रखता है? उन्होंने कहा कि किसी से बिना उसके परिश्रम का मूल्य चुकाए कार्य न कराना चाहिए और कार्य करनेवाले को उसके श्रम का शीघ्र निपटारा कर उदार हृदय से मजदूरी देनी चाहिए।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

१. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुस्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

वहाँ उनकी नौकरानी द्वारा समस्या हल कराई। जिनका ऐसा विचार हो कि श्री. दासगणू को बाहर भेजने की आवश्यकता ही क्या थी, क्या वे स्वयं नहीं समझा सकते थे? उनसे मेरा कहना है कि बाबाने उचित मार्ग ही अपनाया। अन्यथा श्री. दासगणू किस प्रकार एक अमूल्य शिक्षा उस निर्धन नौकरानी और उसकी साड़ी द्वारा प्राप्त करते, जिसकी रचना स्वयं साई ने की थी।

ईशोपनिषद् की शिक्षा

ईशोपनिषद् की मुख्य देन नीति-शास्त्र सम्बन्धी उपदेश है। हर्ष की बात है कि इस उपनिषद् की नीति निश्चित रूप से आध्यात्मिक विषयों पर आधारित है, जिसका उसमें बृहत् रूप से वर्णन किया गया है। उपनिषद् का प्रारम्भ ही यहीं से होता है कि समस्त वस्तुएँ ईश्वर से ओत-प्रोत हैं। यह आत्मविषयक स्थिति का भी एक उपसिद्धान्त है और जो नीतिसंबन्धी उपदेश उससे ग्रहण करने योग्य है, वह यह है कि जो कुछ ईशकृपा से प्राप्त है, उसमें ही आनन्द मानना चाहिए और दृढ़ भावना रखनी चाहिए कि ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् है और इसलिए जो कुछ उसने दिया है, वही हमारे लिए उपयुक्त है। यह भी उसमें प्राकृतिक रूप से वर्णित है कि पराये धन की तृष्णा की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। सारांश यह है कि अपने पास जो कुछ है, उसी में सन्तुष्ट रहना, क्योंकि यही ईश्वरेच्छा है। चरित्र सम्बन्धी द्वितीय उपदेश यह है कि कर्तव्य को ईश्वरेच्छा समझते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए, विशेषतः उन कर्मों को जिनको शास्त्र में वर्णित किया गया है। इस विषय में उपनिषद् का कहना है कि आलस्य से आत्मा का पतन हो जाता है और इस प्रकार निरपेक्ष कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करने वाला ही अकर्मण्यता के आदर्श को प्राप्त कर सकता है। अन्त में कहा है कि जो सब प्राणियों को अपना ही आत्मस्वरूप समझता है तथा जिसे समस्त प्राणी और पदार्थ आत्मस्वरूप हो चुके हैं, उसे मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है? ऐसे व्यक्ति को दुःख का कोई कारण नहीं हो सकता।

सर्वभूतों में आत्मदर्शन न कर सकने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के शोक, मोह और दुःखों की वृद्धि होती है। जिसके लिए सब वस्तुएँ आत्मस्वरूप बन गई हों, वह अन्य सामान्य मनुष्यों का छिद्रान्वेषण क्यों करे ?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

पंढरपुर के वकील

भक्तों के दोष दूर कर, उन्हें उचित पथ पर ला देने की बाबा की त्रिकालज्ञता की एक छोटी - सी कथा का वर्णन कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे । एक समय पंढरपुर से एक वकील शिरड़ी आए। उन्होंने बाबा के दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया तथा कुछ दक्षिणा भेंट देकर एक कोने में बैठे वार्तालाप सुनने लगे । बाबा उनकी ओर देख कर कहने लगे कि “ लोग कितने धूर्त हैं, जो यहाँ आकर चरणों पर गिरते और दक्षिणा देते हैं, परंतु भीतर से पीठ पीछे गालियाँ देते रहते हैं। कितने आश्चर्य की बात है न ?” यह पगड़ी वकील के सिर पर ठीक बैठी और उन्हें उसे पहननी पड़ी। कोई भी इन शब्दों का अर्थ न समझ सका। परन्तु वकील साहब इसका गूढार्थ समझ गए, फिर भी वे सिर झुकाकर बैठे ही रहे। वाड़े को लौटकर वकील साहब ने काकासाहेब दीक्षित को बतलाया कि बाबा ने जो कुछ उदाहरण दिया और जो मेरी ही ओर लक्ष्य कर कहा गया था, वह सत्य है। वह केवल चेतावनी ही थी कि मुझे किसी की निन्दा न करनी चाहिए । एक समय जब उपन्यासाधीश श्री. नूलकर स्वास्थ्य लाभ करने के लिए पंढरपुर से शिरड़ी आकर ठहरे तो बाररुम में उनके संबध में चर्चा हो रही थी। विवाद का विषय था कि जिस व्याधि से उपन्यायाधीश अस्वस्थ हैं, क्या बिना औषधि सेवन किए केवल साईबाबा की शरण में जाने से ही उससे छुटकारा पाना सम्भव है? और क्या श्री. नूलकर सदृश एक शिक्षित व्यक्ति को इस मार्ग का अवलम्बन करना उचित है? उस समय श्री. नूलकर का और साथ ही श्री साईबाबा का भी बहुत उपहास किया गया। मैंने भी इस आलोचना में हाथ बँटाया था। श्री साईबाबा ने मेरे उसी दूषित आचरण पर प्रकाश डाला है। यह मेरे लिए उपहास नहीं, वरन् एक उपकार है, जो केवल परामर्श है कि मुझे किसी की निन्दा न करनी चाहिए और न ही दूसरों के कार्यों में विघ्न डालना चाहिए । ”

शिरड़ी और पंढरपुर में लगभग ३०० मील का अन्तर है। फिर भी बाबा ने अपनी सर्वज्ञता द्वारा जान लिया कि बाररुम में क्या चल रहा था? मार्ग में आने वाली नदियाँ, जंगल और पहाड़ उनकी सर्वज्ञता के लिए रोड़ा न थे। वे सबके हृदय की गुह्य बात जान लेते थे और उनसे कुछ छिपा न था। समीपस्थ या दूरस्थ प्रत्येक वस्तु उन्हें दिन के प्रकाश के समान जाज्वल्यमान थी तथा उनकी सर्वव्यापक दृष्टि से ओझल न थी। इस घटना से वकीलसाहब को शिक्षा मिली कि कभी किसी का छिद्रान्वेषण एवं निंदा नहीं करनी चाहिए ।

यह कथा केवल वकीलसाहब को ही नहीं, वरन् सबको शिक्षाप्रद है। श्री साईबाबा की महानता कोई न आँक सका और न ही उनकी अद्भुत लीलाओं का अंत ही पा सका । उनकी जीवनी भी तदनुरूप ही है, क्योंकि वे परब्रह्मस्वरूप हैं ।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

बाबा के विचार

एक भक्त मुक्ताराम कहने लगा कि चलो, अच्छा ही हुआ, जो एक जीव बेचारा बच गया। श्री. हेमाङ्गपंत ने उसकी अवहेलना कर कहा कि साँप को मारना ही उचित है। इस कारण इस विषय पर वादविवाद होने लगा। एक का मत था कि साँप तथा उसके सदृश जन्तुओं को मार डालना ही उचित है, किन्तु दूसरे का इसके विपरीत मत था। रात्रि अधिक हो जाने के कारण किसी निष्कर्ष पर पहुँचे बिना ही उन्हें विवाद स्थगित करना पड़ा। दूसरे दिन यह प्रश्न बाबा के सामने लाया गया। तब बाबा निर्णयात्मक वचन बोले कि “ सब जीवों में और समस्त प्राणियों में ईश्वर का निवास है, चाहे वह साँप हो या बिच्छू। वे ही इस विश्व के नियंत्रणकर्ता हैं। और सब प्राणी साँप, बिच्छू इत्यादि उनकी आज्ञा का ही पालन किया करते हैं। उनकी इच्छा के बिना कोई भी दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकता। समस्त विश्व उनके अधीन है तथा स्वतंत्र कोई भी नहीं है। इसलिए इमें सब प्राणियों से दया और स्नेह करना चाहिए। संघर्ष एवं वैमनस्य या संहार करना छोड़कर शान्त चित्त से जीवन व्यतीत करना चाहिए। ईश्वर सबका ही रक्षक है। ”

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु॥

सप्ताह पारायणः तृतीय विश्राम

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह



(१) दामू अण्णा कासार - अहमदनगर के रुई और अनाज के सौदे (२) आम्र - लीला, प्रार्थना।

प्राक्कथन

जो अकारण ही सभी पर दया करते हैं तथा समस्त प्राणियों के जीवन व आश्रयदाता हैं, जो परब्रह्म के पूर्ण अवतार हैं, ऐसे अहेतुक दयासिन्धु और महान् योगिराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर अब हम यह अध्याय आरम्भ करते हैं।

श्री साई की जय हो! वे सन्त चूड़ामणि, समस्त शुभ कार्यों के उद्गम स्थान और हमारे आत्माराम तथा भक्तों के आश्रयदाता हैं। हम उन साईनाथ की चरण-वन्दना करते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लिया है।

श्री साईबाबा अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप हैं। हमें तो केवल उनके चरणकमलों में दृढ़ भक्ति ही रखनी चाहिए। जब भक्त का विश्वास दृढ़ और भक्ति परिपक्व हो जाती है तो उसका मनोरथ भी शीघ्र ही सफल हो जाता है। जब हेमाङ्गपंत हो साईचरित्र तथा साई लीलाओं के रचने की तीव्र उत्कंठा हुई तो बाबा ने तुरन्त ही वह पूर्ण कर दी। जब उन्हें स्मृति-पत्र (Notes) इत्यादि रखने की आज्ञा हुई तो हेमाङ्गपंत में स्फूर्ति, बुद्धिमत्ता, शक्ति तथा कार्य करने की क्षमता स्वयं ही आ गई। वे कहते हैं कि मैं इस कार्य के सर्वदा अयोग्य होते हुए भी श्री साई के शुभाशीर्वाद से इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सका। फलस्वरूप यह ग्रन्थ 'श्री साई सच्चरित्र' आप लोगों को उपलब्ध हो सका, जो एक निर्मल स्रोत या चन्द्रकान्तमणि के ही सदृश है, जिसमें से सदैव साई-लीलारूपी अमृत झरा करता है, ताकि पाठकगण जी भर कर उसका पान करें।

जब भक्त पूर्ण अन्तःकरण से श्री साईबाबा की भक्ति करने लगता है तो बाबा उसके समस्त कष्टों और दुर्भाग्यों को दूर कर स्वयं उसकी रक्षा करने लगते हैं। अहमदनगर के श्री. दामोदर साँवलाराम रासने कासार की निम्नलिखित कथा उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती हैं।

दामू अण्णा

पाठकों को स्मरण होगा कि इन महाशय का प्रसंग छठवें अध्याय में शिरडी के रामनवमी उत्सव के प्रसंग में आ चुका है। ये लगभग सन् १८९७ में शिरडी पधारे थे, जब कि रामनवमी उत्सव का प्रारम्भ ही हुआ था और उसी समय से वे एक जरीदार बढिया ध्वज इस अवसर पर भेंट करते तथा वहाँ एकत्रित गरीब भिक्षुकों को भोजनादि कराया करते थे।

दामू अण्णा के सौदे

रुई का सौदा

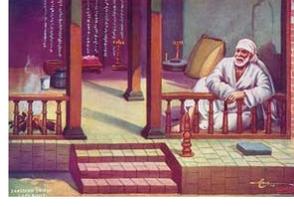
दामू अण्णा को बम्बई से उनके एक मित्र ने लिखा कि वह उनके साथ साझेदारी में रुई का सौदा करना चाहते हैं, जिसमें लगभग दो लाख रुपयों का लाभ होने की आशा है। सन् १९३६ में नरसिंह स्वामी को दिए गए एक वक्तव्य में दामू अण्णा ने बतलाया कि रुई के सौदे का यह प्रस्ताव बम्बई के एक दलाल ने उनसे किया था, जो कि साझेदारी से हाथ खींचकर मुझ पर ही सारा भार छोड़ने वाला था। (भक्तों के अनुभव भाग ११, पृष्ठ ७५ के अनुसार)। दलाल ने लिखा था कि धंधा अति उत्तम है और हानि की कोई आशंका नहीं। ऐसे स्वर्णिम अवसर को

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

“ मेरी बहन का स्वर्गवास होने के कारण मेरे दुःख का पारावार न रहा और जब मैं बाबा की शरण गया तो उन्होंने अपने मधुर उपदेशों से मुझे सान्त्वना देकर अप्पा कुलकर्णी के घर पूरणपोली खिलाई तथा मेरे मस्तक पर चन्दन लगाया।”

“ जब मेरे घर चोरी हुई और मेरे ही एक तीसवर्षीय मित्र ने मेरी स्त्री के गहनों का सन्दूक, जिसमें मंगलसूत्र और नथ आदि थे, चुरा लिए, तब मैंने बाबा के चित्र के समक्ष रुदन किया और उसके दूसरे ही दिन वह व्यक्ति स्वयं गहनों का सन्दूक मुझे लौटाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा।”

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥



(१) भक्त पन्त (२) हरिश्चंद्र पितले और (३) गोपाल आंबडेकर की कथाएँ ।

इस सृष्टि में स्थूल, सूक्ष्म, चेतन और जड़ आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब एक ब्रह्म है और इसी एक अद्वितीय वस्तु ब्रह्म को ही हम भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते तथा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं। जिस प्रकार अंधेरे में पड़ी हुई एक रस्सी या हार को हम भ्रमवश सर्प समझ लेते हैं; उसी प्रकार हम समस्त पदार्थों के केवल बाह्य स्वरूप को ही देखते हैं, न कि उनके सत्य स्वरूप को। एकमात्र सद्गुरु ही हमारी दृष्टि से माया का आवरण दूर कर हमें वस्तुओं के सत्यस्वरूप का यथार्थ में दर्शन करा देने में समर्थ हैं। इसलिए आआ, हम श्री सद्गुरु साईमहाराज की उपासना कर उनसे सत्य का दर्शन कराने की प्रार्थना करें, जो कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

आन्तरिक पूजन

श्री. हेमाङ्गपंत उपासना की एक सर्वथा नवीन पद्धति बताते हैं। वे कहते हैं कि सद्गुरु के पादप्रक्षालन के निमित्त आनन्द-अश्रु के उष्ण जल का प्रयोग करो। उन्हें सत्यप्रेमरूपी चन्दन का लेप कर, दृढ़विश्वासरूपी वस्त्र पहनाओ तथा अष्ट सात्विक भावों के स्थान पर कोमल और एकाग्र चित्तरूपी फल उन्हें अर्पित करा। भावरूपी बुक्का उनके श्री मस्तक पर लगा, भक्ति की कछनी बाँध, अपना मस्तक उनके चरणों पर रखो। इस प्रकार श्री साई को समस्त आभूषणों से विभूषित कर, उन्हें अपना सर्वस्व निछावर कर दो। उष्णता दूर करने के लिये भाव की सदा चँवर डुलाओ। इस प्रकार आनन्ददायक पूजन कर उनसे प्रार्थना करो-

“ हे प्रभु साई! हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बना दो। सत्य और असत्य का विवेक दो तथा सांसारिक पदार्थों से आसक्ति दूर कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करो। हम अपनी काया और प्राण आपके श्री चरणों में अर्पित करते हैं। हे प्रभु साई! मेरे नेत्रों को तुम अपने नेत्र बना लो, ताकि हमें सुख और दुःख का अनुभव ही न हो। हे साई! मेरे शरीर और मन को तुम अपनी इच्छानुकूल चलने दो तथा मेरे चंचल मन को अपने चरणों की शीतल छाया में विश्राम करने दो।”

अब हम इस अध्याय की कथाओं की ओर आते हैं।

भक्त पन्त

एक समय एक भक्त, जिनका नाम पंत था और जो एक अन्य सद्गुरु के शिष्य थे, उन्हें शिरड़ी पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी शिरड़ी आने की इच्छा तो न थी, परन्तु “मेरे मन कछु और है, विधिता के कुछ और” वाली कहावत चरितार्थ हुई। वे रेल(पश्चिम रेल्वे) द्वारा यात्रा कर रहे थे, जहाँ उनके बहुत से मित्र व सम्बन्धियों से अचानक ही भेंट हो गई, जो कि शिरड़ी यात्रा को ही जा रहे थे। उन लोगों ने उनसे शिरड़ी तक साथ-साथ चलने का प्रस्ताव किया। पंत यह प्रस्ताव अस्वीकार न कर सके। तब वे सब लोग बम्बई में उतरे और इसी बीच पन्त विरार में उतर अपने सद्गुरु से शिरड़ी प्रस्थान करने की अनुमति ले कर तथा आवश्यक खर्च आदि का प्रबन्ध कर, सब लोगों के साथ रवाना हो गए। वे प्रातःकाल वहाँ पहुँच गए और लगभग ११ बजे मस्जिद को गए। वहाँ पूजनार्थ भक्तों का एकत्रित समुदाय देख सब को अति प्रसन्नता हुई, परन्तु पन्त को अचानक ही मूर्च्छा आ गई और वे बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। तब सब लोग भयभीत होकर उन्हें स्वस्थ करने के समस्त उपचार करने लगे। बाबा की कृपा से और मस्तक पर जल के छींटे देने से वे स्वस्थ हो गए और ऐसे उठ बैठे, जैसे कि कोई नींद से जगा हो। त्रिकालज्ञ बाबा ने यह सब जानकर कि यह अन्य गुरु का शिष्य है, उन्हें अभय-दान देकर उनके गुरु में ही उनके विश्वास को दृढ़ करते हुए कहा कि “ कैसा भी आओ, परन्तु भूलो नहीं, अपने ही स्तंभ को दृढ़तापूर्वक पकड़कर

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

सदैव स्थिर हो उनसे अभिन्नता प्राप्त करो।” पन्त तुरन्त इन शब्दों का आशय समझ गए और उन्हें उसी समय अपने सदगुरु की स्मृति हो आई। उन्हें बाबा के इस अनुग्रह की जीवन भर स्मृति बनी रही।

श्री. हरिश्चन्द्र पितले

बम्बई में एक श्री. हरिश्चन्द्र नामक सदगृहस्थ थे। उनका पुत्र मिर्गी रोग से पीड़ित था। उन्होंने अनेक प्रकार की देशी व विदेशी चिकित्साएँ कराई, परन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ। अब केवल यही उपाय शेष रह गया था कि किसी सन्त के चरण-कमलों की शरण ली जाए। १५ वें अध्याय में बतलाया जा चुका है कि श्री. दासगणू के सुमधुर कीर्तन से श्री साईबाबा की कीर्ति बम्बई में अधिक फैल चुकी थी। पितले ने भी सन् १९१० में उनका कीर्तन सुना और उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री साईबाबा के केवल कर-स्पर्श तथा दृष्टिमात्र से ही असाध्य रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। तब उनके मन में भी श्री साईबाबा के प्रिय दर्शन की तीव्र इच्छा जागृत हुई। यात्रा का प्रबन्ध कर भेंट देने को फलों की टोकरी लेकर स्त्री और बच्चों सहित वे शिरडी पधारे। मस्जिद पहुँचकर उन्होंने चरण-वंदना की तथा अपने रोगी पुत्र को उनके श्री-चरणों में डाल दिया। बाबा की दृष्टि उस पर पड़ते ही उसमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया। बच्चे ने आँखे फेर दीं और बेसुध हो कर गिर पड़ा उसके मुँह से झाग निकलने लगी तथा शरीर पसीने से भीग गया और ऐसी आशंका होने लगी कि अब उसके प्राण निकलने ही वाले हैं। यह देखकर उसके माता-पिता अत्यंत निराश होकर घबड़ाने लगे। बच्चे को बहुधा थोड़ी मूर्च्छा तो अवश्य आ जाया करती थी, परन्तु यह मूर्च्छा दीर्घ काल तक रही। माता की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह दुःखग्रसित हो आर्तनाद करने लगी कि मैं ऐसी स्थिति में हूँ, जैसे कि एक व्यक्ति, चोरों के डर से भाग कर किसी घर में प्रविष्ट हो जाए और वह घर ही उसके ऊपर गिर पड़े; या एक भक्त मन्दिर में पूजन के लिए जाए और वह मन्दिर ही उसके ऊपर गिर पड़े या एक गाय शेर के डर से भागकर किसी कसाई के हाथ लग जाए; या एक स्त्री सूर्य के ताप से व्यथित होकर वृक्ष की छाया में जाए और वह वृक्ष ही उसके ऊपर गिर पड़े। तब बाबा ने सान्त्वना देते हुए कहा कि “ इस प्रकार प्रलाप न कर, धैर्य धारण करो। बच्चे को अपने निवास्थान पर ले जाओ। वह आधा घण्टे के पश्चात् ही होश में आ जाएगा।” तब उन्होंने बाबा के आदेश का तुरन्त पालन किया। बाबा के वचन सत्य निकले। जैसे ही उसे वाड़े में लाए कि बच्चा स्वस्थ हो गया और पितले परिवार-पति, पत्नी व अन्य सब लोगों को महान् हर्ष हुआ और उनका सन्देह दूर हो गया। श्री. पितले अपनी धर्मपत्नी सहित बाबा के दर्शनों को आए और अति विनम्र होकर आदरपूर्वक चरण-वंदना कर पादसेवन करने लगे। मन ही मन वे बाबा को धन्यवाद दे रहे थे। तब बाबा ने मुस्कराकर कहा कि “ क्या तुम्हारे समस्त विचार और शंकायें मिट गईं? जिन्हें विश्वास और धैर्य है, उनकी रक्षा श्री हरि अवश्य करेंगे।” श्री. पितले एक धनाढ्य व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने अधिक मात्रा में मिठाई बाँटी और उत्तम फल तथा पान बीड़े बाबा को भेंट किए। श्रीमती पितले सात्विक वृत्ति की महिला थीं। वे एक स्थान पर बैठकर बाबा की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारा करती थीं। उनकी आँखों से प्रसन्नता के आँसू गिरते थे। उनका मृदु और सरल स्वभाव देखकर बाबा अति प्रसन्न हुए। ईश्वर के समान ही सन्त भी भक्तों के अधीन हैं। जो उनकी शरण में जाकर उनका अनन्य भाव से पूजन करते हैं, उनकी रक्षा सन्त करते हैं। शिरडी में कुछ दिन सुखपूर्वक व्यतीत कर पितले परिवार बाबा के समीप मस्जिद में गया और चरण-वंदना कर शिरडी से प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उन्हें उदी देकर आशीर्वाद दिया। पितले को पास बुलाकर वे कहने लगे “बापू! पहले मैंने तुम्हें दो रुपये दिए थे और अब मैं तुम्हें तीन रुपये देता हूँ। इन्हें अपने पूजन में रखकर नित्य इनका पूजन करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।” श्री. पितले ने उन्हें प्रसादस्वरूप ग्रहण कर, बाबा को पुनः साष्टांग नमस्कार किया तथा आशीष के लिए प्रार्थना की। उन्हें एक विचार भी आया कि प्रथम अवसर होने के कारण मैं इसका अर्थ समझने में असमर्थ हूँ कि दो रुपये मुझे पहले कब दिए थे?

वे इस बात का स्पष्टीकरण चाहते थे, परन्तु बाबा मौन ही रहे। बम्बई पहुँचने पर उन्होंने अपनी वृद्ध माता को शिरडी की विस्तृत वार्ता सुनाई और उन दो रुपयों की समस्या भी उनसे कही। उनकी माता को भी पहले-पहल तो कुछ समझ में न आया, परन्तु पुरी तरह विचार करने पर उन्हें एक पुरातन घटना की स्मृति हो आई, जिसने यह समस्या हल कर दी। उनकी वृद्ध माता कहने लगीं कि “ जिस प्रकार तुम अपने पुत्र को लेकर श्री साईबाबा के दर्शनार्थ गए थे, ठीक उसी प्रकार तुम्हें लेकर तुम्हारे पिता अनेक वर्षों पहले अक्कलकोटकर महाराज के दर्शनार्थ गए थे। महाराज पूर्ण सिद्ध, योगी, त्रिकालज्ञ और बड़े उदार थे। तुम्हारे पिता परम भक्त थे। इस कारण उनकी पूजा स्वीकार हुई। तब महाराज ने उन्हें पूजनार्थ दो रुपये दिए थे, जिनकी उन्होंने जीवनपर्यन्त पूजा की। उनके पश्चात् उनकी पूजा यथाविधि न हो सकी और वे रुपये खो गये। कुछ दिनों के उपरान्त उनकी पूर्ण विस्मृति भी हो गई। तुम्हारा सौभाग्य है, जो श्री अक्कलकोटकर महाराज ने साईस्वरूप में तुम्हें अपने कर्तव्यों और पूजन की स्मृति

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

कराकर आपत्तियों से मुक्त कर दिया है। अब भविष्य में जागरुक रहकर समस्त शंकाएँ और सोच विचार छोड़कर अपने पूर्वजों को स्मरण कर रिवाजों का अनुकरण कर, उत्तम प्रकार का आचरण अपनाओ। अपने कुलदेव तथा इन रूप्यों की पूजा कर उनके यथार्थ स्वरूप को समझो और सन्तों का आशीर्वाद ग्रहण करने में गर्व मानो। श्री साई समर्थ ने दया कर तुम्हारे हृदय में भक्ति का बीजारोपण कर दिया है और अब तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसकी वृद्धि करो।" माता के मधुर वचनामृत का पान कर श्री. पितले को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्हें बाबा की सर्वकालज्ञता विदित हो गई और उनके श्री दर्शन का भी महत्व ज्ञात हो गया। इसके पश्चात् वे अपने व्यवहार में अधिक सावधान हो गए।

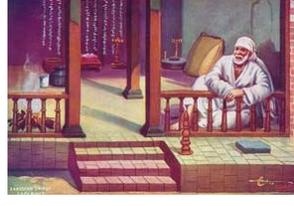
श्री. आम्बडेकर

पूने के श्री. गोपाल नारायण आम्बडेकर बाबा के परम भक्तों में से एक थे, जो ठाणे जिला और जव्हार स्टेट के आबकारी विभाग में दस वर्षों से कार्य करते थे। वहाँ से सेवानिवृत्त होने पर उन्होंने अन्य नौकरी ढूँढी, परन्तु वे सफल न हुए। तब उन्हें दुर्भाग्य ने चारों ओर से घेर लिया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सात वर्ष व्यतीत किए। वे प्रति वर्ष शिरड़ी जाते और अपनी दुःखदायी कथा वार्ता बाबा को सुनाया करते थे। सन् १९१६ में तो उनकी स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। तब उन्होंने शिरड़ी जाकर आत्महत्या करने की ठानी। इसलिए वे अपनी पत्नी को साथ लेकर शिरड़ी आये और वहाँ दो मास तक ठहरे। एक रात्रि को दीक्षितवाड़े के सामने एक बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे उन्होंने कुएँ में गिर कर प्राणान्त करने का और साथ ही बाबा ने उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। वहीं समीप ही एक भोजनालय के मालिक श्री. सगुण मेरु नायक ठीक उसी समय बाहर आकर उनसे इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि " क्या आपने कभी श्री अक्कलकोट महाराज की जीवनी पढ़ी है?" सगुण से पुस्तक लेकर उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते वे एक ऐसी कथा पर पहुँचे, जो इस प्रकार थी- श्री अक्कलकोटकर महाराज के जीवन काल में एक व्यक्ति असाध्य रोग से पीड़ित था। जब वह किसी प्रकार भी कष्ट सह न सका तो वह बिलकुल निराश हो गया और एक रात्रि को कुएँ में कूद पड़ा। तत्क्षण ही महाराज वहाँ पहुँच गए और उन्होंने स्वयं अपने हाथों से उसे बाहर निकाला। वे उसे समझाने लगे कि " तुम्हें अपने शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना चाहिए। यदि भोग अपूर्ण रह गया तो पुनर्जन्म धारण करना पड़ेगा, इसलिए मृत्यु से यह श्रेयस्कर है कि कुछ काल तक उन्हें सहन कर पूर्व जन्मों के कर्मों का भोग समाप्त कर सदैव के लिए मुक्त हो जाओ।"

यह सामयिक और उपयुक्त कथा पढ़कर आम्बडेकर को महान् आश्चर्य हुआ और वे द्रवित हो गए।

यदि इस कथा द्वारा उन्हें बाबा का संकेत प्राप्त न होता तो अभी तक उनका प्राणान्त ही हो गया होता। बाबा की व्यापकता और दयालुता देखकर उनका विश्वास दृढ़ हो गया और वे बाबा के परम भक्त बन गए। उनके पिता श्री अक्कलकोटकर महाराज के शिष्य थे और बाबा की इच्छा भी उन्हें के पद-चिन्हों का अनुकरण कराने की थी। बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अब उनका भाग्य चमक उठा। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में निपुणता प्राप्त कर उसमें बहुत उन्नति कर ली और बहुत-सा धन अर्जित करके अपना शेष जीवन सुख और शान्तिपूर्वक व्यतीत किया।

॥ सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



भागवत और विष्णुसहस्रनाम प्रदान कर अनुगृहीत करना, गीता रहस्य, दादासाहेब खापर्डे ।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्रीसाईबाबा ने किस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों को करस्पर्श से पवित्र कर अपने भक्तों को पारायण के लिए देकर अनुगृहीत किया तथा और भी अन्य कई घटनाओं का उल्लेख किया गया है ।

प्रारम्भ

जन-साधारण का ऐसा विश्वास है कि समुद्र में स्नान कर लेने से ही समस्त तीर्थों तथा पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है । ठीक इसी प्रकार सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेने मात्र से तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, और महेश) और परब्रह्म को नमन करने का श्रेय सहज ही प्राप्त हो जाता है । श्री सच्चिदानंद साईमहाराज की जय हो ! वे तो भक्तों के लिए कामकल्पतरु, दया के सागर और आत्मानुभूति देने वाले हैं । हे साई ! तुम अपनी कथाओं के श्रवण में मेरी श्रद्धा जागृत कर दो । घनघोर वर्षा ऋतु में जिस प्रकार चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र की केवल एक बूँद का पान कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अपनी कथाओं के सारसिन्धु से प्रगटित एक जल कण का सहस्रांश दे दो, जिससे पाठकों और श्रोताओं के हृदय तृप्त होकर प्रसन्नता से भरपूर हो जाए । शरीर से स्वेद प्रवाहित होने लगे, आँसुओं से नेत्र परिपूर्ण हो जाएँ, प्राण स्थिरता पाकर चित्त एकाग्र हो जाये और पल-पलपर रोमांच हो उठे, ऐसा सात्विक भाव सभी में जागृत कर दो । पारस्परिक वैमनस्य तथा वर्ग-अपवर्ग का भेद-भाव नष्ट कर दो, जिससे वे तुम्हारी भक्ति में सिसकें, बिलखें और कम्पित हो उठें । यदि ये सब भाव उत्पन्न होने लगे तो इसे गुरु-कृपा के लक्षण जानो । इन भावों को अन्तःकरण में उदित देखकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें आत्मानुभूति की ओर अग्रसर करेंगे । **माया से मुक्त होने का एकमात्र सहज उपाय अनन्य भाव से केवल श्री साईबाबा की शरण जाना ही है । वेद-वेदान्त भी मायारूपी सागर से पार नहीं उतार सकते । यह कार्य तो केवल सद्गुरु द्वारा ही संभव है । समस्त प्राणियों और भूतों में ईश्वर-दर्शन करने के योग्य बनाने की क्षमता केवल उन्हीं में है ।**

पवित्र ग्रन्थों का प्रदान

गत अध्याय में बाबा की उपदेश-शैली की नवीनता ज्ञात हो चुकी है । इस अध्याय में उसके केवल एक उदाहरण का ही वर्णन करेंगे । भक्तों को जिस ग्रन्थविशेष का पारायण करना होता था, उसे वे बाबा के करकमलों में भेंट कर देते थे और यदि बाबा उसे अपने करकमलों से स्पर्श कर लौटा देते तो वे उसे स्वीकार कर लेते थे । उनकी ऐसी भावना हो जाती थी कि ऐसे ग्रन्थ का यदि नित्य पठन किया जाएगा तो बाबा सदैव उनके साथ ही होंगे । एक बार काका महाजनी श्री एकनाथी भागवत लेकर शिरडी आए । शामा ने यह ग्रन्थ अध्ययन के लिए उनसे ले लिया और उसे लिए हुए वे मस्जिद में पहुँचे । तब बाबा ने वह ग्रन्थ शामा से ले लिया और उन्होंने उसे स्पर्श कर कुछ विशेष पृष्ठों को देखकर उसे सँभाल कर रखने की आज्ञा देकर वापस लौटा दिया । शामा ने उन्हें बताया कि यह ग्रन्थ तो काकासाहेब का है और उन्हें इसे वापस लौटाना है । तब बाबा कहने लगे कि “नहीं, नहीं, यह ग्रन्थ तो मैं तुम्हें दे रहा हूँ । तुम इसे सावधानी से अपने पास रखो । यह तुम्हें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा ।” कुछ दिनों के पश्चात् काका महाजनी पुनः श्रीएकनाथी भागवत की दूसरी प्रति लेकर आए और बाबा के करकमलों में भेंट कर दी, जिसे बाबा ने प्रसाद-स्वरूप लौटाकर उन्हें भी उसे सावधानी से सँभाल कर रखने की आज्ञा दी । साथ ही बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया कि यह तुम्हें उत्तम स्थिति में पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा । काका ने उन्हें प्रणाम कर उसे स्वीकार कर लिया ।

शामा और विष्णुसहस्रनाम

शामा बाबा के अंतरंग भक्त थे। इस कारण बाबा उन्हें एक विचित्र ढंग से 'विष्णुसहस्रनाम' प्रसादरूप में देने की कृपा करना चाहते थे। तभी एक रामदासी आकर कुछ दिन शिरडी में ठहरा। वह नित्य नियमानुसार प्रातःकाल उठता और हाथ मुँह धोने के पश्चात् स्नान कर भगवा वस्त्र धारण करता तथा शरीर पर भस्म लगाकर विष्णुसहस्रनाम का जप किया करता था। वह अध्यात्मरामायण का भी श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ किया करता था और अधिकांश इन्हीं ग्रन्थों को ही पढ़ा करता था। कुछ दिनों के पश्चात् बाबा ने शामा को भी 'विष्णुसहस्रनाम' से परिचित कराने का विचार कर रामदासी को अपने समीप बुलाकर उससे कहा कि मेरे उदर में अत्यन्त पीड़ा हो रही है और जब तक मैं सोनामुखी का सेवन न करूँगा, तब तक मेरा कष्ट दूर न होगा। तब रामदासी ने अपना पाठ स्थगित कर दिया और वह औषधि लाने बाजार चला गया। उसी समय बाबा अपने आसन से उठे और जहाँ वह पाठ किया करता था, वहाँ जाकर उन्होंने विष्णुसहस्रनाम की वह पुस्तिका उठाई और पुनः अपने आसन पर विराजमान होकर शामा से कहने लगे कि "यह पुस्तक अमूल्य और मनोवांछित फल देने वाली है। इसलिए मैं तुम्हें इसे प्रदान कर रहा हूँ, ताकि तुम इसका नित्य पठन करो। एक बार जब मैं अधिक रुग्ण था तो मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरे प्राणपखेरु उड़ना ही चाहते थे कि उसी समय मैंने इस सद्ग्रन्थ को अपने हृदय पर रख लिया। कैसा सुख पहुँचाया इसने? उस समय मुझे ऐसा ही भान हुआ, मानो अल्लाह ने स्वयं ही पृथ्वी पर आकर मेरी रक्षा की। इस कारण यह ग्रन्थ मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे थोड़ा धीरे-धीरे, कम से कम एक श्लोक प्रतिदिन अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हारा बहुत भला होगा।" तब शामा कहने लगे कि "मुझे इस ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस का स्वामी रामदासी एक पागल, हठी और अतिक्रोधी व्यक्ति है, जो व्यर्थ ही अभी आकर लड़ने को तैयार हो जाएगा। अल्पशिक्षित होने के नाते, मैं संस्कृत भाषा में लिखित इस ग्रन्थ को पढ़ने में भी असमर्थ हूँ।" शामा की धारणा थी कि बाबा मेरे और रामदासी के बीच मनमुटाव करवाना चाहते हैं, इसलिये ही यह नाटक रचा है। बाबा का विचार उनके प्रति क्या था, यह उनकी समझ में न आया। बाबा 'येन केन प्रकारेण' विष्णुसहस्रनाम उसके कंठ में उतार देना चाहते थे। वे तो अपने एक अल्पशिक्षित अंतरंग भक्त को सांसारिक दुःखों से मुक्त कर देना चाहते थे। **ईश्वर-नाम के जप का महत्व तो सभी को विदित ही है, जो हमें पापों से बचाकर कुवृत्तियों से हमारी रक्षा कर, जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से छुड़ा देता है। यह आत्मशुद्धि के लिए एक उत्तम साधन है, जिसमें न किसी सामग्री की आवश्यकता है और न किसी नियम के बन्धन की। इससे सुगम और प्रभावकारी साधन अन्य कोई नहीं।** बाबा की इच्छा तो शामा से यह साधना कराने की थी, परन्तु शामा ऐसा न चाहते थे, इसीलिये बाबा ने उनपर दबाव डाला। ऐसा अधिकांश सुनने में आया है कि बहुत पहले श्री एकनाथ महाराज ने भी अपने एक पड़ोसी ब्राह्मण से विष्णुसहस्रनाम का जप करने के लिए आग्रह कर उसकी रक्षा की थी। विष्णुसहस्रनाम का जप चित्तशुद्धि के लिए एक श्रेष्ठ तथा स्पष्ट मार्ग है। इसीलिए बाबा ने शामा को अनुरोधपूर्वक इसके जप में प्रवृत्त किया। रामदासी बाजार से तुरन्त सोनामुखी लेकर लौट आया। अण्णा चिचणीकर, जो वहीं उपस्थित थे, प्रायः पूरे 'नारद मुनि' ही थे और उन्होंने उक्त घटना का सम्पूर्ण वृत्तांत रामदासी को बता दिया।

रामदासी क्रोधावेश में आकर शामा की ओर लपका और कहने लगा कि "यह तुम्हारा ही कार्य है, जो तुमने बाबा के द्वारा मुझे उदर पीड़ा के बहाने औषधि लेने को भेजा। यदि तुमने पुस्तक न लौटाई तो मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।" शामा ने उसे शान्तिपूर्वक समझाया, परन्तु उनका कहना व्यर्थ ही हुआ। तब बाबा प्रेमपूर्वक बोले कि "अरे रामदासी, यह क्या बात है? क्यों उपद्रव कर रहे हो? क्या शामा अपना बालक नहीं है? तुम उसे व्यर्थ ही क्यों गाली दे रहे हो? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी प्रकृति ही उपद्रवी है। क्या तुम नम्र और मृदुल वाणी नहीं बोल सकते? तुम नित्य प्रति इन पवित्र ग्रन्थों का पाठ किया करते हो और फिर भी तुम्हारा चित्त अशुद्ध ही है? जब तुम्हारी इच्छा ही तुम्हारे वश में नहीं है तो तुम रामदासी कैसे? तुम्हें तो समस्त वस्तुओं से अनासक्त(वैराग्य) होना चाहिए। कैसी विचित्र बात है कि तुम्हें इस पुस्तक पर इतना अधिक मोह है? सच्चे रामदासी को तो ममता त्याग कर समदर्शी होना चाहिए। तुम तो अभी बालक शामा से केवल एक छोटी सी पुस्तक के लिए झगड़ा कर रहे थे। जाओ, अपने आसन पर बैठो। पैसों से पुस्तकें तो अनेक प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु मनुष्य नहीं। उत्तम विचारक बनकर विवेकशील होओ। पुस्तक का मूल्य ही क्या है और उसने शामा को क्या प्रयोजन ? मैंने स्वयं उठाकर वह पुस्तक उसे दी थी, यह सोचकर कि तुम्हें तो यह पुस्तक पूर्णतः कंठस्थ है। शामा को इसके पठन से कुछ लाभ पहुँचे, इसलिए मैंने उसे दे दी।" बाबा के ये शब्द कितने मृदु और मार्मिक तथा अमृततुल्य हैं! इनका प्रभाव रामदासी पर पड़ा। वह चुप हो गया तथा फिर शामा से बोला कि मैं इसके बदले में पंचरत्नी गीता की एक प्रति स्वीकार कर लूँगा। तब शामा भी प्रसन्न होकर कहने लगे कि "एक ही क्यों, मैं तो तुम्हें उसके बदले में १० प्रतियाँ देने को तैयार हूँ।"

इस प्रकार यह विवाद तो शान्त हो गया, परन्तु अब प्रश्न यह आया कि रामदासी ने पंचरत्नी गीता के लिये-एक ऐसी पुस्तक जिसका उसे कभी ध्यान भी न आया था, इतना आग्रह क्यों किया और जो मस्जिद में हर दिन धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करता हो, वह बाबा के समक्ष ही इतना उत्पात करने पर क्यों उतारु हो गया ? हम नहीं जानते कि इस दोष का निराकरण कैसे करें और किसे दोषी ठहरावें? हम तो केवल इतना ही जान सके हैं कि यदि इस प्रणाली का अनुसरण न किया गया होता तो विषय का महत्व और ईश्वर नाम की महिमा तथा शामा को विष्णुसहस्रनाम के पठन का शुभ अवसर ही प्राप्त न होता। इससे यही प्रतीत होता है कि बाबा के उपदेश की शैली और उसकी प्रक्रिया अद्वितीय है। शामा ने धीरे-धीरे इस ग्रन्थ का इतना अध्ययन कर दिया और उन्हें इस विषय का इतना ज्ञान हो गया कि वह श्रीमान् बूटीसाहब के दामाद-प्रोफेसर जी.जी. नारके, एम.ए. (इंजिनियरिंग कालेज, पूना) को भी उसका यथार्थ अर्थ समझाने में पूर्ण सफल हुए।

गीता रहस्य

ब्रह्मविद्या (अध्यात्म) का जो भक्त अध्ययन करते, उन्हें बाबा सदैव प्रोत्साहित करते थे। इसका एक उदाहरण है कि एक समय बापूसाहेब जोग का एक पार्सल आया, जिसमें श्री. लोकमान्य तिलक कृत गीता-भाष्य की एक प्रति थी, जिसे काँख में दबाए हुए वे मस्जिद में आये। जब वे चरण-वन्दना के लिए झुके तो वह पार्सल बाबा के श्री-चरणों पर गिर पड़ा। तब बाबा उनसे पूछने लगे कि इसमें क्या है? श्री. जोग ने तत्काल ही पार्सल से वह पुस्तक निकालकर बाबा के कर-कमलों में रख दी। बाबा ने थोड़ी देर उसके कुछ पृष्ठ देखकर जब से एक रुपया निकाला और उसे पुस्तक पर रखकर जोग को लौटा दिया और कहने लगे कि "इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।"

श्रीमान् और श्रीमती खापर्डे

एक बार श्री. दादासाहेब खापर्डे सहकुटुम्ब शिरडी आए और कुछ मास वहीं ठहरे। उनके ठहरने के नित्य कार्यक्रम का वर्णन श्रीसाईलीला पत्रिका के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ है। दादा कोई सामान्य व्यक्ति न थे। वे एक धनाढ्य और अमरावती (बरार) के सुप्रसिद्ध वकील तथा केन्द्रीय धारासभा (दिल्ली) के सदस्य थे। वे विद्वान् और प्रवीण वक्ता भी थे। इतने गुणवान् होते हुए भी उन्हें बाबा के समक्ष मुँह खोलने का साहस न होता था। अधिकांश भक्तगण तो बाबा से हर समय अपनी शंका का समाधान कर लिया करते थे। केवल तीन व्यक्ति खापर्डे, नूलकर और बूटी ही ऐसे थे, जो सदैव मौन धारण किए रहते तथा अति विनम्र और उत्तम प्रकृति के व्यक्ति थे। दादासाहेब, विद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित **पंचदशी** नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ, जिसमें अद्वैतवेदान्त का दर्शन है, उसका विवरण दूसरों को तो समझाया करते थे, परन्तु जब वे बाबा के समीप मस्जिद में आए तो वे एक शब्द का भी उच्चारण न कर सके। यथार्थ में कोई व्यक्ति, चाहे वह जितना वेदवेदान्तों में पारंगत क्यों न हो, परन्तु ब्रह्मपद को पहुँचे हुए व्यक्ति के समक्ष उसका शुष्क ज्ञान प्रकाश नहीं दे सकता। दादा चार मास तथा उनकी पत्नी सात मास वहाँ ठहरीं। वे दोनों अपने शिरडी-प्रवास से अत्यन्त प्रसन्न थे। श्रीमती खापर्डे श्रद्धालु तथा पूर्ण भक्त थीं, इसलिए उनका साई चरणों में अत्यन्त प्रेम था। प्रतिदिन दोपहर को वे लौटकर अपना भोजन किया करती थीं। बाबा उनकी अटल श्रद्धा की झाँकी का दूसरों नैवेद्य लेकर मस्जिद को जानी और जब बाबा उसे ग्रहण कर लेते तभी वे दूसरों को भी दर्शन कराना चाहते थे। एक दिन दोपहर को वे साँजा, पूरी, भात, सार, खीर और अन्य भोज्य पदार्थ लेकर मस्जिद में आईं।

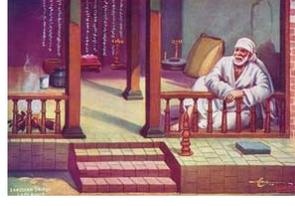
और दिनों तो भोजन प्रायः घंटों तक बाबा की प्रतीक्षा में पड़ा रहता था, परन्तु उस दिन वे तुरंत ही उठे और भोजन के स्थान पर आकर आसन ग्रहण कर लिया और थाली पर से कपड़ा हटाकर उन्होंने रुचिपूर्वक भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। तब शामा कहने लगे कि "यह पक्षपात क्यों? दूसरों की थालियों पर तो आप दृष्टि तक नहीं डालते, उल्टे उन्हें फेंक देते हैं, परन्तु आज इस भोजन को आप बड़ी उत्सुकता और रुचि से खा रहे हैं। आज इस बाई का भोजन आपको इतना स्वादिष्ट क्यों लगा? यह विषय तो हम लोगों के लिए एक समस्या बन गया है।" तब बाबा ने इस प्रकार समझाया:-

"सचमुच ही इस भोजन में एक विचित्रता है। पूर्व जन्म में यह बाई एक व्यापारी की मोटी गाय थी, जो बहुत अधिक दूध देती थी। पशुयोनि त्यागकर इसने एक माली के कुटुम्ब में जन्म लिया। उस जन्म के उपरान्त फिर यह एक

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई और इसका ब्याह एक व्यापारी से हो गया। दीर्घ काल के पश्चात् इनसे भेंट हुई है। इसलिये इनकी थाली में से प्रेमपूर्वक चार ग्रास तो खा लेने दो।” ऐसा बतला कर बाबा ने भर पेट भोजन किया और फिर हाथ मुँह धोकर और तृप्ति की चार-पाँच डकारें लेकर वे अपने आसन पर पुनः आ विराजे। फिर श्रीमती खापर्डे ने बाबा को नमन किया और उनके पाद-सेवन करने लगी। बाबा उनसे वार्तालाप करने लगे और साथ-साथ उनके हाथ भी दबाने लगे। इस प्रकार परस्पर सेवा करते देख शामा मुस्कुराने लगा और बोला कि “ देखो तो, यह एक अद्भुत दृश्य है कि भगवान और भक्त एक दूसरे की सेवा कर रहे हैं। ” उनकी सच्ची लगन देखकर बाबा अत्यन्त कोमल तथा मृदु शब्दों में अपने श्रीमुख से कहने लगे कि अब सदैव “राजाराम, राजाराम” का जप किया करो और यदि तुमने इसका अभ्यास क्रमबद्ध कर लिया तो तुम्हें अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी। तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होकर अत्यधिक लाभ होगा। आध्यात्मिक विषयों से अपरिचित व्यक्तियों के लिये यह घटना साधारण-सी प्रतीत होगी, परन्तु शास्त्रीय भाषा में यह ‘शक्तिपात्’ के नाम से विदित है, अर्थात् गुरु द्वारा शिष्य में शक्तिसंचार करना। कितने शक्तिशाली और प्रभावकारी बाबा के वे शब्द थे, जो एक क्षण में ही हृदय-कमल में प्रवेश कर गए और वहाँ अंकुरित हो उठे। यह घटना गुरु-शिष्य सम्बन्ध के आदर्श की द्योतक है। गुरु-शिष्य दोनों को एक दूसरे को अभिन्न जानकर प्रेम और सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उन दोनों में कोई भेद नहीं है। वे दोनो अभिन्न और एक ही हैं, जो कभी पृथक् नहीं हो सकते। शिष्य गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख रहा है, यह तो केवल बाह्य दृश्यमात्र है। आन्तरिक दृष्टिसे दोनों अभिन्न और एक ही हैं तथा जो उनमें भेद समझता है, वह अभी अपरिपक्व और अपूर्ण ही है।

॥ श्री सद्गुरुनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



चिड़ियों का शिरडी को खींचा जाना-

(१) लक्ष्मीचंद (२) बुरहानपुर की महिला (३) मेघा का निर्वाण।

प्राक्कथन

श्री साई अनंत हैं। वे एक चींटी से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सर्व भूतों में व्याप्त हैं। वेद और आत्मविज्ञान में पूर्ण पारंगत होने के कारण वे सद्गुरु कहलाने के सर्वथा योग्य हैं। ? चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, परन्तु यदि वह अपने शिष्य की जागृति कर उसे आत्मस्वरूप का दर्शन न करा सके तो उसे सद्गुरु के नाम से कदापि सम्बोधित नहीं किया जा सकता। साधारणतः पिता केवल इस नश्वर शरीर का ही जन्मदाता है, परन्तु सद्गुरु जो जन्म और मृत्यु दोनों से ही मुक्ति करा देने वाले हैं। अतः वे अन्य लोगों से अधिक दयावान् हैं।

श्री साईबाबा हमेशा कहा करते थे कि " मेरा भक्त चाहे एक हजार कोस की दूरी पर ही क्यों न हो, वह शिरडी को ऐसा खिंचता चला आता है, जैसे धागे से बँधी हुई चिड़ियाँ खिंच कर स्वयं ही आ जाती हैं।" इस अध्याय में ऐसी ही तीन चिड़ियों का वर्णन है।

लाला लक्ष्मीचन्द

ये महानुभाव बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में नौकरी करते थे। वहाँ से नौकरी छोड़कर वे रेलवे विभाग में आए और फिर वे मेसर्स रैली ब्रदर्स एंड कम्पनी में मुन्शी का कार्य करने लगे। उनका सन् १९१० में श्री साईबाबा से सम्पर्क हुआ। बड़े दिन (क्रिसमस) से लगभग एक या दो मास पहले सांताक्रुज में उन्होंने स्वप्न में एक दाढ़ीवाले वृद्ध को देखा, जो चारों ओर से भक्तों से घिरा हुआ खड़ा था। कुछ दिनों के पश्चात् वे अपने मित्र श्री. दत्तात्रेय मंजुनाथ बिजूर के यहाँ दासगणू का कीर्तन सुनने गए। दासगणू का यह नियम था कि वे कीर्तन करते समय श्रोताओं के सम्मुख श्री साईबाबा का चित्र रख लिया करते थे। लक्ष्मीचन्द को यह चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में उन्हें जिस वृद्ध के दर्शन हुए थे, उनकी आकृति भी ठीक इस चित्र के अनुरूप ही थी। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वप्न में दर्शन देने वाले स्वयं शिरडी के श्री साईनाथ समर्थ के अतिरिक्त और कोई नहीं है। चित्र-दर्शन, दासगणू का मधुर कीर्तन और उनके संत तुकाराम पर प्रवचन आदि का कुछ ऐसा प्रभाव उनपर पड़ा कि उन्होंने शिरडी-यात्रा का दृढ़ संकल्प कर लिया। भक्तों को चिरकाल से ही ऐसा अनुभव होता आया है कि **जो सद्गुरु या अन्य किसी आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में निकलता है, उसकी ईश्वर सदैव ही कुछ न कुछ सहायता करते हैं।** उसी रात्रि को लगभग आठ बजे उनके एक मित्र शंकरराव ने उनका द्वार खटखटाय़ा और पूछा कि क्या आप हमारे साथ शिरडी चलने को तैयार हैं? लक्ष्मीचन्द के हर्ष का पारावार न रहा और उन्होंने तुरन्त ही शिरडी चलने का निश्चय कर लिया। एक मारवाड़ी से पन्द्रह रुपये उधार लेकर तथा अन्य आवश्यक प्रबन्ध कर उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया। रेलगाड़ी में उन्होंने अपने मित्र के साथ कुछ देर भजन भी किया। उसी डिब्बे में चार यवन यात्री भी बैठे थे, जो शिरडी के समीप ही अपने-अपने घरों को लौट रहे थे। लक्ष्मीचन्द ने उन लोगों से श्री साईबाबा के सम्बन्ध में कुछ पुछताछ की। तब लोगों ने उन्हें बताया कि श्री साईबाबा शिरडी में अनेक वर्षों से निवास कर रहे हैं और वे एक पहुँचे हुए संत हैं। जब वे कोपरगाँव पहुँचे तो बाबा को भेंट देने के लिए कुछ अमरुद खरीदने का उन्होंने विचार किया। वे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्यमय दृश्य देखने में कुछ ऐसे तल्लीन हुए कि उन्हें अमरुद लेने की सुध ही न रही। परन्तु जब वे शिरडी के समीप आये तो एकाएक उन्हें अमरुद खरीदने की स्मृति हो आई। इसी बीच उन्होंने देखा कि एक वृद्धा टोकरी में अमरुद लिए ताँगे के पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही है। यह देख उन्होंने ताँगा रुकवाया और उनमें से कुछ बढ़िया अमरुद खरीद लिए। तब वह वृद्धा उनसे कहने लगी कि " कृपा कर ये शेष अमरुद भी मेरी ओर से बाबा को भेंट कर देना। " यह सुनकर तत्क्षण ही उन्हें विचार हो आया कि मैंने अमरुद खरीदने की जो इच्छा पहले की थी और जिसे मैं भूल गया था, उसी की इस वृद्धा ने पुनः स्मृति

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

करा दी है। श्री साईबाबा के प्रति उसकी भक्ति देख वे दोनों बड़े चकित हुए। लक्ष्मीचंद ने यह सोचकर कि हो सकता है कि स्वप्न में जिस दृद्ध के दर्शन मैंने किए थे, उनकी ही यह कोई रिश्तेदार हो, वे आगे बढ़े। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें दूर से ही मस्जिद में फहराती ध्वजाएँ दीखने लगीं, जिन्हें देख प्रणाम कर अपने हाथ में पूजन-सामग्री लेकर वे मस्जिद पहुँचे और बाबा का यथाविधि पूजन कर वे द्रवित हो गए। उनके दर्शन कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए तथा उनके शीतल चरणों से ऐसे लिपटे, जैसे एक मधुमक्खी कमल के मकरन्द की सुगन्ध से मुग्ध होकर उससे लिपट जाती है। तब बाबा ने उनसे जो कुछ कहा, उसका वर्णन हेमाडपंत ने अपने मूल ग्रन्थ में इस प्रकार किया है "साले, रास्ते में भजन करते और दूसरे आदमी से पूछते हैं। क्या दूसरे से पूछना? सब कुछ अपनी आँखों से देखना। क्यों दूसरे आदमी से पूछना? सपना क्या झूठा है या सच्चा? कर लो अपना विचार आप। मारवाड़ी से उधार लेने की क्या जरूरत थी? हुई क्या मुराद की पूर्ति?" ये शब्द सुनकर उनकी सर्वव्यापकता पर लक्ष्मीचन्द को बड़ा अचम्भा हुआ। वे बड़े लज्जित हुए कि घर से शिरडी तक मार्ग में जो कुछ हुआ, उसका उन्हें सब पता है। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात केवल यह है कि बाबा यह नहीं चाहते थे कि उनके दर्शन के लिए कर्ज लिया जाए या तीर्थ यात्रा में छुट्टी मनाए।

साँजा (उपमा)

दोपहर के समय जब लक्ष्मीचंद भोजन को बैठे तो उन्हें एक भक्त ने साँजे का प्रसाद लाकर दिया, जिसे पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन भी वे साँजा की आशा लगाए बैठे रहे, परन्तु किसी भक्त ने वह प्रसाद न दिया, जिसके लिए वे अति उत्सुक थे। तीसरे दिन दोपहर की आरती पर बापूसाहेब जोग ने बाबा से पूछा कि नैवेद्य के लिए क्या बनाया जाए? तब बाबा ने उनसे साँजा लाने को कहा। भक्तगण दो बड़े बर्तनों में साँजा भर कर ले आए। लक्ष्मीचंद को भूख भी अधिक लगी थी। साथ ही उनकी पीठ में दर्द भी था। बाबा ने लक्ष्मीचंद से कहा-(हेमाडपंत ने मूल ग्रंथ में इस प्रकार वर्णन किया है) "तुमको भूख लगी है, अच्छा हुआ। कमर में दर्द भी है। लो, अब साँजे की ही करो दवा।" उन्हें पुनः अचम्भा हुआ कि मेरे मन के समस्त विचारों को उन्होंने जान लिया है। वस्तुतः वे सर्वज्ञ हैं!

कुदृष्टि

इसी यात्रा में एक बार उनको चावड़ी का जुलूस देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो गया। उस दिन बाबा कफ़ से अधिक पीड़ित थे। उन्हें विचार आया कि इस कफ़ का कारण शायद किसी की नजर लगी हो। दूसरे दिन प्रातः काल जब बाबा मस्जिद को गए तो शामा से कहने लगे कि "कल जो मुझे कफ़ से पीड़ा हो रही थी, उसका मुख्य कारण किसी की कुदृष्टि ही है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की नजर लग गई है, इसीलिए यह पीड़ा मुझे हो गई है। लक्ष्मीचन्द के मन में जो विचार उठ रहे थे, वही बाबा ने भी कह दिए। बाबा की सर्वज्ञता के अनेक प्रमाण तथा भक्तों के प्रति उनका स्नेह देखकर लक्ष्मीचंद बाबा के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे कि "आपके प्रिय दर्शन से मेरे चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरा मन-मधुप आपके चरण कमल और भजनों में ही लगा रहे। आपके अतिरिक्त भी अन्य कोई ईश्वर है, इसका मुझे ज्ञान नहीं। मुझ पर आप सदा दया और स्नेह करें और अपने चरणों के दीन दास की रक्षा कर उसका कल्याण करें। आपके भवभयनाशक चरणों का स्मरण करते हुए मेरा जीवन आनन्द से व्यतीत हो जाए, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है।"

बाबा से आशीर्वाद तथा उदी लेकर वे मित्र के साथ प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मार्ग में उनकी कीर्ति का गुणगान करते हुए घर वापस लौट आये और सदैव उनके अनन्य भक्त बने रहे। शिरडी जाने वालों के हाथ वे उनको हार, कपूर और दक्षिणा भेजा करते थे।

बुरहानपुर की महिला

अब हम दूसरी चिड़िया (भक्त) का वर्णन करेंगे। एक दिन बुरहानपुर में एक महिला ने स्वप्न में देखा कि श्रीसाईबाबा उसके द्वार पर खड़े भोजन के लिए खिचड़ी माँग रहे हैं। उसने उठकर देखा तो द्वारपर कोई भी न था। फिर भी वह प्रसन्न हुई और उसने यह स्वप्न अपने पति तथा अन्य लोगों को सुनाया। उसका पति डाक विभाग में नौकरी करता था। वे दोनों ही बड़े धार्मिक थे। जब उसका स्थानान्तरण अकोला को होने लगा तो दोनों ने शिरडी जाने का भी निश्चय किया और एक शुभ दिन उन्होंने शिरडी को प्रस्थान कर दिया। मार्ग में गोमती तीर्थ होकर वे शिरडी पहुँचे और वहाँ दो माह तक ठहरे। प्रतिदिन वे मस्जिद जाते और बाबा का पूजन कर आनन्द से अपना समय व्यतीत करते थे। यद्यपि दम्पति खिचड़ी का नैवेद्य भेंट करने को ही आए थे, परन्तु किसी कारणवश उन्हें 98

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

दिनों तक ऐसा संयोग प्राप्त न हो सका। उनकी स्त्री इस कार्य में अब अधिक विलम्ब न करना चाहती थी। इसीलिए जब १५ वें दिन दोपहर के समय वह खिचड़ी लेकर मस्जिद में पहुँची तो उसने देखा कि बाबा अन्य लोगों के साथ भोजन करने बैठ चुके हैं। परदा गिर चुका था, जिसके पश्चात् किसी का साहस न था कि वह भीतर प्रवेश कर सके। परन्तु वह एक क्षण भी प्रतीक्षा न कर सकी और हाथ से परदा हटाकर भीतर चली आई। बड़े आश्चर्य की बात थी कि उसने देखा कि बाबा की इच्छा उस दिन प्रथमतः खिचड़ी खाने की ही थी, जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। जब वह थाली लेकर भीतर आई तो बाबा को बड़ा हर्ष हुआ और वे उसी में से खिचड़ी के ग्रास लेकर खाने लगे। बाबा की ऐसी उत्सुकता देख प्रत्येक को बड़ा आश्चर्य हुआ और जिन्होंने यह खिचड़ी की वार्ता सुनी, उन्हें भक्तों के प्रति बाबा का असाधारण स्नेह देख बड़ी प्रसन्नता हुई।

मेघा का निर्वाण

अब तृतीय महान् पक्षी की चर्चा सुनिए। बिरमगाँव का रहने वाला मेघा अत्यन्त सीधा और अनपढ़ व्यक्ति था। वह रावबहादुर ह.वि. साठे के यहाँ रसोईए का काम किया करता था। वह शिवजी का परम भक्त था, और सदैव पंचाक्षरी मंत्र “ नमः शिवाय ” का जप किया करता था। सन्ध्योपासना आदि का उसे कुछ भी ज्ञान न था। यहाँ तक कि वह संध्या के मूल गायत्रीमंत्र को भी न जानता था। रावबहादुर साठे का उस पर अत्यन्त स्नेह था। इसलिए उन्होंने उसे सन्ध्या की विधि तथा गायत्रीमंत्र सिखला दिया। साठेसाहेब ने श्री साईबाबा को शिवजी का साक्षात् अवतार बतलाकर उसे शिरड़ी भेजने का निश्चय किया। किन्तु साठेसाहेब से पूछनेपर उन्होंने बताया कि श्री साईबाबा तो यवन है। इसलिए मेघा ने सोचा कि शिरड़ी में एक यवन को प्रणाम करना पड़े यह अच्छी बात नहीं है। भोला-भाला आदमी तो वह था ही, इसलिए उसके मन में असमंजस पैदा हो गया। तब उसने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि कृपा कर मुझे वहाँ न भेजें। परन्तु साठेसाहेब कहाँ मानने वाले थे? उनके सामने मेघा की एक न चली। उन्होंने उसे किसी प्रकार शिरड़ी भेज दिया तथा उसके द्वारा अपने ससुर गणेश दामोदर उपनाम दादा केलकर को, जो शिरड़ी में ही रहते थे- एक पत्र भेजा कि मेघाका परिचय बाबा से करा देना। शिरड़ी पहुँचने पर जब वह मस्जिद में घुसा तो बाबा उत्पन्न क्रोधित हो गए और उसे उन्होंने मस्जिद में आने की मनाही कर दी। वे गर्जना कर कहने लगे कि “ उसे बाहर निकाल दो। ” फिर मेघा की ओर देखकर कहने लगे कि “ तुम तो एक उच्च कुलीन ब्राह्मण हो और मैं निम्न जाति का एक यवन। तुम्हारी जाति भ्रष्ट हो जाएगी। इसलिए यहाँ से बाहर निकल जाओ। ” ये शब्द सुनकर मेघा काँप उठा। उसे बड़ा विस्मय हुआ कि जो कुछ उसके मन में विचार उठ रहे थे, उन्हें बाबा ने कैसे जान लिया? किसी प्रकार वह कुछ दिन वहाँ ठहरा और अपनी इच्छानुसार सेवा भी करता रहा, परन्तु उसकी इच्छा तृप्त न हुई। फिर वह घर लौट आया और वहाँ से त्रिंबक (नासिक जिला) को चला गया। वर्ष भरके पश्चात् वह पुनः शिरड़ी आया और इस बार दादा केलकर के कहने से उसे मस्जिद में रहने का अवसर प्राप्त हो गया। साईबाबा मौखिक उपदेश द्वारा मेघा की उन्नति करने के बदले उसका आंतरिक सुधार कर रहे थे। उसकी स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन हो कर यथेष्ट प्रगति हो चुकी थी और अब तो वह श्री साईबाबा को शिवजी का ही साक्षात् अवतार समझने लगा था। शिवपूजन में बिल्व पत्रों की आवश्यकता होती है। इसलिए अपने शिवजी (बाबा) का पूजन करने के हेतु बिल्वपत्रों की खोज में वह मीलों दूर निकल जाया करता था। प्रतिदिन उसने ऐसा नियम बना लिया था कि गाँव में जितने भी देवालय थे, प्रथम वहाँ जाकर वह उनका पूजन करता और इसके पश्चात् ही वह मस्जिद में बाबा को प्रणाम करता तथा कुछ देर चरण-सेवा करने के पश्चात् ही चरणामृत पान करता था। एक बार ऐसा हुआ कि खंडोबा के मंदिर का द्वार बन्द था। इस कारण वह बिना पूजन किए ही वहाँ से लौट आया और जब वह मस्जिद में आया तो बाबा ने उसकी सेवा स्वीकार न की तथा उसे पुनः वहाँ जाकर पूजन कर आने को कहा और उसे बतलाया कि अब मंदिर के द्वार खुल गए हैं। मेघा ने जाकर देखा कि सचमुच मंदिर के द्वार खुल गये हैं। जब उसने लौटकर यथाविधि पूजा की, तब कहीं बाबा ने उसे अपना पूजन करने की अनुमति दी।

गंगास्नान

एक बार मकर संक्रान्ति के अवसर पर मेघा ने विचार किया कि बाबा को चन्दन का लेप करूँ तथा गंगाजल से उन्हें स्नान कराऊँ। बाबा ने पहले तो इसके लिए अपनी स्वीकृति न दी, परन्तु उसकी लगातार प्रार्थना के उपरांत उन्होंने किसी प्रकार स्वीकर कर लिया। गोदावरी नदी का पवित्र जल लाने के लिए मेघा को आठ कोस का चक्कर लगाना पड़ा। वह जल लेकर लौट आया और दोपहर तक पूर्ण व्यवस्था कर ली। तब उसने बाबा को तैयार होने की सूचना दी। बाबा ने पुनः मेघा से अनुरोध किया कि “मुझे इस झंझट से दूर ही रहने दो। मैं तो एक फकीर हूँ,

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

मुझे गंगाजल से क्या प्रयोजन?" परन्तु मेघा कुछ सुनता ही न था। मेघा की तो यह दृढ़ धारणा थी कि शिवजी गंगाजल से अधिक प्रसन्न होते हैं। इसलिए ऐसे शुभ पर्व पर अपने शिवजी को स्नान कराना हमारा परम कर्तव्य है। अब तो बाबा को सहमत होना ही पड़ा और नीचे उतर कर वे एक पीढ़े पर बैठ गए तथा अपना मस्तक आगे करते हुए कहा कि " अरे मेघा ! कम से कम इतनी कृपा तो करना कि मेरे केवल सिर पर ही पानी डालना। सिर शरीर का प्रधान अंग है और उस पर पानी डालना ही पर पानी डालना ही पूरे शरीर पर डालने के सदृश है।" मेघा ने " अच्छा अच्छा" कहते हुए बर्तन उठाकर सिर पर पानी डालना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा करने से उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसने उच्च स्वर में " हर हर गंगे " की ध्वनि करते हुए समूचे बर्तन का पानी बाबा के सम्पूर्ण शरीर पर उँडेल दिया और फिर पानी का बर्तन एक ओर रखकर वह बाबा की ओर निहारने लगा। उसने देखा कि बाबा का तो केवल सिर ही भीगा है और शेष भाग ज्यों का त्यों बिल्कुल सूखा ही है। यह देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

त्रिशूल और पिंडी

मेघा बाबा को दो स्थानों पर स्नान कराया करता था। प्रथम वह बाबा को मस्जिद में स्नान कराता और फिर वाड़े में नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा प्राप्त उनके बड़े चित्र को। इस प्रकार यह क्रम १२ मास तक चलता रहा।

बाबा ने उसकी भक्ति तथा विश्वास दृढ़ करने के लिए उसे दर्शन दिए। एक दिन प्रातःकाल मेघा जब अर्ध निद्रावस्था में अपनी शैया पर पड़ा हुआ था, तभी उसे उनके श्रीदर्शन हुए। बाबा ने उसे जागृत जानकर अक्षत फेंके और कहा कि "मेघा! मुझे त्रिशूल लगाओ।" इतना कहकर वे अदृश्य हो गए। उनके शब्द सुनकर उसने उत्सुकता से अपनी आँखें खोलीं, परन्तु देखा कि वहाँ कोई नहीं है; केवल अक्षत ही यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। तब वह उठकर बाबा के पास गया और उन्हें अपना स्वप्न सुनाने के पश्चात् उसने उन्हें त्रिशूल लगाने की आज्ञा माँगी। बाबा ने कहा कि "क्या तुमने मेरे शब्द नहीं सुने कि मुझे त्रिशूल लगाओ। वह कोई स्वप्न तो नहीं, वरन् मेरी प्रत्यक्ष आज्ञा थी। मेरे शब्द सदैव अर्थपूर्ण होते हैं, थोथे-पोचे नहीं।" मेघा कहने लगा कि आपने दया कर मुझे निद्रा से तो जागृत कर दिया है, परन्तु सभी द्वार पूर्ववत् ही बन्द देखकर मैं मूढ़मति भ्रमित हो उठा हूँ कि कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा था। बाबा ने आगे कहा कि " मुझे प्रवेश करने के लिए किसी विशेष द्वार की आवश्यकता नहीं है। न मेरा कोई रूप ही है और न कोई अन्त ही। मैं सदैव सर्वभूतों में व्याप्त हूँ। जो मुझ पर विश्वास रखकर सतत मेरा ही चिन्तन करता है, उसके सब कार्य मैं स्वयं ही करता हूँ और अन्त में उसे श्रेष्ठ गति देता हूँ।" मेघा वाड़े को लौट आया और बाबा के चित्र के समीप ही दीवार पर एक लाल त्रिशूल खींच दिया। दूसरे दिन एक रामदासी भक्त पूने से आया। उसने बाबा को प्रणाम कर शंकर की एक पिंडी भेंट की। उसी समय मेघा भी वहाँ पहुँचे। तब बाबा उनसे कहने लगे कि देखो, शंकर भोले आ गए हैं। अब उन्हें सँभालो। मेघा ने पिंडी पर त्रिशूल लगा देखा तो उसे महान् विस्मय हुआ। वह वाड़े में आया। इस समय काकासाहेब दीक्षित स्नान के पश्चात् सिर पर तौलिया डाले 'साई' नाम का जप कर रहे थे। तभी उन्होंने ध्यान में एक पिंडी देखी, जिससे उन्हें कौतूहल-सा हो रहा था। उन्होंने सामने से मेघा को आते देखा। मेघा ने बाबा द्वारा प्रदत्त वह पिंडी काकासाहेब दीक्षित को दिखाई। पिंडी ठीक वैसी ही थी, जैसी कि उन्होंने कुछ घड़ी पूर्व ध्यान में देखी थी। कुछ दिनों में जब त्रिशूल का खींचना पूर्ण हो गया तो बाबा ने बड़े चित्र के पास (जिसका मेघा नित्य पूजन करता था) ही उस पिंडी की स्थापना कर दी। मेघा को शिव-पूजन से बड़ा प्रेम था। त्रिपुंड खींचने का अवसर देकर तथा पिंडी की स्थापना कर बाबा ने उसका विश्वास दृढ़ कर दिया।

इस प्रकार कई वर्षों तक लगातार दोपहर और सन्ध्या को नियमित आरती तथा पूजा कर सन् १९९२ में मेघा परलोकवसी हो गया। बाबा ने उसके मृत शरीर पर अपना हाथ फेरते हुए कहा कि " यह मेरा सच्चा भक्त था।" फिर बाबा ने अपने ही खर्च से उसका मृत्यु-भोज ब्राह्मणों को दिए जाने की आज्ञा दी, जिसका पालन काकासाहेब दीक्षित ने किया।

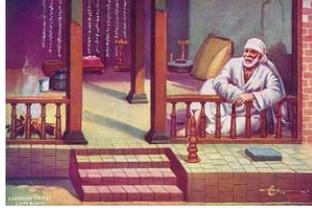
॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

सप्ताह पारायण : चतुर्थ विश्राम

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह



(१) मद्रासी भजनी मेला (२) तेंडुलकर (पिता व पुत्र) (३) डॉक्टर कैप्टन हाटे और (४) वामन नार्वेकर आदि की कथाएँ।

मद्रासी भजनी मेला

लगभग सन् १९१६ में एक मद्रासी भजन मंडली पवित्र काशी की तीर्थयात्रा पर निकली। उस मंडली में एक पुरुष, उनकी स्त्री, पुत्री और साली थी। अभाग्यवश, उनके नाम यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं। मार्ग में कहीं उनको सुनने में आया कि अहमदनगर के कोपरगाँव तालुका के शिरडी ग्राम में श्री साईबाबा नाम के एक महान् सन्त रहते हैं, जो बहुत दयालु और पहुँचे हुए हैं। वे उदार हृदय और अहेतुक कृपासिन्धु हैं। वे प्रतिदिन अपने भक्तों को रुपया बाँटा करते हैं। यदि कोई कलाकार वहाँ जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करता है तो उसे भी पुरस्कार मिलता है। प्रतिदिन दक्षिणा में बाबा के पास बहुत रुपए इकट्ठे हो जाया करते थे। इन रुपयों में से वे नित्य एक रुपया भक्त कोण्डाजी की तीनवर्षीय कन्या अमनी को, किसी को दो रुपए से पाँच रुपए तक, छः रुपये अमनी की माँ जमली को और दस से बीस रुपए तक और कभी-कभी पचास रुपए भी अपनी इच्छानुसार अन्य भक्तों को भी दिया करते थे। यह सुनकर मंडली शिरडी आकर रुकी। मंडली बहुत सुन्दर भजन और गायन किया करती थी, परन्तु उनका भीतरी ध्येय तो द्रव्योपार्जन ही था। मंडली में तीन व्यक्ति तो बड़े ही लालची थे। केवल प्रधान स्त्री का ही स्वभाव इन लोगों से सर्वथा भिन्न था। उसके हृदय में बाबा के प्रति श्रद्धा तथा आदर था। एक बार जब दोपहर की आरती हो रही थी, तभी उस स्त्री की भक्ति और विश्वास देखकर बाबा प्रसन्न हो गये। फिर क्या था? बाबा ने उसे उसके इष्ट के रुप में दर्शन दिए और केवल उसे ही बाबा सीतानाथ के रुप में दिखलाई दिए, जब कि अन्य उपस्थित लोगों को सदैव की भाँति ही। अपने प्रिय इष्ट का दर्शन पाकर वह द्रवित हो गई तथा उसका कंठ रुँध गया और आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। तभी प्रेमोन्मत्त हो वह ताली बजाने लगी। उसको इस प्रकार आनन्दित देख लोगों को कौतूहल तो होने लगा, परन्तु कारण किसी को भी ज्ञात न हो रहा था। दोपहर के पश्चात् उसने वह भेद अपने पति से प्रगट किया। बाबा के श्रीरामस्वरूप में उसे कैसे दर्शन हुए इत्यादि उसने सब बताया। पति ने सोचा कि मेरी स्त्री बहुत भोली और भावुक है, अतः इसे राम का दर्शन होना एक मानसिक विकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उसने ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा कर दी कि कहीं यह भी संभव हो सकता है कि केवल तुम्हें ही बाबा राम के रुप में दिखें और अन्य लोगों को सदैव की भाँति ही। स्त्री ने कोई प्रतिवाद न किया, क्योंकि उसे राम के दर्शन जिस प्रकार उस समय हुए थे, वैसे ही अब भी हो रहे थे। उसका मन शान्त, स्थिर और संतुष्ट हो चुका था।

आश्चर्यजनक दर्शन

इसी प्रकार दिन बीतते गए। एक दिन रात्रि में उसके पति को एक विचित्र स्वप्न आया। उसने देखा कि एक बड़े शहर में पुलिस ने गिरफ्तार कर डोरी से बाँधकर उसे कारावास में डाल दिया है। तत्पश्चात् ही उसने देखा कि बाबा शान्त मुद्रा में सीकचों के बाहर उसके समीप खड़े हैं। उन्हें अपने समीप खड़े देखकर वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि "आपकी कीर्ति सुनकर ही मैं आपके श्रीचरणों में आया हूँ। फिर आपके इतने निकट होते हुए भी मेरे ऊपर यह विपत्ति क्यों आई?"

तब वे बोले कि "तुम्हें अपने बुरे कर्मों का फल अवश्य भुगतना चाहिए। वह पुनः बोला कि "इस जीवन में मुझे अपने ऐसे कर्म की स्मृति नहीं, जिसके कारण मुझे ये दुर्दिन देखने का अवसर मिला।" बाबा ने कहा कि "यदि इस जन्म में नहीं तो गत जन्म में अवश्य कोई बुरा कर्म किया होगा।" तब वह कहने लगा कि "मुझे तो अपने गत जन्म की कोई स्मृति नहीं, परन्तु यदि एक बार मान भी लूँ कि कोई बुरा कर्म हो भी गया होगा तो अपने यहाँ होते हुए तो उसे भस्म हो जाना चाहिए, जिस प्रकार सूखी घास अग्नि द्वारा शीघ्र भस्म हो जाती है।" बाबा ने पूछा, "क्या तुम्हारा सचमुच ऐसा दृढ़ विश्वास है?" उसने कहा, "हाँ।"

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

बाबा ने उससे अपनी आँखें बन्द करने को कहा और जब उसने आँखें बन्द की, उसे किसी भारी वस्तु के गिरने की आहट सुनाई दी। आँखें खोलने पर उसने अपने को कारावास से मुक्त पाया। पुलिस वाला नीचे गिरा पड़ा है तथा उसके शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है, यह देखकर वह अत्यन्त भयभीत दृष्टि से बाबा की ओर देखने लगा। तब बाबा बोले कि “ बच्चू! अब तुम्हारी अच्छी तरह खबर ली जाएगी। पुलिस अधिकारी अभी आएँगे और तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे ।” तब वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि “ आपके अतिरिक्त मेरी रक्षा और कौन कर सकता है ? मुझे तो एकमात्र आपका ही सहारा है। भगवान् ! मुझे किसी प्रकार बचा लीजिए ।”

तब बाबा ने फिर उससे आँखें बन्द करने को कहा। आँखें खोलने पर उसने देखा कि वह पूर्णतः मुक्त होकर सींकचों के बाहर खड़ा है और बाबा भी उसके समीप ही खड़े हैं। तब वह बाबा के श्रीचरणों पर गिर पड़ा।

बाबा ने पूछा कि “ मुझे बताओं तो, तुम्हारे इस नमस्कार और पिछले नमस्कारों में किसी प्रकार की भिन्नता है या नहीं ? इसका उत्तर अच्छी तरह सोच कर दो ।”

वह बोला कि “ आकाश और पाताल में जो अन्तर है, वही अंतर मेरे पहले और इस नमस्कार में है। मेरे पूर्व नमस्कार तो केवल धन-प्राप्ति की आशा से ही थे, परन्तु यह नमस्कार मैंने आपको ईश्वर जानकर ही किया है। पहले मेरी धारणा ऐसी थी कि यवन होने के नाते आप हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं।”

बाबा ने पूछा कि “ क्या तुम्हारा यवन पीरों में विश्वास नहीं?” प्रत्युत्तर में उसने कहा- “ जी नहीं। ” तब वे फिर पूछने लगे कि “क्या तुम्हारे घर में एक पंजा नहीं? क्या तुम ताबूत की पूजा नहीं किया करते? तुम्हारे घर में अभी भी एक काड़बीबी नामक देवी है, जिसके सामने तुम विवाह तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर कृपा की भीख माँगा करते हो।”

अन्त में जब उसने स्वीकार कर लिया तो वे बोले कि “इससे अधिक अब तुम्हें क्या प्रमाण चाहिए ?” तब उनके मन में अपने गुरु श्रीरामदास के दर्शनों की इच्छा हुई। बाबा ने ज्यों ही उससे पीछे घूमने को कहा तो उसने देखा कि श्रीरामदास स्वामी उसके सामने खड़े हैं और जैसे ही वह उनके चरणों पर गिरने को तत्पर हुआ, वे तूरन्त अदृश्य हो गए।

तब वह बाबा से कहने लगा कि “ आप तो वृद्ध प्रतीत होते हैं। क्या आपको अपनी आयु विदित है?”

बाबा ने पूछा कि “ तुम क्या कहते हो कि मैं बूढ़ा हूँ? थोड़ी दूर मेरे साथ दौड़कर तो देखो ।” ऐसा कहकर बाबा दौड़ने लगे और वह भी उनके पीछे- पीछे दौड़ने लगा। दौड़ने से पैरों द्वारा जो धूल उड़ी, उसमें बाबा लुप्त हो गए और तभी उसकी नींद भी खुल गई।

जागृत होते ही वह गम्भीरतापूर्वक इस स्वप्न पर विचार करने लगा । उसकी मानसिक प्रवृत्ति में पूर्ण परिवर्तन हो गया । अब उसे बाबा की महानता विदित हो चुकी थी। उसकी लोभी तथा शंकालु वृत्ति लुप्त हो गई और हृदय में बाबा के चरणों के प्रति सच्ची भक्ति उमड़ पड़ी। वह था तो एक स्वप्न मात्र ही, परन्तु उसमें जो प्रश्नोत्तर थे, वे अधिक महत्त्वपूर्ण थे। दूसरे दिन जब सब लोग मस्जिद में आरती के निमित्त एकत्रि हुए, तब बाबा ने उसे प्रसाद में लगभग दो रूपए की मिठाई और दो रूपए नगद अपने पास से देकर आशीर्वाद दिया। उसे कुछ दिन और रोककर उन्होंने आशीष देते हुए कहा कि “ अल्ला तुम्हें बहुत देगा और अब सब अच्छा ही करेगा।” बाबा से उसे अधिक द्रव्य की प्राप्ति तो न हुई, परन्तु उनकी कृपा उसे अवश्य ही प्राप्त हो गई, जिससे उसका बहुत की कल्याण हुआ । मार्ग में उनको यथेष्ट द्रव्य प्राप्त हुआ और उनकी यात्रा बहुत ही सफल रही। उन्हें यात्रा में कोई कष्ट या असुविधा न हुई और वे अपने घर सकुशल पहुँच गए। उन्हें बाबा के श्रीवचनों तथा आशीर्वाद और उनकी कृपा से प्राप्त उस आनन्द की सदैव स्मृति बनी रही।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

इस कथा से विदित होता है कि बाबा किस प्रकार अपने भक्तों के समीप पधारकर उन्हें श्रेयस्कर मार्ग पर ले आते थे और आज भी ले आते हैं।

तेंडुलकर कुटुम्ब

बम्बई के पास बान्द्रा में एक तेंडुलकर कुटुम्ब रहता था, जो बाबा का पूरा भक्त था। श्रीयुत् रघुनाथराव तेंडुलकर ने मराठी भाषा में 'श्रीसाईनाथ भजनमाला' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लगभग आठ सौ अभंग और पदों का समावेश तथा बाबा की लीलाओं का मधुर वर्णन है। यह बाबा के भक्तों के पढ़ने योग्य पुस्तक है। उनका ज्येष्ठ पुत्र बाबू डॉक्टरी परीक्षा में बैठने के लिये अनवरत अभ्यास कर रहा था। उसने कई ज्योतिषियों को अपनी जन्म-कुंडली दिखाई, परन्तु सभी ने बतलाया कि इस वर्ष उसके ग्रह उत्तम नहीं हैं किन्तु अगले वर्ष परीक्षा में बैठने से उसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। इससे उसे बड़ी निराशा हुई और वह अशान्त हो गया। थोड़े दिनों के पश्चात् उसकी माँ शिरड़ी गई और उसने वहाँ बाबा के दर्शन किए। अन्य बातों के साथ उसने अपने पुत्र की निराशा तथा अशान्ति की बात भी बाबा से कही। उनके पुत्र को कुछ दिनों के पश्चात् ही परीक्षा में बैठना था। बाबा कहने लगे कि "अपने पुत्र से कहो कि मुझ पर विश्वास रखे। सब भविष्यकथन तथा ज्योतिषियों द्वारा बनाई कुंडलियों को एक कोने में फेंक दे और अपना अभ्यास-क्रम चालू रख शान्तचित्त से परीक्षा में बैठे। वह अवश्य ही इस वर्ष उत्तीर्ण हो जाएगा। उससे कहना कि निराशा होने की कोई बात नहीं है।" माँ ने घर आकर बाबा का सन्देश पुत्र को सुना दिया। उसने घोर परिश्रम किया और परीक्षा में बैठ गया। सब परचों के जवाब बहुत अच्छे लिखे थे। परन्तु फिर भी संशयग्रस्त होकर उसने सोचा कि सम्भव है कि उत्तीर्ण होने योग्य अंक मुझे प्राप्त न हो सकें। इसलिए उसने मौखिक परीक्षा में बैठने का विचार त्याग दिया। परीक्षक तो उसके पीछे ही लगा था। उसने एक विद्यार्थी द्वारा सूचना भेजी कि उसे लिखित परीक्षा में तो उत्तीर्ण होने लायक अंक प्राप्त हैं। अब उसे मौखिक परीक्षा में अवश्य ही बैठना चाहिए। इस प्रकार प्रोत्साहन पाकर वह उसमें भी बैठ गया तथा दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गया। उस वर्ष उसकी ग्रह-दशा विपरीत होते हुए भी बाबा की कृपा से उसने सफलता पाई। यहाँ केवल इतनी ही बात ध्यान देने योग्य है कि **कष्ट और संशय की उत्पत्ति अन्त में दृढ़ विश्वास में परिणत हो जाती है। जैसी भी हो, परीक्षा तो होती ही है, परन्तु यदि हम बाबा पद दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखकर प्रयत्न करते रहें तो हमें सफलता अवश्य ही मिलेगी।**

इसी बालक के पिता रघुनाथराव बम्बई की एक विदेशी व्यवसायी फर्म में नौकरी करते थे। वे बहुत वृद्ध हो चुके थे और अपना कार्य सुचारुरूप से नहीं कर सकते थे। इसलिए वे अब छुट्टी लेकर विश्राम करना चाहते थे। छुट्टी लेने पर भी उनके शारीरिक स्वास्थ्य में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। अब यह आवश्यक था कि सेवानिवृत्ति की पूर्वकालिक छुट्टी ली जाए। एक वृद्ध और विश्वासपात्र नौकर होने के नाते प्रधान मैनेजर ने उन्हें पेन्शन देकर सेवा-निवृत्त करने का निर्णय किया। पेन्शन कितनी दी जाए, यह पश्न विचाराधीन था। उन्हें १५० रुपये मासिक वेतन मिलता था। इस हिसाब से पेन्शन हुई ७५ रुपये, जो कि उनके कुटुम्ब के निर्वाह हेतु अपर्याप्त थी। इसलिए वे बड़े चिन्तित थे। निर्णय होने के पन्द्रह दिन पूर्व ही बाबा ने श्रीमती तेंडुलकर को स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि "मेरी इच्छा है कि पेन्शन १०० रुपये दी जाए। क्या तुम्हें इससे सन्तोष होगा?"

श्रीमती तेंडुलकर ने कहा कि "बाबा मुझ दासी से आप क्या पूछते हैं? हमें तो आपके श्री-चरणों में पूर्ण विश्वास है।"

यद्यपि बाबा ने १०० रुपये कहे थे, परन्तु उसे विशेष प्रकरण समझकर १० रुपये अधिक अर्थात् ११० रुपये पेन्शन निश्चित हुई। बाबा अपने भक्तों के लिए कितना अपरिमित स्नेह और कितनी चिन्ता रखते थे?

कैप्टन हाटे

बीकानेर के निवासी कैप्टन हाटे बाबा के परम भक्त थे। एक बार स्वप्न में बाबा ने उनसे पूछा कि "क्या तुम्हें मेरी विस्मृति हो गई?" श्री. हाटे ने उनके श्रीचरणों से लिपट कर कहा कि "यदि बालक अपनी माँ को भूल जाए तो क्या वह जीवित रह सकता है?"

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

इतना कहकर श्री. हाटे शीघ्र बगीचे में जाकर कुछ वलपपड़ी (सेम) तोड़ लाए और एक थाली में सीधा (सूखी भिक्षा) तथा दक्षिणा रखकर बाबा को भेंट करने आए। उसी समय उनकी आँखें खुल गईं और उन्हें ऐसा भान हुआ कि यह तो एक स्वप्न था। फिर वे सब वस्तुएँ, जो उन्होंने स्वप्न में देखी थीं, बाबा के पास शिरड़ी भेजने का निश्चय कर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् वे ग्वालियर आए और वहाँ से अपने एक मित्र को बारह रुपयों का मनीऑर्डर भेजकर पत्र में लिख भेजा कि दो रुपयों में सीधा की सामग्री और वलपपड़ी (सेम) आदि मोल लेकर तथा दस रुपये दक्षिणास्वरूप साथ में रखकर मेरी ओर से बाबा को भेंट देना। उनके मित्र ने शिरड़ी आकर सब वस्तुएँ तो संग्रह कर लीं, परन्तु वलपपड़ी प्राप्त करने में उन्हें अत्यन्त कठिनाई हुई। थोड़ी देर के पश्चात् ही उन्होंने एक स्त्री को सिर पर टोकरी रखे सामने से आते देखा। उन्हें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उस टोकरी में वलपपड़ी के अतिरिक्त कुछ भी न था। तब उन्होंने वलपपड़ी खरीद कर सब एकत्रित वस्तुएँ लेकर मस्जिद में जाकर श्री. हाटे की ओर से बाबा को भेंट कर दी। दूसरे दिन श्री. निमोणकर ने उसका नैवेद्य (चावल और वलपपड़ी की सब्जी) तैयार कर बाबा को भोजन कराया। सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा ने भोजन में केवल वलपपड़ी ही खाई और अन्य वस्तुओं को स्पर्श तक न किया। उनके मित्र द्वारा जब इस समाचार का पता कैप्टन हाटे को चला तो वे गद्गद् हो उठे और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

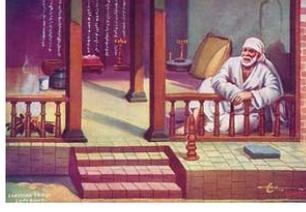
पवित्र रुपया

एक अन्य अवसर पर कैप्टन हाटे ने विचार किया कि बाबा के पवित्र करकमलों द्वारा स्पर्शित एक रुपया लाकर अपने घर में अवश्य ही रखना चाहिए। अचानक ही उनकी भेंट अपने एक मित्र से हो गई, जो शिरड़ी जा रहे थे। उनके हाथ ही श्री. हाटे ने एक रुपया भेज दिया। शिरड़ी पहुँचने पर बाबा को यथायोग्य प्रणाम करने के पश्चात् उसने दक्षिणा भेंट की, जिसे उन्होंने तुरन्त ही अपनी जेब में रख लिया। तत्पश्चात् ही उसने कैप्टन हाटे का रुपया भी अर्पण किया, जिसे वे हाथ में लेकर गौर से निहारने लगे। उन्होंने उसका अंकित चित्र ऊपर की ओर कर अँगूठे पर रख खनखनाया और अपने हाथ में लेकर देखने लगे। फिर वे उनके मित्र से कहने लगे कि उदी सहित यह रुपया अपने मित्र को लौटा देना। मुझे उनसे कुछ नहीं चाहिए। उनसे कहना कि वे आनन्दपूर्वक रहें। मित्र ने ग्वालियर आकर वह रुपया हाटे को देकर वहाँ जो कुछ हुआ था, वह सब उन्हें सुनाया, जिसे सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अनुभव किया कि बाबा सदैव उत्तम विचारों को प्रोत्साहित करते हैं। उनकी मनोकामना बाबा ने पूर्ण कर दी।

श्री. वामन नार्वेकर

पाठकगण अब एक भिन्न कथा श्रवण करें। एक महाशय, जिनका नाम वामन नार्वेकर था, उनकी साई-चरणों में प्रगाढ़ प्रीति थी। एक बार वे एक ऐसी मुद्रा लाए, जिसकी एक ओर राम, लक्ष्मण और सीता तथा दूसरी ओर करबद्ध मुद्रा में मारुति का चित्र अंकित था। उन्होंने यह मुद्रा बाबा को इस अभिप्राय से भेंट की कि वे इसे अपने करस्पर्श से पवित्र कर उदी सहित लौटा दें। परन्तु उन्होंने उसे तुरन्त अपनी जेब में रख लिया। शामा ने वामनराव की इच्छा बताकर उनसे मुद्रा वापस करने का अनुरोध किया। तब वे वामनराव के सामने ही कहने लगे कि “यह भला उनको क्यों लौटाई जाय? इसे तो हमें अपने पास ही रखना चाहिए। यदि वे इसके बदले में पच्चीस रुपया देना स्वीकार करें तो मैं इसे लौटा दूँगा।” वह मुद्रा वापस पाने के हेतु श्री. वामनराव ने पच्चीस रुपये एकत्रित कर उन्हें भेंट किए। तब बाबा कहने लगे कि “इस मुद्रा का मूल्य तो पच्चीस रुपयों से कहीं अधिक है। शामा! तुम इसे अपने भंडार में जमा करके अपने देवालय में प्रतिष्ठित कर इसका नित्य पूजन करो।” किसी का साहस न था कि वे यह पूछ तो लें कि उन्होंने ऐसी नीति क्यों अपनाई? यह तो केवल बाबा ही जानें कि किसके लिये कब और क्या उपयुक्त है?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



शिरडी को खींचे गए भक्त

वणी के काका वैद्य (२) खुशालचंद (३) बम्बई के रामलाल पंजाबी ।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि तीन अन्य भक्त किस प्रकार शिरडी की ओर खींचे गये।

प्राक्कथन

जो बिना किसी कारण भक्तों पर स्नेह करने वाले दया के सागर हैं तथा निर्गुण होकर भी भक्तों के प्रेमवश ही जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण किया; जो ऐसे भक्त-वत्सल हैं कि जिनके दर्शन मात्र से ही भवसागर के भय और समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं; ऐसे श्री साईनाथ महाराज को हम क्यों न नमन करें ? भक्तों को आत्मदर्शन कराना ही सन्तों का प्रधान कार्य है। श्री साई, जो सन्त शिरोमणि हैं, उनका तो मुख्य ध्येय ही यही है। जो उनके श्री-चरणों की शरण में जाते हैं, उनके समस्त पाप नष्ट होकर निश्चित ही दिन-प्रतिदिन उनकी प्रगति होती है। उनके श्री-चरणों का स्मरण कर पवित्र स्थानों से भक्तगण शिरडी आते और उनके समीप बैठकर श्लोक पढ़कर गायत्री-मंत्र का जप किया करते थे। परन्तु जो निर्बल तथा सर्व प्रकार से दीन-हीन हैं और जो यह भी नहीं जानते कि भक्ति किसे कहते हैं, उनका तो केवल इतना ही विश्वास है कि अन्य सब लोग उन्हें असहाय छोड़कर उपेक्षा भले ही कर दें, परन्तु अनाथों के नाथ और प्रभु श्री साई मेरा कभी परित्याग न करेंगे। जिन पर वे कृपा करें, उन्हें प्रचण्ड शक्ति, नित्यानित्य में विवेक तथा ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है।

वे अपने भक्तों की इच्छाएँ पूर्णतः जानकर उन्हें पूर्ण किया करते हैं, इसीलिए भक्तों को मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाया करती है और वे सदा कृतज्ञ बने रहते हैं। हम उन्हें साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर हमें समस्त कष्टों से बचा लें। जो विपत्ति-ग्रस्त प्राणी इस प्रकार श्री साई से प्रार्थना करता है, उनकी कृपा से उसे पूर्ण शान्ति तथा सुख-समृद्धि प्राप्त होती है।

श्री हेमाङ्गंत कहते हैं कि “ हे मेरे प्यारे साई! तुम तो दया के सागर हो। यह तो तुम्हारी ही दया का फल है, जो आज यह, ‘साई सच्चरित्र’ भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है, अन्यथा मुझमें इतनी योग्यता कहाँ थी, जो ऐसा कठिन कार्य करने का दुस्साहस भी कर सकता ? जब पूर्ण उत्तरदायित्व साई ने अपने ऊपर ही ले लिया तो हेमाङ्गंत को तिलमात्र भी भार प्रतीत न हुआ और न ही इसकी उन्हें चिन्ता ही हुई। श्रीसाई ने इस ग्रन्थ के रूप में उनकी सेवा स्वीकार कर ली। यह केवल उनके पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों के कारण ही सम्भव हुआ, जिसके लिए वे अपने को भाग्यशाली और कृतार्थ समझते हैं।

नीचे लिखी कथा कपोलकल्पित नहीं, वरन् विशुद्ध अमृततुल्य है। इसे जो हृदयंगम करेगा, उसे श्री साई की महानता और सर्वव्यापकता विदित हो जाएगी, परन्तु जो वादविवाद और आलोचना करना चाहते हैं, उन्हें इन इथाओं की ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं है। यहाँ तर्क की नहीं, वरन् प्रगाढ़ प्रेम और भक्ति की अत्यन्त अपेक्षा है। विद्वान् भक्त तथा श्रद्धालु जन अथवा जो अपने को साई-पद-सेवक समझते हैं, उन्हें ही ये कथाएँ रुचिकर तथा शिक्षाप्रद प्रतीत होंगी; अन्य लोगों के लिए तो वे निरी कपोल-कल्पनाएँ ही हैं। श्रीसाई के अंतरंग भक्तों को श्रीसाईलीलाएँ कल्पतरु के सदृश हैं। श्रीसाई-लीलारूपी अमृतपान करने से अज्ञानी जीवों को ज्ञान गृहस्थाश्रमियों को सन्तोष तथा मुमुक्षुओं को एक उच्च साधन प्राप्त होता है। अब हम इस अध्याय की मूल कथा पर आते हैं।

काका जी वैद्य

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

नासिक जिले के वणी ग्राम में काका जी वैद्य नाम के एक व्यक्ति रहते थे। वे श्रीसप्तशृंगी देवी के मुख्य पुजारी थे। एक बार वे विपत्तियों में कुछ इस प्रकार ग्रसित हुए कि उनके चित्त की शांति भंग हो गई और वे बिलकुल निराश हो उठे। एक दिन अति व्यथित होकर देवी के मन्दिर में जाकर अन्तःकरण से वे प्रार्थना करने लगे कि " हे देवि! हे दयामयी! मुझे कष्टों से शीघ्र मुक्त करो।" उनकी प्रार्थना से देवी प्रसन्न हो गई और उसी रात्रि को उन्हें स्वप्न में बोली कि "तू बाबा के पास जा, वहाँ तेरा मन शान्त और स्थिर हो जायेगा।" बाबा का परिचय जानने को काका जी बड़े उत्सुक थे, परन्तु देवी से प्रश्न करने के पूर्व ही उनकी निद्रा भंग हो गई। वे विचारने लगे कि ऐसे ये कौन से बाबा हैं, जिनकी ओर देवी ने मुझे संकेत किया है। कुछ देर विचार करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सम्भव है कि वे त्र्यंबकेश्वर बाबा (शिव) ही हों। इसलिए वे पवित्र तीर्थ त्र्यंबक (नासिक) को गए और वहाँ रहकर दस दिन व्यतीत किए। वे प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, रुद्र मंत्र का जप कर, साथ ही साथ अभिषेक व अन्य धार्मिक कृत्य भी करने लगे। परन्तु उनका मन पूर्ववत् ही अशान्त बना रहा। तब फिर अपने घर लौटकर वे अति करुण स्वर में देवी की स्तुति करने लगे। उसी रात्रि में देवी ने उन्हें पुनः स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि "तू व्यर्थ ही त्र्यम्बकेश्वर क्यों गया? बाबा से तो मेरा अभिप्राय था शिरडी के श्रीसाई समर्थ से।" अब काका जी के समक्ष मुख्य प्रश्न यह उपस्थित हो गया कि वे कैसे और कब शिरडी जाकर बाबा के श्री दर्शन का लाभ उठाएँ। यथार्थ में यदि कोई व्यक्ति, किसी सन्त के दर्शन को आतुर हो तो केवल सन्त ही नहीं, भगवान् भी उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं। वस्तुतः यदि पूछा जाए तो सन्त और अनन्त एक ही हैं और उनमें कोई भिन्नता नहीं।

यदि कोई कहे कि मैं स्वतः ही अमुक सन्त के दर्शन को जाऊँगा तो इसे केवल दम्भ के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? सन्त की इच्छा के विरुद्ध उनके समीप कौन जाकर दर्शन ले सकता है? उनकी सत्ता के बिना वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जितनी तीव्र उत्कण्ठा संत दर्शन की होगी, तदनुसार ही उसकी भक्ति और विश्वास में वृद्धि होती जाएगी और उतनी ही शीघ्रता से उनकी मनोकामना भी सफलतापूर्वक पूर्ण होगी। जो निमंत्रण देता है, वह आदर आतिथ्य का प्रबन्ध भी करता है। काका जी के सम्बन्ध में सचमुच यही हुआ।

शामा की मान्यता

जब काकाजी शिरडी यात्रा करने का विचार कर रहे थे, उसी समय उनके यहाँ एक अतिथि आया (जो कि शामा के अतिरिक्त और कोई न था)। शामा बाबा के अन्तरंग भक्तों में से थे। वे ठीक इसी समय वणी में क्यों और कैसे आ पहुँचे, अब हम इस पर दृष्टि डालें। बाल्यावस्था में वे एक बार बहुत बीमार पड़ गए थे। उनकी माता ने अपनी कुलदेवी सप्तशृंगी से प्रार्थना की कि यदि मेरा पुत्र नीरोग हो जाए तो मैं उसे तुम्हारे चरणों पर लाकर डालूँगी। कुछ वर्षों के पश्चात् ही उनकी माता के स्तन में दाद हो गई। तब उन्होंने पुनः देवी से प्रार्थना की कि यदि मैं रोगमुक्त हो जाऊँ तो मैं तुम्हें चाँदी के दो स्तन चढाऊँगी। पर ये दोनों वचन अधूरे ही रहे। परन्तु जब वे मृत्युशैया पर पड़ी थीं तो उन्होंने अपने पुत्र शामा को समीप बुलाकर उन दोनों वचनों की स्मृति दिलाई तथा उन्हें पूर्ण करने का आश्वासन पाकर प्राण त्याग दिए। कुछ दिनों के पश्चात् वे अपनी यह प्रतिज्ञा भूल गए और इसे भूले पूरे तीस वर्ष व्यतीत हो गए। तभी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी शिरडी आए और वहाँ लगभग एक मास ठहरे। श्रीमान् बूटीसाहेब और अन्य लोगों को बतलाए उनके सभी भविष्य प्रायः सही निकले, जिनसे सब को पूर्ण सन्तोष था। शामा के लघुभ्राता बापाजी ने भी उनसे कुछ प्रश्न पूछे। तब ज्योतिषी ने उन्हें बताया कि तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता ने अपनी माता को मृत्युशैया पर जो वचन दिए थे, उनके अब तक पूर्ण न किए जाने के कारण देवी असन्तुष्ट होकर उन्हें कष्ट पहुँचा रही हैं। ज्योतिषी की बात सुनकर शामा को उन अपूर्ण वचनों की स्मृति हो आई। अब और विलम्ब करना खतरनाक समझकर उन्होंने सुनार को बुलाकर चाँदी के दो स्तन शीघ्र तैयार कराए और उन्हें मस्जिद में ले जाकर बाबा के समक्ष रख दिया तथा प्रणाम कर उन्हें स्वीकार कर वचनमुक्त करने की प्रार्थना की। शामा ने कहा कि मेरे लिए तो सप्तशृंगी देवी आप ही हैं, परन्तु बाबा ने साग्रह कहा कि तुम इन्हें स्वयं ले जाकर देवी के चरणों में अर्पित करो। बाबा की आज्ञा व उदी लेकर उन्होंने वणी को प्रस्थान कर दिया। पुजारी का घर पूछते-पूछते वे काका जी के पास जा पहुँचे। काका जी इस समय बाबा के दर्शनों को बड़े उत्सुक थे और ठीक ऐसे ही मौके पर शामा भी वहाँ पहुँच गए। वह संयोग भी कैसा विचित्र था? काकाजी ने आगन्तुक से उनका परिचय प्राप्त कर पूछा कि आप कहाँ से पधार रहे हैं? जब उन्होंने सुना कि वे शिरडी से ही आ रहे हैं तो वे एकदम प्रेमोन्मत्त हो शामा से लिपट गए और फिर दोनों का श्री साईलीलाओं पर वार्त्तालाप आरम्भ हो गया। अपने वचन संबंधी कृत्यों को पूर्ण कर वे काकाजी के साथ शिरडी लौट आए। काकाजी मस्जिद पहुँच कर बाबा के श्रीचरणों से जा लिपटे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगी और उनका चित्त स्थिर हो गया। देवी के दृष्टांतानुसार जैसे ही उन्होंने बाबा के

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

दर्शन किए, उनके मन की अशांति तुरन्त नष्ट हो गई और वे परम शीतलता का अनुभव करने लगे। वे विचार करने लगे कि कैसी अद्भुत शक्ति है कि बिना कोई सम्भाषण या पश्नोत्तर किए अथवा आशीष पाए, दर्शन मात्र से ही अपार प्रसन्नता हो रही है! सचमुच में दर्शन का महत्त्व तो इसे ही कहते हैं। उनके तृषित नेत्र साई-चरणों पर अटक गए और वे अपनी जिह्वा से एक शब्द भी न बोल सके। बाबा की अनन्य लीलाएँ सुनकर उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे पूर्णतः बाबा के शरणागत हो गए। सब चिन्ताओं और कष्टों को भूलकर वे परम आनन्दित हुए। उन्होंने वहाँ सुखपूर्वक बारह दिन व्यतीत किए और फिर बाबा की आज्ञा, आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर अपने घर लौट गए।

खुशालचन्द (राहातानिवासी)

ऐसा कहते हैं कि प्रातः बेला में जो स्वप्न आता है, वह बहुधा जागृतावस्था में सत्य ही निकलता है। ठीक है, ऐसा ही होता होगा। परन्तु बाबा के सम्बन्ध में समय का ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऐसा ही एक उदाहरण प्रस्तुत है: - बाबा ने एक दिन तृतीय प्रहर काकासाहेब को ताँगा लेकर राहाता से खुशालचन्द को लाने के लिए भेजा, क्योंकि खुशालचन्द से उनकी कई दिनों से भेंट न हुई थी। राहाता पहुँच कर काकासाहेब ने यह सन्देश उन्हें सुना दिया। यह सन्देश सुनकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि दोपहर को भोजन के उपरान्त थोड़ी देर को मुझे झपकी सी आ गई थी, तभी बाबा स्वप्न में आये और मुझे शीघ्र ही शिरड़ी आने को कहा। परन्तु घोड़ का उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण मैंने अपने पुत्र को यह सूचना देने के लिए ही उनके पास भेजा था। जब वह गाँव की सीमा तक ही पहुँचा था, तभी आप सामने से ताँगे में आते दिखे।

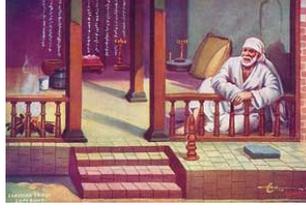
वे दोनों उस ताँगे में बैठकर शिरड़ी पहुँचे तथा बाबा से भेंटकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा की यह लीला देख खुशालचन्द गद्गद् हो गए।

बम्बई के रामलाल पंजाबी

बम्बई के एक पंजाबी ब्राह्मण श्री. रामलाल को बाबा ने स्वप्न में एक महन्त के वेश में दर्शन देकर शिरड़ी आने को कहा। उन्हें नाम ग्राम का कुछ भी पता चल न रहा था। उनको श्री दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा तो थी, परन्तु पता-ठिकाना ज्ञात न होने के कारण वे बड़े असमंजस में पड़े हुए थे। जो आमंत्रण देता है, वही आने का प्रबन्ध भी करता है और अन्त में हुआ भी वैसा ही। उसी दिन सन्ध्या समय जब वे सड़क पर टहल रहे थे तो उन्होंने एक दूकान पर बाबा का चित्र टँगा देखा। स्वप्न में उन्हें जिस आकृति वाले महन्त के दर्शन हुए थे, वे इस चित्र के ही सदृश थे। पूछताछ करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह चित्र शिरड़ी के श्री साई समर्थ का है और तब उन्होंने शीघ्र ही शिरड़ी को प्रस्थान कर दिया तथा जीवनपर्यन्त शिरड़ी में ही निवास किया।

इस प्रकार बाबा ने अपने भक्तों को अपने दर्शन के लिए शिरड़ी में बुलाया और उनकी लौकिक तथा पारलौकिक समस्त इच्छाएँ पूर्ण की।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



मुक्ति-दान

१) संन्यासी विजयानंद (२) बालाराम मानकर (३) नूलकर (४) मेघा और (५) बाबा के सम्मुख वाघ की मुक्ति

इस अध्याय में हेमाङ्गंत बाबा के सामने कुछ भक्तों की मृत्यु तथा वाघ के प्राण-त्याग की कथा का वर्णन करते हैं।

प्रारम्भ

मृत्यु के समय जो अंतिम इच्छा या भावना होती है, वही भवितव्यता का निर्माण करती है। श्रीकृष्ण ने गीता (अध्याय ८) में कहा है कि जो अपने जीवन के अंतिम क्षण में मुझे स्मरण करता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है तथा उस समय वह जो कुछ भी दृश्य देखता है, उसी को अन्त में पाता है। यह कोई भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकता कि उस क्षण हम केवल उत्तम विचार ही कर सकेंगे। जहाँ तक अनुभव में आया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अनेक कारणों से भयभीत होने की संभावना अधिक होती है। इसके अनेक कारण हैं। इसलिए मन को इच्छानुसार किसी उत्तम विचार के चिंतन में ही लगाने के लिए नित्याभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण सभी संतों ने हरिस्मरण और जप को ही श्रेष्ठ बताया है, ताकि मृत्यु के समय हम किसी घरेलू उलझन में न पड़ जाए। अतः ऐसे अवसर पर भक्तगण पूर्णतः सन्तों के शरणागत हो जाते हैं, ताकि संत, जो कि सर्वज्ञ हैं, उचित पथप्रदर्शन कर हमारी यथेष्ट सहायता करें। इसी प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

विजयानन्द

एक मद्रासी संन्यासी विजयानंद मानसरोवर की यात्रा करने निकले। मार्ग में वे बाबा की कीर्ति सुनकर शिरडी आए, जहाँ उनकी भेंट हरिद्वार के सोमदेव जी स्वामी से हुई और इनसे उन्होंने मानसरोवर की यात्रा के सम्बन्ध में पूछताछ की। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि गंगोत्री से मानसरोवर ५०० मील उत्तर की ओर है तथा मार्ग में जो कष्ट होते हैं, उनका भी उल्लेख किया जैसे कि बर्फ की अधिकता, ५० कोस तक भाषा में भिन्नता तथा भूटानवासियों के संशयी स्वभाव, जो यात्रियों को अधिक कष्ट पहुँचाया करते हैं। यह सब सुनकर संन्यासी का चित्त उदास हो गया और उसने यात्रा करने का विचार त्यागकर मस्जिद में जाकर बाबा के श्री चरणों का स्पर्श किया। बाबा क्रोधित होकर कहने लगे-“ इस निकम्मे संन्यासी को निकालो यहाँ से। इसका संग करना व्यर्थ है।” संन्यासी बाबा के स्वभाव से पूर्ण अपरिचित था। उसे बड़े निराशा हुई, परन्तु वहाँ जो कुछ भी गतिविधियाँ चल रही थीं, उन्हें वह बैठे-बैठे ही देखता रहा। प्रातःकाल का दरबार लोगों से ठसाठस भरा हुआ था और बाबा को यथाविधि अभिषेक कराया जा रहा था। कोई पाद-प्रक्षालन कर रहा था तो कोई चरणों को छूकर तथा कोई तीर्थस्पर्श से अपने नेत्र सफल कर रहा था। कुछ लोग उन्हें चन्दन का लेप लगा रहे थे तो कोई उनके शरीर में इत्र ही मल रहा था। जातिपाँति का भेदभाव भुलाकर सब भक्त यह कार्य कर रहे थे। यद्यपि बाबा उसपर क्रोधित हो गए थे तो भी संन्यासी के हृदय में उनके प्रति बड़ा प्रेम उत्पन्न हो गया था। उसे यह स्थान छोड़ने की इच्छा ही नह होती थी। दो दिन के पश्चात् ही मद्रास से पत्र आया कि उसकी माँ की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है; जिसे पढ़कर उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपनी माँ के दर्शन की इच्छा करने लगा; परन्तु बाबा की आज्ञा के बिना वह शिरडी से जा ही कैसे सकता था? इसलिए वह हाथ में पत्र लेकर उनके समीप गया और उनसे घर लौटने की अनुमति माँगी। त्रिकालदर्शी बाबा को तो सबका भविष्य विदित ही था। उन्होंने कहा कि “जब तुम्हें अपनी माँ से इतना मोह था तो फिर संन्यास धारण करने का कष्ट ही क्यों उठाया? ममता या मोह भगुवा वस्त्रधारियों को क्या शोभा देता है? जाओ, चुपचाप अपने स्थान पर रहकर कुछ दिन शांतिपूर्वक बिताओ। परन्तु सावधान ! वाड़े में चोर अधिक हैं। इसलिए द्वार बंद कर सावधानी से रहना, नहीं तो चोर सब कुछ चुराकर ले जाएँगे। ‘लक्ष्मी’ यानी संपत्ति चंचला है और यह शरीर भी नाशवान् है, ऐसा ही समझ कर इहलौकिक व पारलौकिक समस्त पदार्थों का मोह त्याग कर अपना कर्तव्य करो। जो इस प्रकार का आचरण कर श्रीहरि के शरणागत हो जाता है, उसका सब कष्टों से शीघ्र

छुटकारा हो उसे परमानंद की प्राप्ति हो जाती है। जो परमात्मा का ध्यान व चिंतन प्रेम और भक्तिपूर्वक करता है, परमात्मा भी उसकी अविलम्ब सहायता करते हैं। पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारों के फलस्वरूप ही तुम यहाँ पहुँचे हो और अब जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और अपने जीवन के अंतिम ध्येय पर विचार करो। इच्छारहित होकर कल से भागवत का तीन सप्ताह तक पठन-पाठन प्रारम्भ करो। तब भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारे सब दुःख दूर कर देंगे। माया का आवरण दूर होकर तुम्हें शांति प्राप्त होगी।" बाबा ने उसका अंतकाल समीप देखकर उसे यह उपचार बता दिया और साथ ही 'रामविजय' पढ़ने की भी आज्ञा दी, जिससे यमराज अधिक प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन स्नानादि तथा अन्य शुद्धि के कृत्य कर उसने लेंडी बाग के एकांत स्थान में बैठकर भागवत का पाठ प्रारम्भ कर दिया। दूसरी बार का पठन समाप्त होने पर वह बहुत थक गया और वाड़े में आकर दो दिन ठहरा। तीसरे दिन बड़े बाबा की गोद में उसके प्राण पखेरु उड़ गये। बाबा ने दर्शनों के निमित्त एक दिन के लिए उसका शरीर सँभाल कर रखने के लिए कहा। तत्पश्चात् पुलिस आई और यथोचित जाँच-पड़ताल करने के उपरांत मृत शरीर को उठाने की आज्ञा दे दी। धार्मिक कृत्यों के साथ उसकी उपयुक्त स्थान पर समाधि बना दी गई। बाबा ने इस प्रकार संन्यासी की सहायता कर उसे सद्गति प्रदान की।

बालाराम मानकर

बालाराम मानकर नामक एक गृहस्थ बाबा के परम भक्त थे। जब उनकी पत्नी का देहांत हो गया तो वे बड़े निराश हो गए और सब घरबार अपने लड़के को सौंप वे शिरडी में आकर बाबा के पास रहने लगे। उनकी भक्ति देखकर बाबा उनके जीवन की गति परिवर्तित कर देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने उन्हें बारह रुपये देकर मच्छिंद्रगढ़ (जिला सातारा) में जाकर रहने को कहा। मानकर की इच्छा उनका सान्निध्य छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की न थी, परन्तु बाबा ने उन्हें समझाया कि " तुम्हारे कल्याणार्थ ही मैं यह उत्तम उपाय तुम्हें बतला रहा हूँ। इसलिए वहाँ जाकर दिन में तीन बार प्रभु का ध्यान करो।" बाबा के शब्दों में विश्वास कर वह मच्छिंद्रगढ़ चला गया और वहाँ के मनोहर दृश्यों, शीतल जल तथा उत्तम पवन और समीपस्थ दृश्यों को देखकर उसके चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा द्वारा बतलाई विधि से उसने प्रभु का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ दिनों के पश्चात् ही उसे दर्शन प्राप्त हो गया। बहुधा भक्तों को समाधि या तुरीयावस्था में ही दर्शन होते हैं, परन्तु मानकर जब तुरीयावस्थासे प्राकृतावस्था में आया, तभी उसे दर्शन हुए। दर्शन होने के पश्चात् मानकर ने बाबा से अपने को वहाँ भेजने का कारण पूछा। बाबा ने कहा कि " शिरडी में तुम्हारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे थे। इसी कारण मैंने तुम्हें वहाँ भेजा कि तुम्हारे चंचल मन को शांति प्राप्त हो। तुम्हारी धारणा थी कि मैं शिरडी में ही विद्यमान हूँ और साढ़ेतीन हाथ के इस पंचतत्व के पुतले के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ, परन्तु अब तुम मुझे देखकर यह धारणा बना लो कि जो तुम्हारे सामने शिरडी में उपस्थित है और जिसके तुमने दर्शन किए, वह दोनों अभिन्न हैं या नहीं। मानकर वह स्थान छोड़कर अपने निवास स्थान बाँद्रा को रवाना हो गया। वह पूना से दादर रेल द्वारा जाना चाहता था। परन्तु जब वह टिकट-घर पर पहुँचा तो वहाँ अधिक भीड़ के कारण वह टिकट खरीद न सका। इतने में ही एक देहाती, जिसके कंधे पर एक कम्बल पड़ा था तथा शरीर पर केवल एक लंगोटी के अतिरिक्त कुछ न था, वहाँ आया और मानकर से पूछने लगा कि " आप कहाँ जा रहे हैं? मानकर ने उत्तर दिया कि मैं दादर जा रहा हूँ। तब वह कहने लगा कि " मेरा यह दादर का टिकट आप ले लीजिये, क्योंकि मुझे यहाँ एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मेरा जाना आज न हो सकेगा।" मानकर को टिकट पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपनी जेब से वे पैसे निकालने लगे। इतने में ही टिकट देने वाला आदमी भीड़ में कहीं अदृश्य हो गया। मानकर ने भीड़ में पर्याप्त छानबीन की, परन्तु सब व्यर्थ ही हुआ। जब तक गाड़ी नहीं छूटी, मानकर उसके लौटने की ही प्रतीक्षा करता रहा, परंतु वह अन्त तक न लौटा। इस प्रकार मानकर को इस विचित्र रूप में द्वितीय बार दर्शन हुए। कुछ दिन अपने घर ठहरकर मानकर फिर शिरडी लौट आया और श्रीचरणों में ही अपने दिन व्यतीत करने लगा। अब वह सदैव बाबा के वचनों और आज्ञा का पालन करने लगा। अन्ततः उस भाग्यशाली ने बाबा के समक्ष ही उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने प्राण त्यागे।

तात्यासाहेब नूलकर

हेमाडपंत ने तात्यासाहेब नूलकर के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं लिखा है। केवल इतना ही लिखा है कि उनका देहांत शिरडी में हुआ था। 'साईलीला' पत्रिका में संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था, जो नीचे उद्धृत है-" सन् १९०९ में जिस समय तात्यासाहेब पंढरपुर में उपन्यायाधीश थे, उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर भी वहाँ के

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

मामलतदार थे। ये दोनों आपस में अधिकांश मिला करते और प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया करते थे। तात्यासाहेब सन्तों में अविश्वास करते थे, जबकि नानासाहेब की सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धा थी। नानासाहेब ने उन्हें साईबाबा की लीलाएँ सुनाई और एक बार शिरड़ी जाकर बाबा का दर्शन-लाभ उठाने का आग्रह भी किया। वे दो शर्तों पर चलने को तैयार हुए:- (१) उन्हें ब्राह्मण रसोईया मिलना चाहिए; (२) भेंट के लिए नागपुर से उत्तम संतरे होने चाहिए। शीघ्र ही ये दोनों शर्तें पूर्ण हो गईं। नानासाहेब के पास एक ब्राह्मण नौकरी के लिए आया, जिसे उन्होंने तात्यासाहेब के पास भिजवा दिया और एक संतरे का पार्सल भी आया, जिसपर भेजने वाले का कोई पता न लिखा था। उनकी दोनों शर्तें पूरी हो गई थी। इसलिए अब उन्हें शिरड़ी जाना ही पड़ा। पहले तो बाबा उनपर क्रोधित हुए, परन्तु जब धीरे-धीरे तात्यासाहेब को विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही ईश्वरावतार हैं तो वे बाबा से प्रभावित हो गए और फिर जीवनपर्यन्त वहीं रहे। जब उनका अन्तकाल समीप आया तो उन्हें पवित्र धार्मिक पाठ सुनाया गया और अंतिम क्षणों में उन्हें बाबा का पदतीर्थ भी दिया गया। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर बाबा बोल उठे - “ अरे ! तात्या तो आगे चला गया। अब उसका पुनः जन्म नहीं होगा।”

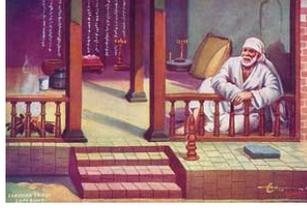
मेघा

२८ वें अध्याय में मेघा की कथा का वर्णन किया जा चुका है। जब मेघा का देहांत हुआ तो सब ग्रामवासी उनकी अर्थी के साथ चले और बाबा भी उनके साथ सम्मिलित हुए तथा उन्होंने उसके मृत शरीर पर फूल बरसाए। दाह-संस्कार होने के पश्चात् बाबा की आँखों से आँसू गिरने लगे। एक साधारण मनुष्य के समान उनका भी हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। उनके शरीर को फूलों से ढँककर एक निकट सम्बन्धी के सदृश रोते-पीटते वे मस्जिद को लौटे। सद्गति प्रदान करते हुए अनेक संत देखने में आए हैं, परन्तु बाबा की महानता अद्वितीय ही है। यहाँ तक कि वाघ सरीखा एक हिंसक पशु भी अपनी रक्षा के लिए बाबा की शरण में आया, जिसका वृत्तान्त निम्नलिखित हैं:-

वाघ की मुक्ति

बाबा के समाधिस्थ होने के सात दिन पूर्व शिरड़ी में एक विचित्र घटना घटी। मस्जिद के सामने एक बैलगाड़ी आकर रुकी, जिसपर एक वाघ जंजीरों से बँधा हुआ था। उसका भयानक मुख गाड़ी के पीछे की ओर था। वह किसी अज्ञात पीड़ा या दर्द से दुःखी था। उसके पालक तीन दरवेश थे, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर उसका नित्य प्रदर्शन करते और इस प्रकार यथेष्ट द्रव्य संचय करते थे और यही उनके जीविकोपार्जन का एक साधन था। उन्होंने उसकी चिकित्सा के सभी प्रयत्न किए, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हुआ। कहीं से बाबा की कीर्ति भी उनके कानों में पड़ गई और वे वाघ को लेकर साई दरबार में आये। हाथों से जंजीरें पकड़कर उन्होंने बाघ को मस्जिद के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। वह स्वभावतः ही भयानक था, पर रुग्ण होने के कारण वह बेचैन था। लोग भय और आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगे। दरवेश अन्दर आए और बाबा को सब हाल बताकर उनकी आज्ञा लेकर वे वाघ को उनके सामने लाए। जैसे ही वह सीढ़ियों के समीप पहुँचा, वैसे ही बाबा के तेजःपुंज स्वरूप का दर्शन कर एक बार पीछे हट गया और अपनी गर्दन नीचे झुका दी। जब दोनों की दृष्टि आपस में एक हुई तो वाघ सीढ़ी पर चढ़ गया और प्रेमपूर्ण दृष्टि से बाबा की ओर निहारने लगा। उसने अपनी पूँछ हिलाकर तीन बार जमीन पर पटकी और फिर तत्क्षण ही अपने प्राण त्याग दिए। उसे मृत देखकर दरवेशी बड़े निराश और दुःखी हुए। तत्पश्चात् जब उन्हें बोध हुआ तो उन्होंने सोचा कि प्राणी रोगग्रस्त था ही और उसकी मृत्यु भी सन्निकट ही थी। चलो, उसके लिए अच्छा ही हुआ कि बाबा जैसे महान् संत के चरणों में उसे सद्गति प्राप्त हो गई। वह दरवेशियों का ऋणी था और जब वह ऋण चुक गया तो वह स्वतंत्र हो गया और जीवन के अन्त में उसे साई चरणों में सद्गति प्राप्त हुई। **जब कोई प्राणी संतों के चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्राण त्याग दे तो उसकी मुक्ति हो जाती है।** पूर्व जन्मों के शुभ संस्कारों के अभाव में ऐसा सुखद अंत प्राप्त होना कैसे संभव है?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमः
॥ शुभं भवतु ॥



गुरु और ईश्वर की खोज-उपवास अमान्य, बाबा के सरकार इस अध्याय में हेमाङ्गपंत ने दो विषयों का वर्णन किया है।

- (१) किस प्रकार अपने गुरु से बाबा की भेंट हुई और उनके द्वारा ईश्वरदर्शन की प्राप्ति कैसे हुई?
 (२) श्रीमती गोखले को जो तीन दिन से उपवास कर रही थीं, उसे पूरनपोली के भोजन कैसे कराया।

प्रस्तावना

श्री. हेमाङ्गपंत वटवृक्ष का उदाहरण देकर इस गोचर संसार के स्वरूप का वर्णन करते हैं। गीता के अनुसार वटवृक्ष की जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे को चारों ओर फैली हुई हैं। “ ऊर्ध्वमूलमधःशाखम् ” (गीता पंद्रहवाँ अध्याय, श्लोक १) इस वृक्ष के गुण, पोषक और अंकुर, इंद्रियों के भोग्य पदार्थ हैं। जड़ें जिनका कारणीभूत कर्म हैं, वे सृष्टि के मानवों की ओर फैली हुई हैं। इस वृक्ष की रचना बड़ी ही विचित्र है। न तो इसके आकार, उद्गम और अन्त का ही भान होता है और न ही इसके आश्रय का। इस कठोर जड़ वाले संसार रूपी वृक्ष को, वैराग्य के अमोघ शस्त्र द्वारा नष्ट करने के हेतु किसी बाह्य मार्ग का अवलंबन करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि इस असार-संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो। इस पथ पर अग्रसर होने के लिए किसी योग्य दिग्दर्शक (गुरु) की नितांत आवश्यकता है। चाहे कोई कितना ही विद्वान् अथवा वेद और वेदांत में पारंगत क्यों न हो, वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि उसकी सहायतार्थ कोई योग्य पथप्रदर्शक न मिल जाए, जिसके पदचिह्नों का अनुकरण करने से ही मार्ग में मिलने वाले गह्वरों, खंदकों तथा हिंसक प्राणियों के भय से मुक्त हुआ जा सकता है और इस विधि से ही संसार-यात्रा सुगम तथा कुशलतापूर्वक पूर्ण हो सकती है। इस विषय में बाबा का अनुभव, जो उन्होंने स्वयं बतलाया, वास्तव में आश्चर्यजनक है। यदि हम उसका ध्यानपूर्वक अनुकरण करेंगे तो हमें निश्चय ही श्रद्धा, भक्ति और मुक्ति प्राप्त होगी।

अन्वेषण

“एक समय हम चार सहयोगी मिलकर धार्मिक एवं अन्य पुस्तकों का अध्ययन कर रहे थे। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर हम लोग ब्रह्म के मूलस्वरूप पर विचार करने लगे। एक ने कहा कि हमें स्वयं की ही जागृति करनी चाहिए। दूसरों पर निर्भर रहना हमें उचित नहीं है। इस पर दूसरे ने कहा कि जिसने मनोनिग्रह कर लिया है, वही धन्य है; हमें अपने संकीर्ण विचारों व भावनाओं से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि इस संसार में हमारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तीसरे ने कहा कि यह संसार सदैव परिवर्तनशील है। केवल निराकार ही शाश्वत है। अतः हमें सत्य और असत्य में विवेक करना चाहिए। तब चौथे (स्वयं बाबा) ने कहा कि केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई लाभ नहीं। हमें तो अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए। दृढ़ विश्वास और पूर्ण निष्ठापूर्वक हमें अपना तन, मन, धन और पंचप्राणादि सर्वव्यापक गुरुदेव को अर्पण कर देना चाहिए। गुरु भगवान् है; सबका पालनहार है।

इस प्रकार वादविवाद के उपरांत हम चारों सहयोगी वन में, ईश्वर की खोज को निकले। हम चार विद्वान् बिना किसी से सहायता लिए केवल अपनी स्वतंत्र बुद्धि से ही ईश्वर की खोज करना चाहते थे। मार्ग में हमें एक बंजारा मिला, जिसने हम लोगों से पूछा कि “ हे सज्जनो! इतनी धूप में आप लोग किस ओर प्रस्थान कर रहे हैं?” प्रत्युत्तर में हम लोगों ने कहा कि “ वन की ओर!” उसने पुनः पूछा, “ कृपया यह तो बतलाइए कि वन की ओर जाने का क्या उद्देश्य है?” हम लोगों ने उसे टालमटोल वाला उत्तर दे दिया। हम लोगों को निरुद्देश्य सघन भयानक जंगलों में भटकते देखकर उसे दया आ गई। तब उसने अति विनम्र होकर हम लोगों से निवेदन किया। “ आप अपनी गुप्त खोज का हेतु चाहे मुझे न बतलाएँ, किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि मध्याह्न के प्रचण्ड मार्तण्ड की तीव्र किरणों की उष्णता से आप लोग अधिक कष्ट पा रहे हैं। कृपया यहाँ पर कुछ क्षण विश्राम कर जल-पान कर

लीजिए। आप लोगों को सुहृदय तथा नम्र होना चाहिए। बिना पथ-प्रदर्शक के इस अपरिचित भयानक वन में भटकते फिरने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप लोगों की तीव्र इच्छा ऐसी ही है तो कृपया किसी योग्य पथ-प्रदर्शक को साथ ले लें। " उसकी विनम्र प्रार्थना पर ध्यान न देकर हम लोग आगे बढ़े। हम लोगों ने विचार किया कि हम स्वयं ही अपना लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हैं, तब फिर हमें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। जंगल बहुत विशाल और पथहीन था। वृक्ष इतने ऊँचे और घने थे कि सूर्य की किरणों का भी वहाँ पहुँच सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ कि हम मार्ग भूल गए और बहुत समय तक यहाँ-वहाँ भटकते रहे। भाग्यवश हम लोग उसी स्थान पर पुनःजा पहुँचे, जहाँ से पहले प्रस्थान किया था। तब वही बंजारा हमें पुनः मिला और कहने लगा कि " अपने चातुर्य पर विश्वास कर आप लोगों को पथ की विस्मृति हो गई है। प्रत्येक कार्य में चाहे वह बड़ा हो या छोटा, मार्ग-दर्शक आवश्यक है। ईश्वर-प्रेरणा के अभाव में सत्पुरुषों से भेंट होना संभव नहीं। **भूखे रहकर कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए यदि कोई आग्रहपूर्वक भोजन के लिए आमंत्रित करे तो उसे अस्वीकार न करो। भोजन तो भगवान का प्रसाद है, उसे ठुकराना उचित नहीं। यदि कोई भोजन के लिए आग्रह करे तो उसे अपनी सफलता का प्रतीक जानो।**" इतना कहकर उसने भोजन करने का पुनः अनुरोध किया। फिर भी हम लोगों ने उसके अनुरोध की उपेक्षा कर भोजन करना अस्वीकार कर दिया। उसके सरल और गूढ़ उपदेशों की परीक्षा किए बिना ही मेरे तीन साथियों ने आगे को प्रस्थान कर दिया। अब पाठक ही अनुमान करें कि वे लोग कितने अहंकारी थे। मैं क्षुधा और तृषा से अत्यंत व्याकुल था ही; बंजारे के अपूर्व प्रेम ने भी मुझे आकर्षित कर लिया। यद्यपि हम लोग अपने को अत्यंत विद्वान् समझते थे, परन्तु दया एवं कृपा किसे कहते हैं, उससे सर्वथा अनभिज्ञ ही थे। बंजारा था तो एक शुद्र, अनपढ़ और गँवार; परन्तु उसके हृदय में महान् दया थी, जिसने बारबार भोजन के लिए आग्रह किया। **जो दूसरों पर निःस्वार्थ प्रेम करते हैं, सचमुच में वे ही महान् हैं।** मैंने सोचा कि इसका आग्रह स्वीकार कर लेना ज्ञान-प्राप्ति के हेतु शुभ आवाहन है और मैंने इसी कारण उसके दिये हुए रुखे-सूखे भोजन को आदर व प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

क्षुधा-निवारण होते ही क्या देखता हूँ कि गुरुदेव तुरंत ही समक्ष प्रगट हो गए और प्रश्न करने लगे कि "यह सब क्या हो रहा था?" घटित घटना मैंने तुरंत ही उन्हें सुना दी। उन्होंने आश्वासन दिया कि " **मैं तुम्हारे हृदय की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा, परंतु जिसका विश्वास मुझ पर होगा, सफलता केवल उसी को प्राप्त होगी।** मेरे तीनों सहयोगी तो उनके वचनों पर अविश्वास कर वहाँ से चले गये। तब मैंने उन्हें आदरसहित प्रणाम किया और उनकी आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वे मुझे एक कुएँ के समीप ले गए और रस्सी से मेरे पैर बाँधकर मुझे कुएँ में उलटा लटका दिया। मेरा सिर नीचे और पैर ऊपर को थे। मेरा सिर जल से लगभग तीन फुट की ऊँचाई पर था, जिससे न मैं हाथों के द्वारा जल ही छू सकता था और न मुँह में ही उसके जा सकने की कोई सम्भावना थी। मुझे इस प्रकार उलटा लटका कर वे न जाने कहाँ चले गए। लगभग चार-पाँच घंटों के उपरांत वे लौटे और उन्होंने मुझे शीघ्र ही कुएँ से बाहर निकाला। फिर वे मुझसे पूछने लगे कि तुम्हें वहाँ कैसा प्रतीत हो रहा था? मैंने कहा कि " मैं परम आनन्द का अनुभव कर रहा था। मेरे समान मूर्ख प्राणी भला ऐसे आनंद का वर्णन कैसे कर सकता है।" मेरा उत्तर सुन कर मेरे गुरुदेव अत्यंत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगाकर मेरी प्रशंसा की और मुझे अपने संग ले लिया। एक चिड़िया अपने बच्चों का जितनी सावधानी से लालन पालन करती है, उसी प्रकार उन्होंने मेरा भी पालन किया। उन्होंने मुझे अपनी शाला में स्थान दिया। कितनी सुन्दर थी वह शाला! वहाँ मुझे अपने माता-पिता की भी विस्मृति हो गई। मेरे अन्य समस्त आकर्षण दूर हो गए और मैंने सरलतापूर्वक बन्धनों से मुक्ति पाई। मुझे सदा ऐसा ही लगता था कि उनके हृदय से ही चिपके रहकर उनकी ओर निहारा करूँ। यदि उनकी भव्य मूर्ति मेरी दृष्टि में न समाती तो मैं अपने को नेत्रहीन होना ही अधिक श्रेयस्कर समझता! ऐसी प्रिय थी वह शाला कि वहाँ पहुँचकर कोई भी कभी खाली हाथ नहीं लौटा। मेरी समस्त निधि, धन, सम्पत्ति, माता, पिता या क्या कहूँ, वे ही मेरे सर्वस्व थे। मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मों को छोड़कर मेरे नेत्रों में केन्द्रित हो गईं और मेरे नेत्र उन पर। मेरे लिये तो गुरु ऐसे हो चुके थे कि दिन - रात मैं उनके ही ध्यान में निमग्न रहता था। मुझे किसी भी बात की सुध न थी। इस प्रकार ध्यान और चिंतन करते हुये मेरा मन और बुद्धि स्थिर हो गई। मैं स्तब्ध हो गया और उन्हें मानसिक प्रणाम करने लगा। अन्य और भी आध्यात्मिक केंद्र हैं, जहाँ एक भिन्न ही दृश्य देखने में आता है। साधक वहाँ ज्ञान प्राप्त करने को जाता है तथा द्रव्य और समय का अपव्यय करता है। कठोर परिश्रम भी करता है, परन्तु अन्त में उसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। वहाँ गुरु अपने गुप्त ज्ञान-भंडार का अभिमान प्रदर्शित करते हैं और अपने को निष्कलंक बतलाते हैं। वे अपनी पवित्रता और शुद्धता का अभिनय तो करते हैं, परन्तु उनके अन्तःकरण में दया लेशमात्र भी नहीं होती है। वे उपदेश अधिक देते हैं और अपनी कीर्ति का स्वयं ही गुणगान करते हैं, परन्तु उनके शब्द हृदयवेधी नहीं होते, इसलिए साधकों को संतोष प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक आत्म - दर्शन का प्रश्न है, वे उससे कोसों दूर होते हैं। इस प्रकार के केंद्र साधकों को उपयोगी कैसे सिद्ध हो सकते हैं और उनसे

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

किसी उन्नति की आशा कोई कहाँ तक कर सकता है? जिन गुरु के श्री चरणों का मैंने अभी वर्णन किया है, वे भिन्न प्रकार के ही थे। उनकी कृपा-दृष्टि से मुझे स्वतः ही अनुभूति प्राप्त हो गई तथा मुझे न कोई प्रयास और न ही कोई विशेष अध्ययन करना पड़ा। मुझे किसी भी वस्तु के खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वरन् प्रत्येक वस्तु मुझे दिन के प्रकाश के समान उज्ज्वल दिखाई देने लगी। केवल मेरे वे गुरु ही जानते हैं कि किस प्रकार उनके द्वारा कुँ में मुझे उलटा लटकाना मेरे लिए परमानंद का कारण सिद्ध हुआ।

उन चार सहयोगियों में से एक महान् कर्मकांडी था। किस प्रकार कर्म करना और उससे अलिप्त रहना, यह उसे भली भाँति ज्ञात था। दूसरा ज्ञानी था, जो सदैव ज्ञान के अहंकार में चूर रहता था। तीसरा ईश्वर भक्त था जो कि अनन्य भाव से भगवान् के शरणागत हो चुका था तथा उसे ज्ञात था कि ईश्वर ही कर्ता है। जब वे इस प्रकार परस्पर विचार-विनिमय कर रहे थे, तभी ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न उठ पड़ा तथा वे बिना किसी से सहायता प्राप्त किए अपने स्वतंत्र ज्ञान पर निर्भर रहकर ईश्वर की खोज में निकल पड़े। श्री साई, जो विवेक और वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति थे, उन चारों लोगों में सम्मिलित थे। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि जब साई स्वयं ही ब्रह्म के अवतार थे, तब वे उन लोगों के साथ क्यों सम्मिलित हुए और क्यों उन्होंने इस प्रकार अविद्वत्तापूर्ण आचरण किया। जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने ऐसा आचरण किया। स्वयं अवतार होते हुए भी और दृढ़ धारणा कर कि अन्न ही ब्रह्म है, उन्होंने एक क्षुद्र बंजारे के भोजनको सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा बंजारे के भोजन के आग्रह की उपेक्षा करने और बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करने वालों की क्या दशा होती है, इसका उनके समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रुति(तैत्तिरीय उपनिषद्) का कथन है कि हमें माता, पिता तथा गुरु का आदरसहित पूजन कर धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। ये चित्त-शुद्धि के मार्ग हैं और **जब चित्त की शुद्धि नहीं होती, तब तक आत्मानुभूति की आशा व्यर्थ है।** आत्मा इंद्रियों, मन और बुद्धि के परे है। इस विषय में ज्ञान और तर्क हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते, केवल गुरु की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है। धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति अपने प्रयत्न से हो सकती है, परन्तु **मोक्ष की प्राप्ति तो केवल गुरुकृपा से ही सम्भव है।** श्री साई के दरबार में तरह-तरह के लोगों का दर्शन होता था। देखो, ज्योतिषी लोग आ रहे हैं और भविष्य का बखान कर रहे हैं। दूसरी ओर राजकुमार, श्रीमान्, सम्पन्न और निर्धन, संन्यासी, योगी और गवैये दर्शनार्थ चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि एक अतिशूद्र भी दरबार में आता है और प्रणाम करने के पश्चात् कहता है कि " साई ही मेरे माँ या बाप हैं और वे मेरा जन्म मृत्यु के चक्र से छुटकारा कर देंगे।" और भी अनेकों -तमाशा करने वाले, कीर्तन करने वाले, अंधे, पंगु, नाथपन्थी, नर्तक व अन्य मनोरंजन करने वाले दरबार में आते थे, जहाँ उनका उचित मान किया जाता था और इसी प्रकार उपयुक्त समय पर, वह बंजारा भी प्रगट हुआ और जो अभिनय उसे सौंपा गया था, उसने उसको पूर्ण किया।

हमारे विचार से कुँ में ४-५ घंटे उलटे लटके रहना - इसे सामान्य नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई बिरला ही पुरुष होगा, जो इस प्रकार अधिक समय तक, रस्सी से लटकाए जाने पर कष्ट का अनुभव न कर परमानंद का अनुभव करे। इसके विपरीत उसे पीड़ा होने की ही अधिक संभावना है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाधि-अवस्था का ही यहाँ चित्रण किया गया है। आनंद दो प्रकार के होते हैं- प्रथम ऐन्द्रिक और द्वितीय आध्यात्मिक। ईश्वर ने हमारी इंद्रियों व तन मन की प्रवृत्तियों की रचना बाह्यमुखी की है और जब वे (इंद्रियाँ और मन) अपने विषयपदार्थों में संलग्न होती हैं, तब हमें इन्द्रिय-चैतन्यता प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरूप हमें सुख या दुःख का पृथक् या दोनों का सम्मिलित अनुभव होता है, न कि परमानंद का। जब इन्द्रियों और मन को उनके विषय पदार्थों से हटाकर अंतर्मुख कर आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब हमें आध्यात्मिक बोध होता है और उस समय के आनंद का मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। " मैं परमानंद में था तथा उस समय का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ?" इन शब्दों से ध्वनित होता है कि गुरु ने उन्हें समाधि अवस्था में रखकर चंचल इन्द्रियों और मनरूपी जल से दूर रखा।

उपवास और श्रीमती गोखले

बाबा ने स्वयं कभी उपवास नहीं किया, न ही उन्होंने दूसरों को करने दिया। उपवास करने वालों का मन कभी शांत नहीं रहता, तब उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कैसे संभव है? प्रथम आत्मा की तृप्ति होना आवश्यक है। भूखे रहकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि पेटमें कुछ अन्न की शीतलता न हो तो हम कौन सी आँख से ईश्वर को देखेंगे, किस जिह्वा से उनकी महानता का वर्णन करेंगे और किन कानों से उसको श्रवण करेंगे। सारांश यह कि जब समस्त इंद्रियों को यथेष्ट भोजन व शांति मिलती है तथा जब वे बलिष्ठ रहती हैं, तब ही हम भक्ति और ईश्वर-

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

प्राप्ति की अन्य साधनाएँ कर सकते हैं, इसलिए न तो हमें उपवास करना चाहिए और न ही अधिक भोजन। भोजन में संयम रखना शरीर और मन दोनों के लिए उत्तम है।

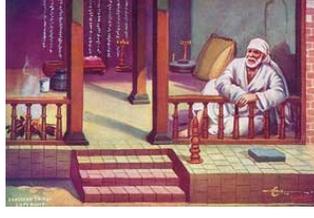
श्रीमती काशीबाई कानिटकर (श्रीसाईबाबा की एक भक्त) से परिचयपत्र लेकर श्रीमती गोखले, दादा केलकर के समीप शिरडी को आई। वे यह दृढ़ निश्चय कर के आई थीं कि बाबा के श्री चरणों में बैठकर तीन दिन उपवास करूँगी। उनके शिरडी पहुँचने के एक दिन पूर्व ही बाबा ने दादा केलकर से कहा कि “ मैं शिमगा(होली) के दिनों में अपने बच्चों को भूखा नहीं देख सकता हूँ। यदि उन्हें भूखे रहना पड़ा तो मेरे यहाँ वर्तमान होने का लाभ ही क्या है?” दूसरे दिन जब वह महिला दादा केलकर के साथ मस्जिद में जाकर बाबा के चरण-कमलों के समीप बैठी तो तुरंत बाबा ने कहा, “उपवास की आवश्यकता ही क्या है? दादा भट के घर जाकर पूरनपोली तैयार करो। अपने बच्चों को खिलाओ और स्वयं खाओ। ” वे होली के दिन थे और इस समय श्रीमती केलकर मासिक धर्म से थीं। दादा भट के घर में रसोई बनाने के लिए कोई न था और इसलिए बाबा की युक्ति बड़ी सामयिक थी। श्रीमती गोखले ने दादा भट के घर जाकर भोजन तैयार किया दूसरों को भोजन कराकर स्वयं भी खाया। कितनी सुंदर कथा है और कितनी सुंदर उसकी शिक्षा।

बाबा के सरकार

बाबा ने अपने बचपन की एक कहानी का इस प्रकार वर्णन किया-

जब मैं छोटा था, तब जीविका उपार्जनार्थ मैं बीडगाँव आया। वहाँ मुझे जरी का काम मिल गया और मैं पूर्ण लगन व उम्मीद से अपना काम करने लगा। मेरा काम देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे साथ तीन लड़के और भी काम करते थे। पहले का काम ५० रुपये का, दुसरे का १०० रुपये का और तीसरे का १५० रुपये का हुआ। मेरा काम उन तीनों से दुगुना हो गया। मेरी चतुराई देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह मुझे अधिक चाहता था और मेरी प्रशंसा भी करता रहता था। उसने मुझे एक पूरी पोशाख प्रदान की, जिसमें सिर के लिए एक पगड़ी और शरीर के लिए एक शेला भी थी। मेरे पास वह पोशाख वैसी ही रखी रही। मैंने सोचा कि जो कुछ मनुष्य-निर्मित है, वह नाशवान् और अपूर्ण है, परन्तु जो कुछ मेरे सरकार द्वारा प्राप्त होगा, वही अन्त तक रहेगा। किसी भी मनुष्य के उपहार की उससे समानता संभव नहीं है। मेरे सरकार कहते हैं “ ले जाओ” परन्तु लोग मेरे पास आकर कहते हैं “ मुझे दो, मुझे दो।” जो कुछ मैं कहता हूँ, उसके अर्थ पर कोई ध्यान देने का प्रयत्न नहीं करता। मेरे सरकार का खजाना(आध्यात्मिक भंडार) भरपूर है और वह ऊपर से बह रहा है। मैं तो कहता हूँ कि खोदकर गाड़ी में भरकर ले जाओ। जो सच्ची माँ का लाल होगा, उसे स्वयं ही भरना चाहिये। मेरे फकीर की कला, मेरे भगवान् की लीला और मेरे सरकार का बर्ताव सर्वथा अद्वितीय है। मेरा क्या, यह शरीर मिट्टी में मिलकर सारे भूमंडल में व्याप्त हो जायेगा तथा फिर यह अवसर कभी प्राप्त न होगा। मैं चाहे कहीं जाता हूँ या कहीं बैठता हूँ, परन्तु माया फिर भी मुझे कष्ट पहुँचाती है। इतना होने पर भी मैं अपने भक्तों के कल्याणार्थ सदैव उत्सुक ही रहता हूँ। जो कुछ भी कोई करता है, एक दिन उसका फल उसको अवश्य प्राप्त होगा और जो मेरे इन वचनों को स्मरण रखेगा, उसे मौलिक आनन्द की प्राप्ति होगी।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



उदी की महिमा (१)

बिच्छू का डंक, प्लेक की गाँठ, जामनेर का चमत्कार, नारायण राव, बाला बुवा सुतार, अप्पा साहेब कुलकर्णी, हरीभाऊ कर्णिक।

पूर्व अध्याय में गुरु की महानता का दिग्दर्शन कराया गया है। अब इस अध्याय में उदी के महात्म्य का वर्णन किया जाएगा।

प्रस्तावना

आओ, पहले हम सन्तों के चरणों में प्रणाम करें, जिनकी कृपादृष्टि मात्र से ही समस्त पापसमूह भस्म होकर हमारे आचरण के दोष नष्ट हो जाएँगे। उनसे वार्तालाप करना हमारे लिए शिक्षाप्रद और अति आनंददायक है। वे अपने मन में “ यह मेरा और वह तुम्हारा ” ऐसा कोई भेद नहीं रखते। इस प्रकार के भेदभाव की कल्पना उनके हृदय में कभी भी उत्पन्न नहीं होती। उनका ऋण इस जन्म में तो क्या, अनेक जन्मों में भी न चुकाया जा सकेगा।

उदी(विभूति)

यह सर्वविदित है कि बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे तथा उस धन राशि में से दान करने के पश्चात् जो कुछ भी शेष बचता, उससे वे ईंधन मोल लेकर सदैव धूनी प्रज्वलित रखते थे। इसी धूनी की भस्म ही ‘उदी’ कहलाती है। भक्तों के शिरड़ी से प्रस्थान करते समय यह भस्म मुक्तहस्त से उन सभी को वितरित कर दी जाती थी।

इस उदी से बाबा हमें क्या शिक्षा देते हैं? उदी वितरण कर बाबा हमें शिक्षा देते हैं कि इस अंगारे की नाई गोचर होने वाले ब्रह्मांड का प्रतिबिम्ब भस्म के ही समान है। हमारा तन भी ईंधन सदृश ही है, अर्थात् पंचभूतादि से निर्मित है, जो कि सांसारिक भोगादि के उपरांत विनाश को प्राप्त होकर भस्म के रूप में परिणत हो जाएगा।

भक्तों को इस बात की स्मृति दिलाने के हेतु ही कि अन्त में यह देह भस्म सदृश होने वाला है, बाबा उदी वितरण किया करते थे। बाबा इस उदी के द्वारा एक और भी शिक्षा प्रदान करते हैं कि इस संसार में ब्रह्म ही सत्य और जगत् मिथ्या है। इस संसार में वस्तुतः कोई किसी का पिता, पुत्र अथवा स्त्री नहीं है। हम जगत् में अकेले ही आए हैं और अकेले ही जाएँगे। पूर्व में यह देखने में आ चुका है और अभी भी अनुभव किया जा रहा है कि इस उदी ने अनेक शारीरिक और मानसिक रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया है। यथार्थ में बाबा तो भक्तों को दक्षिणा और उदी द्वारा सत्य और असत्य में विवेक तथा असत्य के त्याग का सिद्धांत समझाना चाहते थे। इस उदी से वैराग्य और दक्षिणा से त्याग की शिक्षा मिलती है। इन दोनों के अभाव में इस मायारूपी भवसागर को पार करना कठिन है; इसलिए बाबा दूसरे के भोग स्वयं भोग कर दक्षिणा स्वीकार कर लिया करते थे। जब भक्तगण बिदा लेते, तब वे प्रसाद के रूप में उदी देकर और कुछ उनके मस्तक पर लगाकर अपना वरद-हस्त उनके मस्तक पर रखते थे। जब बाबा प्रसन्न चित्त होते, तब वे प्रेमपूर्वक गीत गाया करते थे। ऐसा ही एक भजन उदी के सम्बन्ध में भी है। भजन के बोल हैं, “ रमते राम आओ जी आओ जी, उदिया की गोनियाँ लाओजी। ” यह बाबा शुद्ध और मधुर स्वर में गाते थे।

यह सब तो उदी के आध्यात्मिक प्रभाव के सम्बन्ध में हुआ, परन्तु उसमें भौतिक प्रभाव भी था, जिससे भक्तों को स्वास्थ्य, समृद्धि, चिंतामुक्ति एवं अनेक सांसारिक लाभ प्राप्त हुए। इसलिए उदी हमें आध्यात्मिक और सांसारिक लाभ पहुँचाती है। अब हम उदी की कथाएँ प्रारम्भ करते हैं।

बिच्छू का डंक

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

नासिक के श्री. नारायण मोतीराम जानी बाबा के परम भक्त थे। वे बाबा के अन्य भक्त रामचंद्र वामन मोड़क के अधीन काम करते थे। एक बार वे अपनी माता के साथ शिरडी गए तथा बाबा के दर्शन का लाभ उठाया। तब बाबा ने उनकी माँ से कहा कि " अब तुम्हारे पुत्र को नौकरी छोड़कर स्वतंत्र व्यवसाय करना चाहिए।" कुछ दिनों में बाबा के वचन सत्य निकले। नारायण जानी ने नौकरी छोड़कर एक उपाहार गृह 'आनंदाश्रम' चलाना प्रारम्भ कर दिया, जो अच्छी तरह चलने लगा। एक बार नारायण राव के एक मित्र को बिच्छू ने काट लिया, जिससे उसे असहनीय पीड़ा होने लगी। ऐसे प्रसंगों में उदी तो रामबाण प्रसिद्ध ही है। काटने के स्थान पर केवल उसे लगा ही तो देना है। नारायण ने उदी खोजी, परन्तु कही न मिल सकी। उन्होंने बाबा के चित्र के समक्ष खड़े होकर उनसे सहायता की प्रार्थना की और उनका नाम लेते हुए, उनके चित्र के सम्मुख जलती हुई ऊदबत्ती में से एक चुटकी भस्म बाबा की उदी मानकर बिच्छू के डंक मारने के स्थान पर लेप कर दिया। वहाँ से उनके हाथ हटाते ही पीड़ा तुरंत मिट गई और दोनों अति प्रसन्न होकर चले गए।

प्लेग की गाँठ

एक समय एक भक्त बाँद्रा में था। उसे वहाँ पता चला कि उसकी लड़की, जो दूसरे स्थान पर है, प्लेगग्रस्त है और उसे गिल्टी निकल आई है। उनके पास उस समय उदी नहीं थी, इसलिए उन्होंने नाना चाँदोरकर के पास उदी भेजने के लिए सूचना भेजी। नानासाहेब ठाणे रेल्वे स्टेशन के समीप ही रास्ते में थे। जब उनके पास यह सूचना पहुँची, वे अपनी पत्नीसहित कल्याण जा रहे थे। उनके पास भी उस समय उदी नहीं थी। इसलिए उन्होंने सड़क पर से कुछ धूल उठाई और श्री साईबाबा का ध्यान कर उनसे सहायता की प्रार्थना की तथा उस धूल को अपनी पत्नी के मस्तक पर लगा दिया। वह भक्त खड़े-खड़े यह सब नाटक देख रहा था। जब वह घर लौटा तो उसे जानकर अति हर्ष हुआ कि जिस समय से नानासाहेब ने ठाणे रेल्वे स्टेशन के पास बाबा से सहायता करने की प्रार्थना की, तभीसे उनकी लड़की की स्थिति में पर्याप्त सुधार हो चला था, जो गत तीन दिनों से पीड़ित थी।

जामनेर का विलक्षण चमत्कार

सन् १९०४-०५ में नानासाहेब चाँदोरकर खानदेश जिले के जामनेर में मामलतदार थे। जामनेर शिरडी से लगभग १०० मील से भी अधिक दूरी पर है। उनकी पुत्री मैनाताई गर्भावस्था में थी और प्रसव काल समीप ही था। उसकी स्थिति अति गम्भीर थी। २-३ दिनों से उसे प्रसव-वेदना हो रही थी। नानासाहेब ने सभी संभव प्रयत्न किए, परन्तु वे सब व्यर्थ ही सिद्ध हुए। तब उन्होंने बाबा का ध्यान किया और उनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय शिरडी में एक रामगीर बुवा, जिन्हें बाबा बापूगीर बुवा के नाम से पुकारते थे, अपने घर खानदेश को लौट रहे थे। बाबा ने उन्हें अपने समीप बुलाकर कहा कि तुम घर लौटते समय थोड़ी देर के लिए जामनेर में उतरकर यह उदी और आरती श्री. नानासाहेब को दे देना। रामगीर बुवा बोले कि " मेरे पास केवल दो ही रुपए हैं, जो कठिनाई से जलगाँव तक के किराये को ही पर्याप्त होंगे। फिर ऐसी स्थिति में जलगाँव से और ३० मील आगे जाना मुझे कैसे संभव होगा?" बाबा ने उत्तर दिया कि " चिंता की कोई बात नहीं। तुम्हारी सब व्यवस्था हो जाएगी।" तब बाबा ने शामा से माधव अड़कर द्वारा रचित प्रसिद्ध आरती की प्रतिलिपि कराई और उदी के साथ नानासाहेब के पास भेज दी। बाबा के वचनों पर विश्वास कर रामगीर बुवा ने शिरडी से प्रस्थान कर दिया और पौने तीन बजे रात्रि को जलगाँव पहुँचे। इस समय उनके पास केवल दो आने ही शेष थे, जिससे वे बड़ी दुविधा में थे। इतने में ही एक आवाज उनके कानों में पड़ी कि " शिरडी से आए हुए बापूगीर बुवा कौन हैं?" उन्होंने आगे बढ़कर बतलाया कि " मैं ही शिरडी से आ रहा हूँ और मेरा ही नाम बापूगीर बुवा है।" उस चपरासी ने, जो कि अपने आपको नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा भेजा हुआ बतला रहा था, उन्हें बाहर लाकर एक शानदार ताँगे में बिठाया, जिसमें दो सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। अब वे दोनों रवाना हो गए। ताँगा बहुत वेग से चल रहा था। प्रातःकाल वे एक नाले के समीप पहुँचे, जहाँ ताँगेवाले ने ताँगा रोककर घोड़ों को पानी पिलाया। इसी बीच चपरासी ने रामगीर बुवा से थोड़ा सा नाश्ता करने को कहा। उसकी दाढ़ी-मूँछें तथा अन्य वेशभूषा से उसे मुसलमान समझकर उन्होंने जलपान करना अस्वीकार कर दिया। तब उस चपरासी ने कहा कि मैं गढ़वाल का क्षत्रिय वंशी हिन्दू हूँ। यह सब नाश्ता नानासाहेब ने आपके लिए ही भेजा है तथा इसमें आपको कोई आपत्ति और संदेह नहीं करना चाहिए। तब वे दोनों जलपान कर पुनः रवाना हुए और सूर्योदय काल में जामनेर पहुँच गए। रामगीर बुवा लघुशंका को गए और थोड़ी देर में जब वे लौटकर आए तो क्या देखते हैं कि वहाँ न तो ताँगा था, न ताँगेवाला और न ही ताँगे के घोड़े। उनके मुख से एक शब्द भी न निकल रहा था। वे समीप ही कचहरी में पूछताछ करने गए और वहाँ उन्हें पता चला कि इस समय मामलतदार घर पर ही हैं। वे नानासाहेब के घर गए और उन्हें बतलाया कि "मैं शिरडी से बाबा की आरती और उदी लेकर आ रहा हूँ।" उस समय मैनाताई की स्थिति बहुत ही गंभीर थी और सभी को उसके लिए बड़ी चिंता थी।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

नानासाहेब ने अपनी पत्नी को बुलाकर उदी को जल में मिलाकर अपनी लकड़ी को पिला देने और आरती करने को कहा। उन्होंने सोचा कि बाबा की सहायता बड़ी सामायिक है। थोड़ी देर में ही समाचार प्राप्त हुआ कि प्रसव कुशलतापूर्वक होकर समस्त पीड़ा दूर हो गई है। जब रामगीर बुवा ने नानासाहेब को चपरासी, ताँगा तथा जलपान आदि रेलवे स्टेशन पर भेजने के लिए धन्यवाद दिया तो नानासाहेब को यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि मैंने न तो कोई ताँगा या चपरासी ही भेजा था और न ही मुझे शिरड़ी से आपके पधारने की कोई पूर्वसूचना ही थी।

ठाणे के सेवानिवृत्त श्री.बी.व्ही. देव ने नानासाहेब चाँदोरकर के पुत्र बापूसाहेब चाँदोरकर और शिरड़ी के रामगीर बुवा से इस सम्बन्ध में बड़ी पूछताछ की और फिर संतुष्ट होकर श्री साईलीला पत्रिका, भाग १३(पृष्ठ नं ११,१२,१३) में गद्य और पद्य में एक सुन्दर रचना प्रकाशित की। श्री. बी.व्ही. नरसिंह स्वामी ने भी (१) मैनाताई (भाग ५,पृष्ठ १४) , (२) बापूसाहेब चाँदोरकर (भाग २०, पृष्ठ ५० और ३) रामगीर बुवा (भाग २७, पृष्ठ ८३) के कथन लिए हैं, जो कि क्रमशः १ जून १९३६, १६ सितम्बर १९३६ और १ दिसम्बर १९३६ को छपे हैं और यह सब उन्होंने अपनी पुस्तक “ भक्तों के अनुभव ” भाग ३ में प्रकाशित किए हैं। निम्नलिखित प्रसंग रामगीर बुवा के कथनानुसार उद्धृत किया जाता है।

“ एक दिन मुझे बाबा ने अपने समीप बुलाकर एक उदी की पुड़िया और एक आरती की प्रतिलिपि देकर आज्ञा दी कि जामनेर जाओ और यह आरती तथा उदी नानासाहेब को दे दो। मैंने बाबा को बताया कि मेरे पास केवल दो रुपये ही हैं, जो कि कोपरगाँव से जलगाँव जाने और फिर वहाँ से बैलगाड़ी द्वारा जामनेर जाने के लिए अपर्याप्त हैं। बाबा ने कहा “ अल्ला देगा। ” शुक्रवार का दिन था। मैं शीघ्र ही रवाना हो गया। मैं मनमाड ६-३० बजे सायंकाल और जलगाँव रात्रि को २ बजकर ४५ मिनट पर पहुँचा। उस समय प्लेग निवारक आदेश जारी थे, जिससे मुझे असुविधा हुई और मैं सोच रहा था कि कैसे जामनेर पहुँचूँ। रात्रि को ३ बजे एक चपरासी आया, जो पैर में बूट पहिने था, सिर पर पगड़ी बाँधे व अन्य पोशाक भी पहने था। उसने मुझे ताँगे में बिठा लिया और ताँगा चल पड़ा। मैं उस समय भयभीत-सा हो रहा था। मार्ग में भगूर के समीप मैंने जलपान किया। जब प्रातःकाल जामनेर पहुँचा, तब उसी समय मुझे लघुशंका करने की इच्छा हुई। जब मैं लौटकर आया, तब देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है। ताँगा और ताँगेवाला अदृश्य हैं। ”

नारायणराव

भक्त नारायणराव को बाबा के दर्शनों का तीन बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९१८ में बाबा के महासमाधि लेने के तीन वर्ष पश्चात शिरड़ी जाना चाहते थे, परन्तु किसी कारणवश उनका जाना न हो सका। बाबा के समाधिस्थ होने के एक वर्ष के भीतर ही वे रुग्ण हो गये। किसी भी उपचार से उन्हें लाभ न हुआ। तब उन्होंने आठों प्रहर बाबा का ध्यान करना प्रारंभ कर दिया। एक रात को उन्हें स्वप्न हुआ। बाबा एक गुफा में से उन्हें आते हुए दिखाई पड़े और सात्वना देकर कहने लगे कि “ घबड़ाओ नहीं, तुम्हें कल से आराम हो जाएगा और एक सप्ताह में ही चलने-फिरने लगोगे। ” ठीक उतने ही समय में नारायणराव स्वस्थ हो गए। अब यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या बाबा देहधारी होने से जीवित कहलाते थे और क्या उन्होंने देह त्याग दी, इसलिए मृत हो गए? नहीं। बाबा अमर हैं, क्योंकि वे जीवन और मृत्यु से परे हैं। एक बार भी अनन्य भाव से जो उनकी शरण में जाता है, वह कहीं भी हो, उसे वे सहायता पहुँचाते हैं। वे तो सदा हमारे बाजू में ही खड़े हैं और चाहे जैसा रूप लेकर भक्त के समक्ष प्रकट होकर उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं।

अप्पासाहेब कुलकर्णी

सन् १९१७ में अप्पासाहेब कुलकर्णी के शुभ दिन आए। उनका ठाणे को स्थानांतरण हो गया। उन्होंने बालासाहेब भाटे द्वारा प्राप्त बाबा के चित्र का पूजन करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने सच्चे हृदय से पूजा की। वे हर दिन फूल, चन्दन और नैवेद्य बाबा को अर्पित करते और उनके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा रखते थे। इस सम्बन्ध में इतना तो कहा जा सकता है कि भावपूर्वक बाबा के चित्र को देखना ही बाबा के प्रत्यक्ष दर्शन के सदृश है। नीचे लिखी कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

बालाबुवा सुतार

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

बम्बई में एक बालाबुवा नाम के संत थे, जो कि अपनी भक्ति, भजन और आचरण के कारण ' आधुनिक तुकाराम ' के नाम से विख्यात थे। सन् १९१७ में वे शिरडी आए। जब उन्होंने बाबा को प्रणाम किया तो बाबा कहने लगे कि मैं तो इन्हें चार वर्षों से जानता हूँ, बालाबुवा को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि मैं तो प्रथम बार ही शिरडी आया हूँ, फिर यह कैसे संभव हो सकता है? गहन चिन्तन करने पर उन्हें स्मरण हुआ कि चार वर्ष पूर्व उन्होंने बम्बई में बाबा के चित्र को नमस्कार किया था। उन्हें बाबा के शब्दों की यथार्थता का बोध हो गया और वे मन ही मन कहने लगे कि संत कितने सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी होते हैं तथा अपने भक्तों के प्रति उनके हृदयमें कितनी दया होती है। मैंने तो केवल उनके चित्र को ही नमस्कार किया था तो भी यह घटना उनको ज्ञात हो गई। इसलिए उन्होंने मुझे इस बात का अनुभव कराया है कि **उनके चित्र को देखना ही उनके दर्शन करने के सदृश है।**

अब हम अप्पासाहेब की कथा पर आते हैं। जब वे ठाणे में थे तो उन्हें भिवंडी दौरे पर जाना पड़ा, जहाँ से उन्हें एक सप्ताह में लौटना संभव न था। उनकी अनुपस्थिति में तीसरे दिन उनके घर में निम्नलिखित विचित्र घटना हुई। दोपहर के समय अप्पासाहेब के गृह पर एक फकीर आया, जिसकी आकृति बाबा के चित्र से ही मिलती-जुलती थी। श्रीमती कुलकर्णी तथा उनके बच्चों ने उनसे पूछा कि आप शिरडी के श्रीसाईबाबा तो नहीं हैं? इस पर उत्तर मिला कि वे तो साईबाबा के आज्ञाकारी सेवक हैं और उनकी आज्ञा से ही आप लोगों की कुशल-क्षेम पूछने यहाँ आए हैं। फकीर ने दक्षिणा माँगी तो श्रीमती कुलकर्णी ने उन्हें एक रुपया भेंट किया। तब फकीर ने उन्हें उदी की एक पुड़िया देते हुए कहा कि इसे अपने पूजन में चित्र के साथ रखो। इतना कहकर वह वहाँ से चला गया। अब बाबा की अद्भुत लीला सुनिए।

भिवंडी में अप्पासाहेब का घोड़ा बीमार हो गया, जिससे वे दौरे पर आगे न जा सके। तब उसी शाम को वे घर लौट आए। घर आने पर उन्हें पत्नी के द्वारा फकीर के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ। उन्हें मन में थोड़ी अशांति-सी हुई कि मैं फकीर के दर्शनों से वंचित रह गया तथा पत्नी द्वारा केवल एक रुपया दक्षिणा देना उन्हें अच्छा न लगा। वे कहने लगे कि यदि मैं उपस्थित होता तो १० रुपये से कम कभी न देता। तब वे फिर भूखे ही फकीर की खोज में निकल पड़े। उन्होंने मस्जिद एवं अन्य कई स्थानों पर खोज की, परन्तु उनकी खोज व्यर्थ ही सिद्ध हुई। पाठक अध्याय ३२ में कहे गए बाबा के वचनों का स्मरण करें कि **भूखे पेट ईश्वर की खोज नहीं करनी चाहिए।** अप्पासाहेब को शिक्षा मिल गई। वे भोजन के उपरांत जब अपने मित्र श्री. चित्रे के साथ घूमने को निकले, तब थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें सामने से एक फकीर द्रुत गति से आता हुआ दिखाई पड़ा। अप्पासाहेब ने सोचा कि यह तो वही फकीर प्रतीत होता है, जो मेरे घर पर आया था तथा उसकी आकृति भी बाबा के चित्र के अनुरूप ही है। फकीर ने तुरन्त ही हाथ बढ़ाकर दक्षिणा माँगी। अप्पासाहेब ने उन्हें एक रुपया दे दिया, तब वह और माँगने लगा। अब अप्पासाहेब ने दो रुपए दिए। तब भी उसे संतोष न हुआ। उन्होंने अपने मित्र चित्रे से ३ रुपये उधार लेकर दिए, फिर भी वह माँगता ही रहा। तब अप्पासाहेब ने उसे घर चलने को कहा। सब लोग घर पर आए और अप्पासाहेब ने उन्हें ३ रुपये और दिए अर्थात् कुल ९ रुपये; फिर भी वह असन्तुष्ट प्रतीत होता था और माँगे ही जा रहा था। तब अप्पासाहेब ने कहा कि मेरे पास तो १० रुपये का नोट है। तब फकीर ने नोट ले लिया और ९ रुपये लौटाकर चला गया। अप्पासाहेब ने १० रुपये देने को कहा था, इसलिए उनसे १० रुपये ले लिए और बाबा द्वारा स्पर्शित ९ रुपये उन्हें वापस मिल गये। अंक ९ रुपये अर्थपूर्ण हैं तथा नवविधा भक्ति की ओर इंगित करते हैं (देखो अध्याय २१)। यहाँ ध्यान दें कि लक्ष्मीबाई को भी उन्होंने अंत समय में ९ रुपये ही दिए थे।

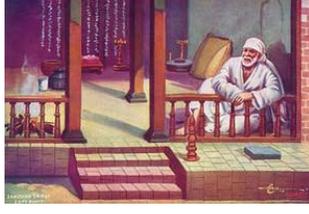
उदी की पुड़िया खोलने पर अप्पासाहेब ने देखा कि उसमें फूल के पत्ते और अक्षत हैं। जब वे कालान्तर में शिरडी गए तो उन्हें बाबा ने अपना एक केश भी दिया। उन्होंने उदी और केश को एक ताबीज में रखा और उसे वे सदैव हाथ पर बाँधते थे। अब अप्पासाहेब को उदी की शक्ति विदित हो चुकी थी। वे कुशाग्र बुद्धि के थे। प्रथम उन्हें ४० रुपये मासिक मिलते थे, परन्तु बाबा की उदी और चित्र प्राप्त होने के पश्चात् उनका वेतन कई गुना हो गया तथा उन्हें मान और यश भी मिला। इन अस्थायी आकर्षणों के अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक प्रगति भी शीघ्रता से होने लगी। इसलिए **सौभाग्यवश जिनके पास उदी है, उन्हें स्नान करने के पश्चात् मस्तक पर धारण करना चाहिए और कु छ जल में मिलाकर वह तीर्थ की तरह ग्रहण करना चाहिए।**

हरीभाऊ कर्णिक

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

सन् १९१७ में गुरु पूर्णिमा के शुभ दिन डहाणू, जिला टाणे के हरीभाऊ कर्णिक शिरडी आए तथा उन्होंने बाबा का यथाविधि पूजन किया। उन्होंने वस्तुएँ और दक्षिणा आदि भेंट कर शामा के द्वारा बाबा से लौटने की आज्ञा प्राप्त की। वे मस्जिद की सीढ़ियों पर से उतरे ही थे कि उन्हें विचार आया कि एक रुपया और बाबा को अर्पण करना चाहिए। वे शामा को संकेत से यह सूचना देना चाहते थे कि बाबा से जाने की आज्ञा प्राप्त हो चुकी है, इसलिए मैं लौटना नहीं चाहता हूँ। परन्तु शामा का ध्यान उनकी ओर नहीं गया, इसलिए वे घर को चल पड़े। मार्ग में वे नासिक में श्री कालाराम के मंदिर में दर्शनों को गए। संत नरसिंह महाराज, जो कि मंदिर के मुख्य द्वार के भीतर बैठा करते थे, भक्तों को वहीं छोड़ कर हरीभाऊ के पास आए और उनका हाथ पकडकर कहने लगे कि “ मुझे मेरा रुपया दे दो।” कर्णिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सहर्ष रुपया दे दिया। उन्हें विचार आया कि मैंने बाबा को रुपया देने का मन में संकल्प किया था और बाबा ने यह रुपया नासिक के नरसिंह महाराज के द्वारा ले लिया। इस कथा से सिद्ध होता है कि सब संत अभिन्न हैं तथा वे किसी न किसी रूप में एक साथ ही कार्य किया करते हैं।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



उदी की महिमा (२)

(१) डॉक्टर का भतीजा (२) डॉक्टर पिल्ले (३) शामा की भयाहू (४) ईरानी कन्या, (५) हरदा के महानुभाव (६) बम्बई की महिला की प्रसव पीड़ा

इस अध्याय में भी उदी की ही महत्ता क्रमबद्ध है तथा उन घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें उसका उपयोग बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध हुआ।

डॉक्टर का भतीजा

नासिक जिले के मालेगाँव में एक डॉक्टर रहते थे। उनका भतीजा एक असाध्य रोग **Tubercular bone abscess** (एक प्रकार का तपेदिक) से पीड़ित था। उन्होंने तथा उनके सभी डॉक्टर मित्रों ने समस्त उपचार किए। यहाँ तक कि उसकी शल्य-चिकित्सा भी कराई, फिर भी बालक को कोई लाभ न हुआ। उसके कष्टों का पारावार न था। मित्र और सम्बन्धियों ने बालक के माता-पिता को दैविक उपचार करने का परामर्श देकर श्री साईबाबा की शरण में जाने को कहा, जो अपनी दृष्टि मात्र से असाध्य रोग साध्य करने के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः माता-पिता बालक को साथ लेकर शिरड़ी आए। उन्होंने बाबा को साष्टांग प्रणाम कर श्री-चरणों में बालक को डाल दिया और बड़ी नम्रता तथा आदरपूर्वक विनती की कि " प्रभु, हम लोगों पर दया करो। आपका ' संकट-मोचन' नाम सुनकर ही हम लोग यहाँ आए हैं। दया कर इस बालक की रक्षा कीजिए। प्रभु ! हमें तो केवल आपका ही भरोसा है।" प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई और उन्होंने सान्त्वना देकर कहा कि " जो इस मस्जिद की सीढ़ी चढ़ता है, उसे जीवनपर्यन्त कोई दुःख नहीं होता। चिंता न करो; यह उदी ले उस रोग ग्रसित स्थान पर लगाओ। ईश्वर पर विश्वास रखो, वह सप्ताह के अंत में ही पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा। यह मस्जिद नहीं, यह तो द्वारकावती है और जो इसकी सीढ़ी चढ़ेगा, उसे स्वास्थ्य और सुख की प्राप्ति होगी तथा उसके कष्टों का अंत हो जाएगा।" बालक को बाबा के सामने बिठलाया गया। वे उस रोगग्रस्त स्थान पर अपना हाथ फेरते हुए दयापूर्ण दृष्टि से बालक की ओर निहारने लगे। रोगी अब प्रसन्न रहने लगा और उदी के लेप से बालक थोड़े समय में ही स्वस्थ हो गया। माता-पिता अपने को बाबा का ऋणी और कृतज्ञ मानकर बालक को लेकर शिरड़ी से चले गए।

यह लीला देखकर बालक के काका को, जो डॉक्टर थे, महान् आश्चर्य हुआ तथा उन्हें भी बाबा के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा हुई। इसी समय जब वे कार्यवश बम्बई जा रहे थे, तभी मालेगाँव और मनमाड़ के निकट किसी ने बाबा के विरुद्ध उनके कान भर दिए, इस कारण वे शिरड़ी जाने का विचार त्याग कर सीधे बम्बई चले गए। वे अपनी शेष छुट्टियाँ अलीबाग में व्यतीत करना चाहते थे, परंतु बम्बई में उन्हें लगातार तीन रात्रियों तक एक ही ध्वनि सुनाई पड़ी कि " क्या अब भी तुम मुझपर अविश्वास कर रहे हो ?" तब डॉक्टर ने अपना विचार बदल कर शिरड़ी को प्रस्थान करने का निश्चय किया। बम्बई में उनके एक रोगी को सांसर्गिक ज्वर आ रहा था, जिसका तापक्रम कम होने का कोई लक्षण दिखाई न देने के कारण उन्हें ऐसा लग रहा था कि कहीं शिरड़ी की यात्रा स्थगित न करनी पड़े। उन्होंने अपने मन ही मन एक परीक्षा करने का विचार किया कि यदि रोगी आज अच्छा हो जाये तो कल ही मैं शिरड़ी के लिए प्रस्थान कर दूँगा। आश्चर्य है कि जिस समय उन्होंने यह निश्चय किया, ठीक उसी समय से ज्वर में उतार होने लगा और ताप क्रमशः साधारण स्थिति पर पहुँच गया। तब वे अपने निश्चयानुसार शिरड़ी पहुँचे और बाबा का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। बाबा ने उन्हें कुछ ऐसे अनुभव दिए कि वे सदा के लिए उनके भक्त हो गये। डॉक्टर वहाँ चार दिन ठहरे और उदी तथा आशीर्वाद प्राप्त कर घर वापस आ गए। एक पखवारे में ही पदोन्नति पाकर उनका स्थानान्तरण वीजापुर को हो गया। भतीजे की रोग-मुक्तता ने उन्हें बाबा के दर्शनों का सौभाग्य दिया तथा शिरड़ी की यात्रा ने उनकी श्रीसाई के चरणों में प्रगाढ़ प्रीति उत्पन्न कर दी।

डॉक्टर पिल्ले

डॉक्टर पिल्ले बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे । इसी कारण वे उन पर अधिक स्नेह रखते थे और उन्हें सदा 'भाऊ' कहकर पुकारते तथा हर समय उनसे वार्तालाप करके प्रत्येक विषय में परामर्श भी लिया करते थे। उनकी सदैव यही इच्छा रहती कि वे बाबा के समीप ही बने रहें। एक बार डॉक्टर पिल्ले को नासूर हो गया । वे काकासाहेब दीक्षित से बोले कि मुझे असह्य पीड़ा हो रही है और मैं अब इस जीवन से मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ। मुझे ज्ञात है कि इसका मुख्य कारण मेरे पूर्व जन्मों के कर्म ही हैं। जाकर बाबा से कहो कि वे मेरी यह पीड़ा अब दूर करें । मैं अपने पिछले जन्म के कर्मों को अगले दस जन्मों में भोगने को तैयार हूँ । तब काका दीक्षित ने बाबा के पास जाकर उनकी प्रार्थना सुनाई । साई तो दया के अवतार ही हैं। वे अपने भक्तों के कष्ट कैसे देख सकते थे? उनकी प्रार्थना सुनकर उन्हें भी दया आ गई और उन्होंने दीक्षित से कहा कि पिल्ले से जाकर कहो कि घबराने की ऐसी कोई बात नहीं । कर्मों का फल दस जन्मों में क्यों भुगतना पड़ेगा? केवल दस दिनों में ही गत जन्मों के कर्मफल समाप्त हो जाएँगे। मैं तो यहाँ तुम्हें धार्मिक और आध्यात्मिक कल्याण देने के लिए ही बैठा हूँ । **प्राण त्यागने की इच्छा कदापि न करनी चाहिए।** जाओ, किसी की पीठ पर लादकर उन्हें यहाँ ले आओ, मैं सदा के लिये उनका कष्टों से छुटकारा कर दूँगा।

तब उसी स्थिति में पिल्ले को वहाँ लाया गया। बाबा ने अपने दाहिनी ओर उनके सिरहाने अपनी गादी देकर सुख से लिटाकर कहा कि इसकी मुख्य औषधि तो यह है कि पिछले जन्मों के कर्मफल को अवश्य ही भोग लेना चाहिए, ताकि उनसे सदैव के लिए छुटकारा हो जाए। हमारे कर्म ही सुख दुःख के कारण होते हैं, इसलिए जैसी भी परिस्थिति आए, उसी में सन्तोष करना चाहिए। अल्ला ही सब को फल देने वाला है और वही सबका रक्षण करता है। ऐसा विचार कर सदैव उनका ही स्मरण करो। वे ही तुम्हारी चिन्ता दूर करेंगे। तन-मन-धन और वचन द्वारा उनकी अनन्य शरण में जाओ, फिर देखो कि वे क्या करते हैं। डॉक्टर पिल्ले ने कहा कि नानासाहेब ने मेरे पैर में एक पट्टी बाँधी है, परन्तु मुझे उससे कोई लाभ नहीं पहुँचा । “ नाना तो मूर्ख है” बाबा ने कहा, “ वह पट्टी हटाओ, नहीं तो मर जाओगे । थोड़ी देर में ही एक कौआ आएगा और वह अपनी चोंच इसमें मारेगा। तभी तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे।”

जब यह वार्तालाप हो ही रहा था कि उसी समय अब्दुल, जो मस्जिद में झाड़ू लगाने तथा दिया-बत्ती आदि स्वच्छ करने का कार्य करता था, वहाँ आया । जब वह दिया -बत्ती स्वच्छ कर रहा था तो अचानक ही उसका पैर डॉक्टर पिल्ले के नासूर वाले पर पड़ा। पैर तो सूजा हुआ था ही और फिर अब्दुल के पैर से दबा तो उसमें से नासूर के सात कीड़े बाहर निकल पड़े। कष्ट असहनीय हो गया और डॉक्टर पिल्ले उच्च स्वर में चिल्ला पड़े। किन्तु कुछ काल के ही पश्चात् वे शांत हो कर गीत गाने लगे । तब बाबा ने कहा,

“देखा, भाऊ अब अच्छा हो गया है और गाना गा रहा है।” गाने के बोल थे:-

करम कर मेरे हाल पर तू करीम।
तेरा नाम रहमान है और रहीम।
तू ही दोनों आलम का सुलतान है।
जहाँ में नुमायों तेरी शान है।
फना होने वाला है सब कारोबार।
रहे नूर तेरा सदा आशकार ।
तू आशिक का हरदम मददगार है।

फिर डॉक्टर पिल्ले ने पूछा कि “ वह कौआ कब आएगा और चोंच मारेगा?” बाबा ने कहा “अरे, क्या तुमने कौए को नहीं देखा? अब वह नहीं आयेगा। अब्दुल, जिसने तुम्हारा पैर दबाया, वही कौआ था। उसने चोंच मारकर नासूर को हटा दिया । वह अब पुनः क्यों आएगा? अब जाकर वाड़े में विश्राम करो। तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे।” उदी लगाने और पानी के संग पीने से बिना किसी औषधि या चिकित्सा के वे दस दिनों में ही नीरोग हो गए, जैसा कि बाबा ने उनसे कहा था।

शामा के छोटे भाई की पत्नी (भयाहू)

सावली विहीर के समीप शामा के छोटे भाई बापाजी रहते थे। एक बार उनकी पत्नी को गिल्टियों वाला प्लेग हो गया। उसे ज्वर हो आया और उसकी जाँघ में प्लेग की दो गिल्टियाँ निकल आईं। बापाजी दौड़कर शामा के पास आए सहायता के लिए चलने को कहा। शामा भयभीत हो उठे। उन्होंने सदैव की भाँति बाबा के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया और सहायता के लिए उनसे प्रार्थना की तथा भ्राता के घर प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने कहा कि इतनी रात्रि व्यतीत हो चुकी है। अब इस समय तुम कहाँ जाओगे? केवल उदी ही भेज दो। ज्वर और गिल्टी की चिन्ता क्यों करते हो? भगवान् तो अपने पिता और स्वामी हैं। वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएगी। अभी मत जाओ। प्रातःकाल जाना और शीघ्र ही लौट आना।

शामा को तो उस मृत-संजीवनी ' उदी ' पर पूर्ण विश्वास था। उसे ले जाकर उसके भ्राता ने थोड़ी सी गिल्टी और माथे पर लगाई और कुछ जल में घोलकर रोगी को पिला दी। वैसे ही उसका सेवन किया गया, वैसे ही पसीना वेग से प्रवाहित होने लगा, ज्वर मन्द पड़ गया और रोगी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गया। दूसरे दिन बापाजी ने अपनी पत्नी को स्वस्थ देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया कि न तो ज्वर ही है और न गिल्टी का कोई चिह्न ही। दूसरे दिन जब शामा बाबा की अनुज्ञा प्राप्त कर वहाँ पहुँचे तो अपने भाई की स्त्री को चाय बनाते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने भाई से पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि बाबा की उदी ने एक रात्रि में ही रोग को समूल नष्ट कर दिया है। तब शामा को बाबा के शब्दों का मर्म समझ में आया कि " प्रातःकाल जाओ और शीघ्र लौटकर आओ। "

चाय पीकर शामा लौट आया और बाबा को प्रणाम करने के पश्चात् कहने लगा कि "देवा! यह तुम्हारा क्या नाटक है? पहले बवंडर उठा कर हमें अशांत कर देते हो, फिर हमारी शीघ्र सहायता कर सब ठीकठाक कर देते हो। " बाबा ने उत्तर दिया कि, "तुम्हें ज्ञात होगा कि कर्म पथ अति रहस्यपूर्ण है। यद्यपि मैं कुछ भी नहीं करता, फिर भी लोग मुझे ही कर्मों के लिए दोषी ठहराते हैं। मैं तो एक दर्शक मात्र ही हूँ। केवल ईश्वर ही एक सत्ताधारी और प्रेरणा देने वाले हैं। वे ही परम दयालु हैं। मैं न तो ईश्वर हूँ और न मालिक, केवल उनका एक आज्ञाकारी सेवक ही हूँ और सदैव उनका स्मरण किया करता हूँ। जो निरभिमान होकर अपने को कृतज्ञ समझ कर उन पर पूर्ण विश्वास करेगा, उसके कष्ट दूर हो जाएँगे और उसे मुक्ति की प्राप्ति होगी। "

ईरानी कन्या

अब एक ईरानी भद्र पुरुष का अनुभव पढ़िए। उनकी छोटी कन्या घंटे-घंटे पर मूर्च्छित हो जाया करती थी। उसके हाथ-पैरे ऐंठ जाते और वह बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ती थी। जब नाना प्रकार के उपचारों से भी उसे कोई लाभ न हुआ, तब कुछ लोगों ने उस ईरानी से बाबा की उदी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि वह विलेपार्ला (बम्बई) में काकासाहेब दीक्षित के पास से ही प्राप्त हो सकती है। तब ईरानी महाशय ने वहाँ से उदी लाकर जल में घोलकर अपनी बेटे को पिलाया। प्रारम्भ में जो दौरे एक घंटे के अन्तर से आया करते थे, बाद में वे सात घंटे के अन्तर से आए और कुछ दिनों के पश्चात् तो वह पूर्ण स्वस्थ हो गई।

हरदा के महानुभाव

हरदा के एक महानुभाव पथरी रोग से ग्रस्त थे। यह पथरी केवल शल्यचिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती थी। लोगों ने भी उन्हें ऐसा ही करने का परामर्श दिया। वे बहुत ही वृद्ध तथा दुर्बल थे और अपनी दुर्बलता देखकर उन्हें शल्यचिकित्सा कराने का साहस न हो रहा था। इस हालत में उनकी व्याधि का और इलाज ही क्या था? इसी समय नगर के इनामदार भी वहाँ आए हुए थे, जो बाबा के परम भक्त थे तथा उनके पास उदी भी थी। कुछ मित्रों के परामर्श देने पर उनके पुत्र ने उनसे कुछ उदी प्राप्त कर अपने वृद्ध पिता को जल में मिलाकर पीने को दी। केवल पाँच मिनट में ही उदी के पेट में जाते ही पथरी मल-मूत्रेन्द्रिय के द्वार से बाहर निकल गई और वह वृद्ध शीघ्र ही स्वस्थ हो गया।

बम्बई की महिला की प्रसव-पीड़ा

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

बम्बई की कायस्थ प्रभु जाति की एक महिला को प्रसव-काल में असहनीय वेदना हुआ करती थी। जब वह गर्भवती हो जाती तो बहुत घबराती और किंकर्तव्यमूढ़ हो जाया करती थी। इसके उपचारार्थ उनके एक मित्र श्रीराम मारुति ने उसके पति को सुझाव दिया कि यदि इस पीड़ा से मुक्ति चाहते हो तो अपनी पत्नी को शिरडी ले जाओ।

दुबारा जब उनकी स्त्री गर्भवती हुई तो वे दोनों पति-पत्नी शिरडी आये और वहाँ कुछ मास ठहरे। वे बाबा की नित्य सेवा करने लगे। उन्हें बाबा के सत्संग का भी बहुत कुछ लाभ हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् जब प्रसव-काल समीप आया, तब सदैव की भाँति गर्भाशय के द्वारा में रुकावट के साथ अधिक वेदना होने लगी। उनकी समझ में नहीं आता था कि अब क्या करना चाहिए? थोड़ी ही देर में एक पड़ोसिन आई और उसने मन ही मन बाबा से सहायता की प्रार्थना कर जल में उदी मिला उसे पीने को दी। तब केवल पाँच मिनट में ही बिना किसी कष्ट के प्रसव हो गया। बालक तो अपने भाग्यानुसार ही उत्पन्न हुआ, परन्तु उसकी माँ की पीड़ा और कष्ट सदा के लिए दूर हो गए। वे अपने को बाबा का बड़ा कृतज्ञ समझने लगे और जीवनपर्यंत उनके आभारी बने रहे।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



काका महाजनी के मित्र और सेठ, निर्बीज मुनक्के; बान्द्रा निवासी एक गृहस्थ की नींद न आने की घटना; बालाजी पाटील नेवासकर; बाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना।

इस अध्याय में भी उदी का माहात्म्य ही वर्णित है इसमें ऐसी दो घटनाओं का उल्लेख है कि परीक्षा करने पर देखा गया कि बाबा ने दक्षिणा अस्वीकार कर दी। पहले इन घटनाओं का वर्णन किया जाएगा

आध्यात्मिक विषयों में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति उन्नति के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा है। निराकारवादियों से कहते सुना जाता है कि ईश्वर की सगुण उपासना केवल एक भ्रम ही है और संतगण भी अपने सदृश ही सामान्य पुरुष हैं। इस कारण उनकी चरण वन्दना कर उन्हें दक्षिणा क्यों देनी चाहिए ? अन्य पन्थों के अनुयायियों का भी ऐसा ही मत है कि अपने सदगुरु के अतिरिक्त अन्य सन्तों को नमन तथा उनकी भक्ति न करनी चाहिए। इसी प्रकार की उनके आलोचनाएँ साईबाबा के सम्बंध में पहले सुनने में आया करती थीं तथा अभी भी आ रही हैं। किसी का कथन था कि जब हम शिरड़ी को गए तो बाबा ने हमसे दक्षिणा माँगी। क्या इस भाँति दक्षिणा ऐंठना एक सन्त के लिये शोभनीय था? जब वे इस प्रकार आचरण करते हैं तो फिर उनका साधु-धर्म काँ रहा? परन्तु ऐसी भी कई घटनाएँ अनुभव में आई हैं कि जिन लोगों ने शिरड़ी जाकर अविश्वास से बाबा के दर्शन किये, उन्होंने ही सर्वप्रथम बाबा को प्रणाम कर प्रार्थना भी की। ऐसे ही कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

काका महाजनी के मित्र

काका महाजनी के मित्र निराकारवादी तथा मूर्ति-पूजा के सर्वथा विरुद्ध थे। कौतूहलवश वे काका महाजनी के साथ दो शर्तों पर शिरडी चलने को सहमत हो गए कि (१) बाबा को नमस्कार न करेंगे और (२) न कोई दक्षिणा ही उन्हें देंगे। जब काका ने स्वीकारत्मक उत्तर दे दिया, तब फिर शनिवार की रात्रि को उन दोनों ने बम्बई से प्रस्थान कर दिया और दूसरे ही दिन प्रातःकाल शिरड़ी पहुँच गए। जैसे ही उन्होंने मस्जिद में पैर रखा, उसी समय बाबा ने उनके मित्र की ओर थोड़ी देर देखकर उनसे कहा कि " अरे आइए, श्रीमान् पधारिए। आपका स्वागत है।" इन शब्दों का स्वर कुछ विचित्र-सा था और उनकी ध्वनि प्रायः उन मित्र के पिता के बिलकुल अनुरूप ही थी। तब उन्हें अपने कैलासवासी पिता की स्मृति हो आई और वे आनन्द विभोर हो गए। क्या मोहिनी थी उस स्वर में ? आश्चर्ययुक्त स्वर में उनके मित्र के मुख से निकल पड़ा कि निस्संदेह यह स्वर मेरे पिताजी का ही है। तब वे शीघ्र ही ऊपर दौड़कर गए और अपनी सब प्रतिज्ञाएँ भूलकर उन्होंने बाबा के श्री-चरणोंपर अपना मस्तक रख दिया।

बाबा ने काकासाहेब से तो दोपहर में तथा विदाई के समय दोबार दक्षिणा माँगी, परन्तु इनके मित्र से एक शब्द भी न कहा। उनके मित्र ने फुसफुसाते हुए कहा कि "भाई! देखो, बाबा ने तुमसे तो दो बार दक्षिणा माँगी, परन्तु मैं भी तो तुम्हारे साथ हूँ, फिर वे मेरी इसप्रकार उपेक्षा क्यों करते हैं?" काका ने उत्तर दिया कि "उत्तम तो यह होगा कि तुम स्वयं ही बाबा से यह पूछ लो।" बाबा ने पूछा कि " यह क्या कानाफूसी हो रही है?" तब उनके मित्र ने कहा कि " क्या मैं भी आपको दक्षिणा दूँ।" बाबा नक कहा कि " तुम्हारी अनिच्छा देखकर मैंने तुमसे दक्षिणा नहीं माँगी, परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा ऐसी ही है तो तुम दक्षिणा दे सकते हो। " तब उन्होंने सत्रह रुपये भेंट किए, जितने काका ने दिये थे। तब बाबा ने उन्हें उपदेश दिया कि " अपने बीच जो तेली की दीवाल (भेदभाव) है, उसे नष्ट कर दो, जिससे हम परस्पर देखकर अपने मिलन का पथ सुगम बना सकें।" बाबा ने उन्हें लौटने की अनुमति देते हुए कहा कि " तुम्हारी यात्रा सफल रहेगी।" यद्यपि आकाश में बादल छाए हुए थे और वायु वेग से चल रही थी तो भी दोनों सकुशल बम्बई पहुँच गए। घर पहुँचकर जब उन्होंने द्वार तथा खिड़कियाँ खोलीं तो वहाँ तो वहाँ दो मृत चमगादड़ पड़े देखे। एक तीसरा उनके सामने ही फुर्र करके खिड़की में से उड़ गया। उन्हें विचार आया कि यदि मैंने खिड़की खुली छोड़ी होती तो इन जीवों के प्राण अवश्य बच गए होते, परन्तु फिर उन्हें

विचार आया कि यह उनके भाग्यानुसार ही हुआ है और बाबा ने तीसरे की प्राण-रक्षा के हेतु हमें शीघ्र ही वहाँ से वापस भेज दिया है।

काका महाजनी के सेठ

बम्बई में ठक्कर धरमसी जेठाभाई सॉलिसिटर (कानूनी सलाहकार) की एक फर्म थी। काका इस फर्म के व्यवस्थापक थे। सेठ और व्यवस्थापक के सम्बन्ध परस्पर अच्छे थे। श्रीमान ठक्कर को ज्ञात था कि काका बहुधा शिरड़ी जाया करते हैं और वहाँ कुछ दिन ठहरकर बाबा की अनुमति से ही वापस लौटते हैं। कौतूहलवश बाबा की परीक्षा करने के विचार से उन्होंने भी होलिकोत्सव के अवसर पर काका के साथ ही शिरड़ी जाने का निश्चय किया। काका का शिरड़ी से लौटना सदैव अनिश्चित सा ही रहता था, इसलिए अपने साथ एक मित्र को लेकर वे तीनों रवाना हो गए। मार्ग में काका ने बाबा को अर्पित करने के हेतु दो सेर मुनक्का मोल ले लिया। ठीक समय पर शिरड़ी पहुँच कर वे उनके दर्शनार्थ मस्जिद में गए। बाबासाहेब तर्खड भी तब वहीं पर थे। श्री. ठक्कर ने उनसे आने का हेतु पूछा। तर्खड ने उत्तर दिया कि मैं तो दर्शनों के लिए ही आया हूँ। मुझे चमत्कारों से कोई प्रयोजन नहीं। यहाँ तो भक्तों की हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति होती है। काका ने बाबा को नमस्कार कर उन्हें मुनक्के अर्पित किए। तब बाबा ने उन्हें वितरित करने की आज्ञा दे दी। श्रीमान् ठक्कर को भी कुछ मुनक्के मिले। एक तो उन्हें मुनक्का रुचिकर न लगता था, दूसरे इस प्रकार अस्वच्छ खाने की डॉक्टर ने मनाही कर दी थी। इसलिए वे कुछ निश्चय न कर सके और अनिच्छा होते हुए भी उन्हें ग्रहण करना पड़ी और फिर दिखावे मात्र के लिए ही उन्होंने मुँह में डाल लिया। अब समझ में न आता था कि उनके बीजों का क्या करें। मस्जिद की फर्श पर तो थूका नहीं जा सकता था, इसलिए उन्होंने वे बीज अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने खीसे में डाल लिए और सोचने लगे कि जब बाबा सन्त हैं तो यह बात उन्हें कैसे अविदित रह सकती है कि मुझे मुनक्कों से घृणा है? फिर क्या वे मुझे इसके लिए लाचार कर सकते हैं? जैसे ही यह विचार उनके मन में आया, बाबा ने उन्हें कुछ और मुनक्के दिए, पर उन्होंने खाया नहीं और अपने हाथ में ले लिया। तब बाबा ने उन्हें खा लेने को कहा। उन्होंने आज्ञा का पालन किया और चबाने पर देखा कि वे सब निर्बीज हैं। वे चमत्कार की इच्छा रखते थे, इसलिए उन्हें देखने को भी मिल गया। उन्होंने सोचा कि बाबा समस्त विचारों को तुरन्त जान लेते हैं और मेरी इच्छानुसार ही उन्होंने उन्हें बीजरहित बना दिया है। क्या अद्भुत शक्ति है उनमें? फिर शंका-निवारणार्थ उन्होंने तर्खड से, जो समीप ही बैठे हुए थे और जिन्हें भी थोड़े मुनक्के मिले थे, पूछा कि किस किस के मुनक्के तुम्हें मिले? उत्तर मिला “ अच्छे बीजों वाले।” श्रीमान् ठक्कर को तब और भी आश्चर्य हुआ। अब उन्होंने अपने अंकुरित विश्वास को दृढ़ करने के लिए मन में निश्चय किया कि यदि बाबा वास्तव में सन्त हैं तो अब सर्वप्रथम मुनक्के काका को ही दिए जाने चाहिए। इस विचार को जानकर बाबा ने कहा कि अब पुनः वितरण काका से ही आरम्भ होना चाहिए। यह सब प्रमाण श्री. ठक्कर के लिए पर्याप्त ही थे।

फिर शामा ने बाबा से परिचय कराया कि आप ही काका के सेठ हैं। बाबा कहने लगे कि ये उनके सेठ कैसे हो सकते हैं? इनके सेठ तो बड़े विचित्र हैं। काका इस उत्तर से सहमत हो गए। अपनी हठ छोड़कर ठक्कर ने बाबा को प्रणाम किया और वाड़े को लौट आए। मध्याह्न की आरती समाप्त होने के उपरान्त वे बाबा से प्रस्थान करने की अनुमति प्राप्त करने के लिये मस्जिद में आये। शामा ने उनकी कुछ सिफारिश की, तब बाबा इस प्रकार बोले:-

“एक सनकी मस्तिष्क वाला सभ्य पुरुष था, जो स्वस्थ और धनी भी था। शारीरिक तथा मानसिक व्यथयों से मुक्त होने पर भी वह स्वतःही अनावश्यक चिंताओं में डूबा रहता और व्यर्थ ही यहाँ-वहाँ भटक कर अशान्त बना रहता था। कभी वह स्थिर और कभी चिन्तित रहता था। उसकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे दया आ गई और मैंने उससे कहा कि कृपया अब आप अपना विश्वास एक इच्छित स्थान पर स्थिर कर लें। इस प्रकार व्यर्थ भटकने से कोई लाभ नहीं।”

“शीघ्र ही एक निर्दिष्ट स्थान चुन लो” - इन शब्दों से ठक्कर की समझ में तुरन्त आ गया कि यह सर्वथा मेरी ही कहानी है। उनकी इच्छा थी कि काका भी हमारे साथ ही लौटें। बाबा ने उनका ऐसा विचार जानकर काका को सेठ के साथ ही लौटने की अनुमति दे दी। किसी को विश्वास न था कि काका इतने शीघ्र शिरड़ी से प्रस्थान कर सकेंगे। इस प्रकार ठक्कर को बाबा की विचार जानने की कला का एक और प्रमाण मिल गया।

तब बाबा ने काका से १५ रुपये दक्षिणा माँगी और कहने लगे कि “ यदि मैं किसी से एक रुपया दक्षिणा लेता हूँ तो उसे दसगुना लौटाया करता हूँ। मैं किसी की कोई वस्तु बिना मूल्य नहीं लेता और न तो प्रत्येक से माँगता ही हूँ। जिसकी ओर फकीर (ईश्वर) इंगित करते हैं, उससे ही मैं माँगता हूँ और जो गत जन्म का ऋणी होता है, उसकी ही दक्षिणा स्वीकार हो जाती है। **दानी देता है और भविष्य में सुन्दर उपज का बीजारोपण करता है।** धन का उपयोग धर्मोपार्जन के ही निमित्त होना चाहिए। यदि धन व्यक्तिगत आवश्यकताओं में व्यय किया गया तो यह उसका दुरुपयोग है। यदि तुमने पूर्व जन्मों में दान नहीं दिया है तो इस जन्म में पाने की आशा कैसे कर सकते हो? इसलिए **यदि प्राप्ति की आशा रखते हो तो अभी दान करो।** दक्षिणा देने से वैराग्य की वृद्धि होती है और वैराग्य प्राप्ति से भक्ति और ज्ञान बढ़ जाते हैं। **एक दो और दस गुना लो।**

इन शब्दों को सुनकर श्री. ठक्कर ने भी अपना संकल्प भूलकर बाबा को पन्द्रह रुपये भेंट किये। उन्होंने सोचा कि अच्छा ही हुआ, जो मैं शिरडी आ गया। यहाँ मेरे सब सन्देह नष्ट हो गए और मुझे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त हो गई।

ऐसे विषयों में बाबा की कुशलता बड़ी अद्वितीय थी। यद्यपि वे सब कुछ करते थे, फिर भी वे इन सबसे अलिप्त रहते थे। नमस्कार करने या न करने वाले; दक्षिणा देने या न देने वाले; दोनों ही उनके लिए एक समान थे। उन्होंने कभी किसी का अनादर नहीं किया। यदि भक्त उनका पूजन करते तो इससे उन्हें न कोई प्रसन्नता होती और यदि कोई उनकी उपेक्षा करता तो न कोई दुःख ही होता। वे सुख और दुःख की भावना से परे हो चुके थे।

अनिद्रा

बान्द्रा के एक महाशय कायस्थ प्रभु बहुत दिनों से नींद न आने के कारण अस्वस्थ थे। जैसे ही वे सोने लगते, उनके स्वर्गवासी पिता स्वप्न में आकर उन्हें बुरी तरह गालियाँ देते दिखने लगते थे। इससे निद्रा भंग हो जाती और वे रात्रिभर अशांति महसूस करते थे। हर रात्रि को ऐसा ही होता था, जिससे वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए। एक दिन बाबा के एक भक्त से उन्होंने इस विषय में परामर्श किया। उसने कहा कि मैं तो संकटमोचन सर्व-पीड़ा-निवारिणी उदी को ही इसकी रामबाण औषधि मानता हूँ, जो शीघ्र ही लाभदायक सिद्ध होगी। उन्होंने एक उदी की पुड़िया देकर कहा कि इसे शयन के पूर्व माथे पर लगाकर अपने सिरहाने रखो। फिर तो उन्हें निर्विघ्न प्रगाढ़ निद्रा आने लगी। यह देखकर उन्हें महान् आश्चर्य और आनन्द हुआ। यह क्रम चालू रखकर वे अब साईबाबा का ध्यान करने लगे। बाजार से उनका एक चित्र लाकर उन्होंने अपने सिरहाने के पास लगाकर उनका नित्य पूजन करना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक गुरुवार को वे हार और नैवेद्य अर्पण करने लगे। वे अब पूर्ण स्वस्थ हो गये और पहले के सारे कष्टों को भूल गए।

बालाजी पाटील नेवासकर

ये बाबा के परम भक्त थे। ये उनकी निष्काम सेवा किया करते थे। दिन में जिन रास्तों से बाबा निकलते थे, उन्हें वे प्रातःकाल ही उठकर झाड़ू लगाकर पूर्ण स्वच्छ रखते थे। इनके पश्चात् यह कार्य बाबा की एक परमभक्त महिला राधाकृष्ण माई ने किया और फिर अब्दूल ने। बालाजी जब अपनी फसल काटकर लाते तो वे सब अनाज उन्हें भेंट कर दिया करते थे। उसमें से जो कुछ बाबा उन्हें लौटा देते, उसी से वे अपने कुटुम्ब का भरणपोषण किया करते थे। यह क्रम अनेक वर्षों तक चला और उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनके पुत्र ने इसे जारी रखा।

उदी की शक्ति और महत्त्व

एक बार बालाजी के श्राद्ध दिवस की वार्षिकी (बरसी) के अवसर पर कुछ व्यक्ति आमंत्रित किए गए। जितने लोगों के लिए भोजन तैयार किया गया, उससे कहीं तिगुने लोग भोजन के समय एकत्रित हो गए। यह देख श्रीमती नेवासकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गई। उन्होंने सोचा कि यह भोजन सबके लिए पर्याप्त न होगा और कहीं कम पड़ गया तो कुटुम्ब की भारी अपकीर्ति होगी। तब उनकी सास ने उनसे सान्त्वना-पूर्ण शब्दों में कहा कि चिन्ता न करो। यह भोजन-सामग्री हमारी नहीं, यह तो श्री साईबाबा की है। प्रत्येक बर्तन में उदी डालकर उन्हें

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

वस्त्र से ढँक दो और बिना वस्त्र हटाए सबको परोस दो। वे ही हमारी लाज बचाएँगे। परामर्श के अनुसार ही किया गया। भोजनार्थियों के तृप्तिपूर्वक भोजन करने के पश्चात् भी भोजन सामग्री यथेष्ट मात्रा में शेष देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। यथार्थ में देखा जाए तो जैसा जिसका भाव होता है, उसके अनुकूल ही अनुभव प्राप्त होता है। ऐसी ही घटना मुझे प्रथम श्रेणी के उपन्यायाधीश तथा बाबा के परम भक्त श्री.बी.ए. चौगुले ने बतलाई। फरवरी, सन् १९४३ में करजत (जिला अहमदनगर) में पूजा का उत्सव हो रहा था, तभी इस अवसर पर एक बृहत् भोज का आयोजन हुआ। भोजन के समय आमंत्रित लोगों से लगभग पाँच गुने अधिक भोजन के लिए आये, फिर भी भोजन सामग्री कम नहीं हुई। बाबा की कृपा से सबको भोजन मिला, यह सबको आश्चर्य हुआ।

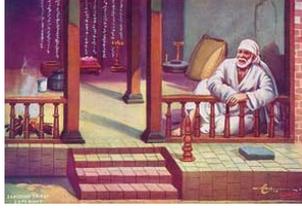
साईबाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना

शिरडी के रघु पाटील एक बार नेवासे के बालाजी पाटील के पास गए, जहाँ सन्ध्या को उन्हें ज्ञात हुआ कि एक साँप फुफकारता हुआ गौशाला में घुस गया है। सभी पशु भयभीत होकर भागने लगे। घर के लोग भी घबरा गए, परन्तु बालाजी ने सोचा कि श्री साई ही इस रूप में यहाँ प्रगट हुए हैं। तब वे एक प्याले में दूध ले आए और निर्भय होकर उस सर्प के सम्मुख रखकर उनको इस प्रकार सम्बोधित कर कहने लगे कि “ बाबा! आप फुफकार कर शोर क्यों कर रहे हैं? क्या आप मुझे भयभीत करना चाहते हैं? यह दूध का प्याला लीजिए और शांतिपूर्वक पी लीजिए” ऐसा कहकर वे बिना किसी भय के उसके समीप ही बैठ गये। अन्य कुटुम्बी जन तो बहुत घबड़ा गए और उनकी समझ में न आ रहा था कि अब वे क्या करें? थोड़ी देर में ही सर्प अदृश्य हो गया और किसी को भी पता न चला कि वह कहाँ गया। गौशाला में सर्वत्र देखने पर भी वहाँ उसका कोई चिह्न न दिखाई दिया।

एक ऐसी ही घटना साई-सुधा (भाग ३ नं. ७-८, जनवरी ४३, पृष्ठ २६) में प्रकाशित है कि बाबा कोयंबटूर (दक्षिण भारत) में ७ जनवरी, सन् ४३ गुरुवार की सन्ध्या को साढ़े तीन बजे सर्प के रूप में प्रगट हुए, जहाँ उस सर्प ने भजन सुनकर दूध और फूल स्वीकार किए तथा हजारों लोगों की भीड़ को दर्शन देकर अपनी फोटो भी उतारने दिया। फोटो उतारते समय, बाबा का चित्र भी उसके समीप रखकर दोनों की ही फोटो उतारी गई। चित्र और अन्य विवरण के लिए पाठकों से प्रार्थना है कि वे उपर्युक्त पत्रिका का अवश्य अवलोकन करें।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

सप्ताह पारायणः पंचम विश्राम



आश्चर्यजनक कथाएँ

(१) गोवा के दो सज्जन और (२) श्रीमती औरंगाबादकर ।

इस अध्याय में गोवा के दो महानुभावों और श्रीमती औरंगाबादकर की अद्भुत कथाओं का वर्णन है ।

गोवा के दो महानुभाव

एक समय गोवा से दो महानुभाव श्रीसाईबाबा के दर्शनार्थ शिरड़ी आए। उन्होंने आकर उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि वे दोनों एक साथ ही आए थे, फिर भी बाबा ने केवल एक ही व्यक्ति से पन्द्रह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्हें आदरसहित दे दी गई। दूसरा व्यक्ति भी उन्हें सहर्ष ३५ रुपये दक्षिणा देने लगा तो उन्होंने उसकी दक्षिणा लेना अस्वीकार कर दिया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय शामा भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि “ देवा ! यह क्या, ये दोनों एक साथ ही तो आए हैं। इनमें से एक की दक्षिणा तो आप स्वीकार करते हैं और दूसरा जो अपनी इच्छा से भेंट दे रहा है, उसे अस्वीकृत कर रहे हैं? यह भेद क्यों ?” तब बाबा ने उत्तर दिया कि “ शामा! तुम नादान हो। मैं किसी से कभी कुछ नहीं लेता। यह तो मस्जिदमाई ही अपना ऋण माँगती है और इसलिए देने वाला अपना ऋण चुकता कर मुक्त हो जाता है। क्या मेरे कोई घर, सम्पत्ति या बाल-बच्चे हैं, जिनके लिए मुझे चिन्ता हो? मुझे तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मैं तो सदा स्वतंत्र हूँ। ऋण, शत्रुता तथा हत्या इन सबका प्रायश्चित्त अवश्य करना पड़ता है और इनसे किसी प्रकार भी छुटकारा संभव नहीं है। तब बाबा अपने विशेष ढंग से इस प्रकार कहने लगे:-

“ अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में ये महाशय निर्धन थे। इन्होंने ईश्वर से प्रतिज्ञा की थी कि यदि मुझे नौकरी मिल गई तो मैं एक माह का वेतन तुम्हें अर्पण करूँगा। इन्हें १५ रुपये माहवार की एक नौकरी मिल गई। फिर उत्तरोत्तर उन्नति होते होते ३०,६०,१००, २०० और अन्त में ७०० रुपये तक मासिक वेतन हो गया। परन्तु समृद्धि पाकर ये अपना वचन भूल गए और उसे पूरा न कर सके। अब अपने शुभ कर्मों के ही प्रभाव से इन्हें यहाँ तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः मैंने इनसे केवल पन्द्रह रुपये ही दक्षिणा माँगी, जो इनके पहले माह की पगार थी।”

दूसरी कथा

“ समुद्र के किनारे घुमते-घूमते मैं एक भव्य महल के पास पहुँचा और उसकी दालान में विश्राम करने लगा। उस महल के ब्राह्मण स्वामी ने मेरा यथोचित स्वागत कर मुझे बढ़िया स्वादिष्ट पदार्थ खाने को दिये। भोजन के उपरान्त उसने मुझे आलमारी के समीप एक स्वच्छ स्थान शयन के लिए बतला दिया और मैं वहीं सो गया। जब मैं प्रगाढ़ निद्रा में था तो उस व्यक्ति ने पत्थर खिसकाकर दीवार में संध डाली और उसके द्वारा भीतर घुसकर उसने मेरा खीसा कतर लिया। निद्रा से उठने पर मैंने देखा कि मेरे तीस हजार रुपये चुरा लिए गए हैं। मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया और दुःखित होकर रोता बैठ गया। केवल नोट ही नोट चुरा लिये थे, इसलिए मैंने सोचा कि यह कार्य उस ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी का नहीं है। मुझे खाना-पीना कुछ भी अच्छा न लगा और मैं एक पखवाड़े तक दालान में ही बैठे बैठे चोरी का दुःख मनाता रहा। इस प्रकार पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर रास्ते से जाने वाले एक फकीर ने मुझे दूःख से बिलखते देखकर मेरे रोने का कारण पूछा। तब मैंने सब हाल उससे कह सुनाया। उसने मुझसे कहा कि यदि तुम मेरे आदेशानुसार आचरण करोगे तो तुम्हारा चुराया धन वापस मिल जाएगा। मैं एक फकीर का पता तुम्हें बताए देता हूँ। तुम उसकी शरण में जाओ और उसकी कृपा से तुम्हें तुम्हारा धन पुनः मिल जाएगा। परन्तु जब तक तुम्हें अपना धन वापस नहीं मिलता, उस समय तक तुम अपना प्रिय भोजन त्याग दो। मैंने

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

उस फकीर का कहना मान लिया और मेरा चुराया धन मिल गया। तब मैं समुद्र तट पर आया, जहाँ एक जहाज खड़ा था, जो यात्रियों से ठसाठस भर चुका था। भाग्यवश वहाँ एक उदार प्रकृतिवाले चपरासी की सहायता से मुझे एक स्थान मिल गया। इस प्रकार मैं दूसरे किनारे पर पहुँचा और वहाँ से मैं रेलगाड़ी में बैठकर मस्जिद माई आ पहुँचा।”

कथा समाप्त होते ही बाबा ने शामा से इन अतिथियों को अपने साथ ले जाने और भोजन का प्रबन्ध करने को कहा। तब शामा उन्हें अपने घर लिववा ले गया और उन्हें भोजन कराया। भोजन करते समय शामा ने उनसे कहा कि “बाबा की कहानी बड़ी ही रहस्यपूर्ण है, क्योंकि न तो वे कभी समुद्र की ओर गए हैं और न उनके पास तीस हजार रुपये ही थे। उन्होंने न कहीं भी यात्रा ही की, न उनकी कोई रकम ही चुरायी गई और न वापस आई।” फिर शामा ने उन लोगों से पूछा कि “आप लोगों को कुछ समझ में आया कि इसका अर्थ क्या था?” दोनों अतिथियों की घिग्घियाँ बँध गईं और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्होंने रोते-रोते कहा कि “बाबा तो सर्वव्यापी, अनन्त और परब्रह्म स्वरूप हैं। जो कथा उन्होंने कही है, वह बिलकुल हमारी ही कहानी है और वह मेरे ऊपर बीत चुकी है। यह महान् आश्चर्य है कि उन्हें यह सब कैसे ज्ञात हो गया? भोजन के उपरान्त हम इसका पूर्ण विवरण आपको सुनाएँगे।”

भोजन के पश्चात् पान खाते हुए उन्होंने अपनी कथा सुनाना प्रारम्भ कर दिया। उनमें से एक कहने लगा:- “घाट में एक पहाड़ी स्थान पर हमारा निवास-स्थान है। मैं अपने जीवन-निर्वाह के लिए नौकरी ढूँढने गोवा आया था। तब मैंने भगवान् दत्तात्रेय को वचन दिया था कि यदि मुझे नौकरी मिल गई तो मैं तुम्हें एक माह की पगार भेंट चढ़ाऊँगा। उनकी कृपा से मुझे पन्द्रह रुपये मासिक की नौकरी मिल गई और जैसा कि बाबा ने कहा, उसी प्रकार मेरी उन्नति हुई। मैं अपना वचन बिलकुल भुल गया था। बाबा ने उसकी स्मृति दिलाई और मुझसे पन्द्रह रुपये वसूल कर लिए। आप लोग इसे दक्षिणा न समझें। यह तो एक पुराने ऋण का भुगतान है तथा दीर्घ काल से भूली हुई प्रतिज्ञा आज पूर्ण हुई है।

शिक्षा

यथार्थ में बाबा ने कभी किसी से पैसा नहीं माँगा और न ही अपने भक्तों को ही माँगने दिया। वे आध्यात्मिक उन्नति में कांचन को बाधक समझते थे और भक्तों को उसके पाश से सदैव बचाते रहते थे। भगत म्हालसापति इसके उदाहरणस्वरूप हैं। वे बहुत निर्धन थे और बड़ी कठिनाई से ही अपना जीवन बिताते थे। बाबा उन्हें कभी पैसा माँगने नहीं देते थे और न ही वे अपने पास की दक्षिणा में से उन्हें कुछ देते थे। एक बार एक दयालु और सहृदय व्यापारी हंसराज ने बाबा की उपस्थिति में ही एक बड़ी रकम म्हालसापति को दी, परन्तु बाबा ने उनसे उसे अस्वीकार करने को कह दिया।

अब दूसरा अतिथि अपनी कहानी सुनाने लगा। “मेरे पास एक ब्राह्मण रसोइया था, जो गत ३५ वर्षों से ईमानदारी से मेरे पास काम करता आया था। बुरी आदतों में पड़कर उसका मन पलट गया और उसने मेरे सब रुपये चोरी कर लिए। मेरी आलमारी दीवार में लगी थी और जिस समय हम लोग गहरी नींद में थे, उसने पीछेसे पत्थर हटा कर मेरे सब तीन हजार रुपयों के नोट चुरा लिए। मैं नहीं जानता कि बाबा को यह ठीक-ठीक धन-राशि कैसे ज्ञात हो गई? मैं दिन-रात रोता और दुःखी रहता था। एक दिन जब मैं इसी प्रकार निराश और उदास होकर बरामदे में बैठा था, उसी समय रास्ते से जाने वाले एक फकीर ने मेरी स्थिति जानकर मुझसे इसका कारण पूछा। मैंने उसे सब हाल कह सुनाया। तब उसने बताया कि कोपरगाँव तालुके के शिरडी ग्राम में श्री साईबाबा नाम के एक औलिया रहते हैं। उन्हें वचन दो तथा अपना रुचिकर भोज्य पदार्थ त्याग, मन में कहो कि जब तक मैं तुम्हारा दर्शन न कर लूँगा, उस पदार्थ को कदापि न खाऊँगा। तब मैंने चावल खाना छोड़ दिया और बाबा को वचन दिया, “बाबा! जब तक मुझे तुम्हारे दर्शन नहीं होते तथा मेरी चुराई गई धन राशि नहीं मिलती, तब तक मैं चावल ग्रहण न करूँगा।” इस प्रकार जब पन्द्रह दिन बीत गए, तब वह ब्राह्मण स्वयं ही आया और सब धनराशि लौटाकर क्षमायाचनापूर्वक कहने लगा कि मेरी मति ही भ्रष्ट हो गई थी, जो मुझसे अपका ऐसा अपराध बन गया है। मैं आपके पैर पड़ता हूँ। मुझे क्षमा करें। इसप्रकार सब ठीक-ठाक हो गया। जिस फकीर से मेरी भेंट हुई थी तथा जिसने मुझे सहायता पहुँचाई थी, वह फकीर फिर मेरे देखने में कभी नहीं आया। मेरे मन में श्री साईबाबा के दर्शन की, जिनके लिए फकीर ने मुझसे कहा था, बड़ी तीव्र उत्कंठा हुई। मैंने सोचा कि जो फकीर मेरे घर पर आया

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

था, वह साईबाबा के अरिरेक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। जिन्होंने मुझे कृपाकर दर्शन दिये और मेरी इस प्रकार सहायता की, उन्हें ३५ रुपये का लालच कैसे हो सकता है ? इसके विपरीत वे अहेतुक ही आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर ले जाने का पूरा प्रयत्न करते हैं।”

“ जब चोरी गई राशि मुझे पुनःप्राप्त हो गई, तब मेरे हर्ष का पारावार न रहा। मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई और मैं अपना वचन भूल गया। कुलाबा में एक रात्रि को मैंने साईबाबा को स्वप्न में देखा। तभी मुझे अपनी शिरड़ी यात्रा के वचन की स्मृति हो आई। मैं गोवा पहुँचा और वहाँ से एक स्टीमर द्वारा बम्बई पहुँच कर शिरड़ी जाना चाहता था। परन्तु जब मैं किनारे पर पहुँचा तो देखा कि स्टीमर खचाखच भर चुका है और उसमें बिलकुल भी जगह नहीं है। कैप्टन ने तो मुझे चढ़ने न दिया, परन्तु एक अपरिचित चपरासी के कहने पर मुझे स्टीमर में बैठने की अनुमति मिल गई और मैं इस प्रकार बम्बई पहुँचा। फिर रेलगाड़ी में बैठकर यहाँ पहुँच गया। बाबा के सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने में मुझे कोई शंका नहीं है। देखो तो, हम कौन हैं और कहाँ हमारा घर? हमारे भाग्य कितने अच्छे हैं कि बाबा हमारी चुराई गई राशि वापस दिलाकर हमें यहाँ खींच कर लाए। आप शिरड़ीवासी हम लोगों की अपेक्षा सहस्रगुने श्रेष्ठ और भाग्यशाली हैं, जो बाबा के साथ हँसते-खेलते, मधुर भाषण करते और कई वर्षों से उनके समीप रहते हो। यह आप लोगों के गत जन्मों के शुभ संस्कारों का ही प्रभाव है, जो कि बाबा को यहाँ खींच लाया है। श्री साई ही हमारे लिए दत्त हैं। उन्होंने ही हमसेप्रतिज्ञा कराई तथा जहाज में स्थान दिलाया और हमें यहाँ लाकर अपनी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता का अनुभव कराया।”

श्रीमती औरंगाबादकर

सोलापुर के सखाराम औरंगाबादकर की पत्नी २७ वर्ष की दीर्घ अवधि के पश्चात् भी निःसन्तान ही थीं। उन्होंने सन्तानप्राप्ति के निमित्त देवी और देवताओं की बहुत मन्त्रते की, परन्तु फिर भी उनकी मनोकामना सिद्ध न हुई। तब वे सर्वथा निराश होकर अन्तिम प्रयत्न करने के विचार से अपने सौतेले पुत्र श्री विश्वनाथ को साथ ले शिरड़ी आई और वहाँ बाबा की सेवा कर, दो माह रुकीं। जब भी वे मस्जिद को जातीं तो बाबा को भक्त-गण से घिरे हुए पातीं। उनकी इच्छा बाबा से एकान्त में भेंट कर सन्तानप्राप्ति के लिये प्रार्थना करने की थी, परन्तु कोई योग्य अवसर उनके हाथ न लग सका। अन्त में उन्होंने शामा से कहा कि “ जब बाबा एकान्त में हों तो मेरे लिए प्रार्थना कर देना।” शामा ने कहा कि “ बाबा का तो खुला दरबार है। फिर भी यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा, परन्तु यश देना तो ईश्वर के हाथ है। भोजन के समय तुम आँगन में नारियल और उदबत्ती लेकर बैठना और जब मैं संकेत करूँ तो खड़ी हो जाना।” एक दिन भोजन के उपरान्त जब शामा बाबा के गीले हाथ तौलिये से पोंछ रहे थे, तभी बाबा ने उनके गालपर चिकोटी काट ली। तब शामा क्रोधित होकर कहने लगे कि “देवा ! यह क्या आपके लिए उचित है कि आप इस प्रकार मेरे गालपर चिकोटी काटें? मुझे ऐसे शरारती देव की बिलकुल आवश्यकता नहीं, जो इस प्रकार का आचरण करे। हम आप पर आश्रित हैं, तब क्या यही हमारी घनिष्ठता का फल है?” बाबा ने कहा, “ अरे! तुम तो ७२ जन्मों से मेरे साथ हो। मैंने अब तक तुम्हारे साथ ऐसा कभी नहीं किया। फिर अब तुम मेरे स्पर्श को क्यों बुरा मानते हो?” शामा बोले कि “ मुझे तो ऐसा देव चाहिए, जो हमें सदा प्यार करे और नित्य नया-नया मिष्ठान्न खाने को दे। मैं तुमसे किसी प्रकार के आदर की इच्छा नहीं रखता और न मुझे स्वर्ग आदि ही चाहिए। मेरा तो विश्वास सदैव तुम्हारे चरणों में ही जागृत रहे, यही मेरी अभिलाषा है।” तब बाबा बोले कि “ हाँ, सचमुच मैं इसीलिए यहाँ आया हूँ। मैं सदैव तुम्हारा पालन और उदरपोषण करता आया हूँ, इसीलिए मुझे तुमसे अधिक स्नेह है।”

जब बाबा अपनी गादी पर विराजमान हो गए, तभी शामा ने उस स्त्री को संकेत किया। उसने ऊपर आकर बाबा को प्रणाम कर उन्हें नारियल और ऊदबत्ती भेंट की। बाबा ने नारियल हिलाकर देखा तो वह सूखा था और बजता था। बाबा ने शामा से कहा कि “यह तो हिल रहा है। सुनो, यह क्या कहता है?” तभी शामा ने तुरन्त कहा कि “ यह बाई प्रार्थना करती हैं कि ठीक इसी प्रकार इनके पेट में भी बच्चा गुड़गुड़ करे, इसलिए आशीर्वादसहित यह नारियल इन्हें लौट दो।” तब फिर बाबा बोले कि “ क्या नारियल से भी सन्तान की उत्पत्ति होती है? लोग कैसे मूर्ख हैं, जो इस प्रकार की बातें गढ़ते हैं।” शामा ने कहा कि “ मैं आपके वचनों और आशीष की शक्ति से पूर्ण अवगत हूँ और आपके एक शब्द मात्र से ही इस बाई को बच्चों का ताँता लग जाएगा। आप तो टाल रहे हैं और आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं। इस प्रकार कुछ देर तक वार्तालाप चलता रहा। बाबा बार-बार नारियल फोड़ने को कहते थे, परन्तु शामा बार-बार यही हठ पकड़े हुए थे कि इसे उस बाई को दे दें। अन्त में बाबा ने कह दिया कि “ इसको

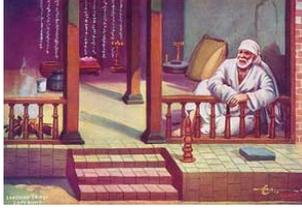
श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

पुत्र की प्राप्ति हो जाएँगी।” तब शामा ने पूछा कि “ कब तक?” बाबा ने उत्तर दिया कि “१२ मास में।” अब नारियल को फोड़कर उसके दो टुकड़े किये गए। एक भाग तो उन दोनों ने खाया और दूसरा भाग उस स्त्री को दिया गया।

तब शामा ने उस बाई से कहा कि “ प्रिय बहिन ! तुम मेरे वचनों की साक्षी हो। यदि १२ मास के भीतर तुमको सन्तान न हुई तो मैं इस देव के सिर पर ही नारियल फोड़कर इसे मस्जिद से निकाल दूँगा और यदि मैं इसमें असफल रहा तो मैं अपने को माधव नहीं कहूँगा। जो कुछ भी मैं कह रहा हूँ, इसकी सार्थकता तुम्हें शीघ्र ही विदित हो जाएगी।”

एक वर्ष में ही उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और जब वह बालक पाँच मास का था, उसे लेकर वह अपने पतिसहित बाबा के श्री चरणों में उपस्थित हुई। पति-पत्नी दोनों ने उन्हें प्रणाम किया और कृतज्ञ पिता (श्रीमान् औरंगाबादकर) ने पाँच सौ रुपये भेंट किए, जो बाबा के घोड़े श्याम कर्ण के लिए छत बनाने के काम आए।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



चावड़ी का समारोह

इस अध्याय में हम कुछ थोड़ी सी वेदान्तिक विषयों पर प्रारम्भिक दृष्टि से समालोचना कर चावड़ी के भव्य समारोह का वर्णन करेंगे।

प्रारम्भ

धन्य हैं श्रीसाई, जिनका जैसा जीवन था, वैसी ही अवर्णनीय लीला विलास और क्रियाओं से पूर्ण नित्य के कार्यक्रम भी। कभी तो वे समस्त सांसारिक कार्यों से अलिप्त रहकर कर्मकाण्डी से प्रतीत होते और कभी ब्रह्मानन्द और कभी आत्मज्ञान में निमग्न रहा करते थे। कभी वे अनेक कार्य करते हुए भी उनसे असंबद्ध रहते थे। यद्यपि कभी कभी वे पूर्ण निष्क्रिय प्रतीत होते, तथापि वे आलसी नहीं थे। प्रशान्त महासागर की तरह सदैव जागरूक रहकर भी वे गंभीर, प्रशान्त और स्थिर दिखाई देते थे। उनकी प्रकृति का वर्णन तो सामर्थ्य से परे है।

यह तो सर्व विदित है कि वे बालब्रह्मचारी थे। वे सदैव पुरुषों को भ्राता तथा स्त्रियों को माता या बहन सदृश ही समझा करते थे। उनकी संगति द्वारा हमें जिस अनुपम ज्ञान की उपलब्धि हुई है, उसकी विस्मृति मृत्युपर्यन्त न होने पाए, ऐसी उनके श्रीचरणों में हमारी विनम्र प्रार्थना है। हम समस्त भूतों में ईश्वर का ही दर्शन करें और नामस्मरण की रसानुभूति करते हुए हम उनके मोहविनाशक चरणों की अनन्य भाव से सेवा करते रहें, यही हमारी आकांक्षा है।

हेमाङ्गपंत ने अपने दृष्टिकोण द्वारा आवश्यकतानुसार वेदान्त का विवरण देकर चावड़ी के समारोह का वर्णन निम्न प्रकार किया है:-

चावड़ी का समारोह

बाबा के शयनागार का वर्णन पहले ही हो चुका है। वे एक दिन मस्जिद में और दूसरे दिन चावड़ी में विश्राम किया करते थे और यह कार्यक्रम उनकी महासमाधि पर्यन्त चालू रहा। भक्तों ने चावड़ी में नियमित रूप से उनका पूजन-अर्चन १० दिसम्बर, सन् १९०९ से आरम्भ कर दिया था।

अब उनके चरणाम्बुओं का ध्यान कर, हम चावड़ी के समारोह का वर्णन करेंगे। इतना मनमोहक दृश्य था वह कि देखने वाले ठिठक-ठिठक कर रह जाते थे और अपनी सुध-बुध भूल यही आकांक्षा करते रहते थे कि यह दृश्य कभी हमारी आँखों से ओझल न हो। जब चावड़ी में विश्राम करने की उनकी नियमित रात्रि आती तो उस रात्रि को भक्तों का अपार जन-समुदाय मस्जिद के सभा मंडप में एकत्रित होकर घण्टों तक भजन किया करता था। उस मंडप के एक ओर सुसज्जित रथ रखा रहता था और दूसरी ओर तुलसी वृन्दावन था। सारे रसिक जन सभा-मंडप में ताल, चिपलिस, करताल, मृदंग, खंजरी और ढोल आदि नाना प्रकार के वाद्य लेकर भजन करना आरम्भ कर देते थे। इन सभी भजनानंदी भक्तों को चुम्बक की समान आकर्षित करनेवाले तो श्री साईबाबा ही थे।

मस्जिद के आँगन को देखो तो भक्त-गण बड़ी उमंगों से नाना प्रकार के मंगल-कार्य सम्पन्न करने में संलग्न थे। कोई तोरण बाँधकर दीपक जला रहे थे, तो कोई पालकी और रथ का श्रृंगार कर निशानादि हाथों में लिए हुए थे। कहीं-कहीं श्री साईबाबा की जयजयकार से आकाशमंडल गुंजित हो रहा था। दीपों के प्रकाश से जगमगाती मस्जिद ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो आज मंगलदायिनी दीपावली स्वयं शिरड़ी में आकर विराजित हो गई हो। मस्जिद के बाहर दृष्टिपात किया तो द्वार पर श्री साईबाबा का पूर्ण सुसज्जित घोड़ा श्यामसुंदर खड़ा था। श्री साईबाबा अपनी गादी पर शान्त मुद्रा में विराजित थे कि इसी बीच भक्त-मंडलीसहित तात्या पाटील ने आकर उन्हें

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

तैयार होने की सूचना देते हुए उठने में सहायता की। घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण तात्या पाटील उन्हें 'मामा' कहकर संबोधित किया करते थे। बाबा सदैव की भाँति अपनी वही कफनी पहन कर बगल में सटका दबाकर चिलम और तम्बाखू संग लेकर कंधे पर एक कपड़ा डालकर चलने को तैयार हो गए। तभी तात्या पाटील ने उनके शीश पर एक सुनहरा जरी का शेला डाल दिया। इसके पश्चात् स्वयं बाबा ने धूनी को प्रज्वलित रखने के लिए उसमें कुछ लकड़ियाँ डालकर तथा धूनी के समीप के दीपक को बाएँ हाथ से बुझाकर चावड़ी को प्रस्थान कर दिया। अब नाना प्रकार के वाद्य बजने आरम्भ हो गए और उनसे भाँति-भाँति के स्वर निकलने लगे। सामने रंग-बिरंगी आतिशबाजी चलने लगी और नर-नारी भाँति-भाँति के वाद्य बजाकर उनकी कीर्ति के भजन गाते हुए आगे-आगे चलने लगे। कोई आनंद-विभोर को नृत्य करने लगा तो कोई अनेक प्रकार के ध्वज और निशान लेकर चलने लगे। जैसे ही बाबा ने समजिद की सीढ़ी पर अपने चरण रखे, वैसे ही भालदार ने ललकार कर उनके प्रस्थान की सूचना दी। दोनों ओर से लोग चँवर लेकर खड़े हो गए और उन पर पंखा झलने लगे फिर पथ पर दूर तक बिछे हुए कपड़ों के ऊपर से समारोह आगे बढ़ने लगा। तात्या पाटील उनका बायाँ तथा म्हालसापति दायाँ हाथ पकड़ कर तथा बापूसाहेब जोग उनके पीछे छत्र लेकर चलने लगे। इनके आगे-आगे पूर्ण सुसज्जित अश्व श्यामसुंदर चल रहा था हरि और उनके पीछे भजन मंडली तथा भक्तों का समूह वाद्यों की ध्वनि के संग हरि और साई नाम की ध्वनि, जिससे आकाश गूँज उठता था, उच्चारित करते हुए चल रहा था। अब समारोह चावड़ी के कोने पर पहुँचा और सारा जनसमुदाय अत्यन्त आनंदित तथा प्रफुल्लित दिखलाई पड़ने लगा। जब कोने पर पहुँचकर बाबा चावड़ी के सामने खड़े हो गए, उस समय उनके मुख-मंडल की दिव्यप्रभा बड़ी अनोखी प्रतीत होने लगी और ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो अरुणोदय के समय बाल रवि क्षितिज पर उदित हो रहा हो। उत्तराभिमुख होकर वे एक ऐसी मुद्रा में खड़े हो गए, जैसे कोई किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो। वाद्य पूर्ववत् ही बजते रहे और वे अपना दाहिना हाथ थोड़ी देर ऊपर-नीचे उठाते रहे। वादक बड़े जोरों से वाद्य बजाने लगे और इसी समय काकासाहेब दीक्षित गुलाल और फूल चाँदी की थाली में लेकर सामने आए और बाबा के ऊपर पुष्प तथा गुलाल की वर्षा करने लगे। बाबा के मुखमंडल पर रक्तिम आभा जगमगाने लगी और सब लोग तृप्त-हृदय हो कर उस रस -माधुरी का आस्वादन करने लगे। इस मनमोहक दृश्य और अवसर का वर्णन शब्दों में करने में लेखनी असमर्थ है। भाव-विभोर होकर भक्त म्हालसापति तो मधुर नृत्य करने लगे, परन्तु बाबा की अभंग एकाग्रता देखकर सब भक्तों को महान् आश्चर्य होने लगा। एक हाथ में लालटेन लिये तात्या पाटील बाबा के बाँई ओर और आभूषण लिए म्हालसापति दाहिनी ओर चले। देखो तो, कैसे सुन्दर समारोह की शोभा तथा भक्ति का दर्शन हो रहा है। इस दृश्य की झाँकी पाने के लिए ही सहस्त्रों नर-नारी, क्या अमीर और क्या फकीर, सभी वहाँ एकत्रित थे। अब बाबा मंद-मंद गति से आगे बढ़ने लगे और उनके दोनों ओर भक्तगण भक्तिभाव सहित, संग-संग चलने लगे और चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण दिखाई पड़ने लगा। सम्पूर्ण वायुमंडल भी खुशी से झूम उठा और इस प्रकार समारोह चावड़ी पहुँचा। अब वैसा दृश्य भविष्य में कोई न देख सकेगा। अब तो केवल उसकी याद करके आँखों के सम्मुख उस मनोरम अतीत की कल्पना से ही अपने हृदय की प्यास शान्त करनी पड़ेगी।

चावड़ी की सजावट भी अति उत्तम प्रकार से की गई थी। उत्तम बढ़िया चाँदनी, शीशे और भाँति-भाँति के हाँडी-लालटेन (गैस बत्ती) लगे हुए थे। चावड़ी पहुँचने पर तात्या पाटील आगे बढ़े और आसन बिछाकर तकिये के सहारे उन्होंने बाबा को बैठाया। फिर उनको एक बढ़िया अंगरखा पहनाया और भक्तों ने नाना प्रकार से उनकी पूजा की, उन्हें स्वर्ण-मुकुट धारण कराया, तथा फूलों और जवाहरों की मालाएँ उनके गले में पहनाईं। फिर ललाट पर कस्तुरी का वैष्णवी तिलक तथा मध्य में बिन्दी लगाकर दीर्घ काल तक उनकी ओर अपलक निहारते रहे। उनके सिर का कपड़ा बदल दिया गया और उसे ऊपर ही उठाये रहे, क्योंकि सभी शंकित थे कि कहीं वे उसे फेंक न दें, परन्तु बाबा तो अन्तर्यामी थे और उन्होंने भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही पूजन करने दिया। इन आभूषणों से सुसज्जित होने के उपरान्त तो उनकी शोभा अवर्णनीय थी।

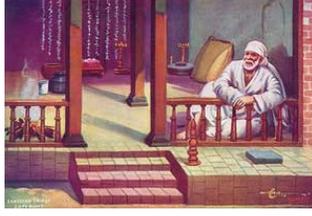
नानासाहेब निमोणकर ने वृत्ताकार एक सुन्दर छत्र लगाया जिसके केंद्र में एक छड़ी लगी हुई थी। बापूसाहेब जोग ने चाँदी की एक सुन्दर थाली में पादप्रक्षालन किया और अर्घ्य देने के पश्चात् उत्तम विधि से उनका पूजन-अर्चन किया और उनके हाथों में चन्दन लगाकर पान का बीड़ा दिया। उन्हें आसन पर बिठलाया गया। फिर तात्या पाटील तथा अन्य सब भक्त-गण उनके श्री-चरणों पर अपने-अपने शीश झुकाकर प्रणाम करने लगे। जब वे तकिये के सहारे बैठ गए, तब भक्तगण दोनों ओर से चँवर और पंखे झलने लगे। शामा ने चिलम तैयार कर तात्या पाटील को दी। उन्होंने एक फूँक लगाकर चिलम प्रज्वलित की और उसे बाबा को पीने को दिया। उनके चिलम पी लेने के

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

पश्चात् फिर वह भगत म्हालसापति को तथा बाद में सब भक्तों को दी गई। धन्य है वह निर्जीव चिलम। कितना महान् तप है उसका, जिसने कुम्हार द्वारा पहले चक्र पर घुमाने, धूप में सुखाने, फिर अग्नि में तपाने जैसे अनेक संस्कार पाए। तब कहीं उसे बाबा के कर-स्पर्श तथा चुम्बन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब यह सब कार्य समाप्त हो गया, तब भक्तगण ने बाबा को फूलमालाओं से लाद दिया और सुगन्धित फूलों के गुलदस्ते उन्हें भेंट किए। बाबा तो वैराग्य के पूर्ण अवतार थे और वे उन हीरे-जवाहरात व फूलों के हारों तथा इस प्रकार की सजधज में कब अभिरुचि लेने वाले थे? परन्तु भक्तों के सच्चे प्रेमवश ही, उनके इच्छानुसार पूजन करने में उन्होंने कोई आपत्ति न की। अन्त में मांगलिक स्वर में वाद्य बजने लगे और बापूसाहेब जोग ने बाबा की यथाविधि आरती की। आरती समाप्त होने पर भक्तों ने बाबा को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर सब एक-एक करके अपने घर लौटने लगे। तब तात्या पाटील ने उन्हें चिलम पिलाकर गुलाब जल, इत्र इत्यादि लगाया और विदा लेते समय एक गुलाब का पुष्प दिया। तभी बाबा प्रेमपूर्वक कहने लगे कि “ तात्या, मेरी देखभाल भली भाँति करना। तुम्हें घर जाना है तो जाओ, परन्तु रात्रि में कभी-कभी आकर मुझे देख भी जाना।” तब स्वीकारात्मक उत्तर देकर तात्या पाटील चावड़ी से अपने घर चले गए। फिर बाबा ने बहुत सी चादरें बिछाकर स्वयं अपना बिस्तर लगाकर विश्राम किया।

अब हम भी विश्राम करें और इस अध्याय को समाप्त करते हुए हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रतिदिन शयन के पूर्व श्री साईबाबा और चावड़ी के समारोह का ध्यान अवश्य कर लिया करें।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥



बाबा की हंडी, नानासाहेब द्वारा देव-मूर्ति की उपेक्षा, नैवेद्य वितरण, छाँछ का प्रसाद ।

गत अध्याय में चावड़ी के समारोह का वर्णन किया गया है। अब इस अध्याय में बाबा की हंडी तथा कुछ अन्य विषयों का वर्णन होगा।

प्रस्तावना

हे सद्गुरु साई! तुम धन्य हो! हम तुम्हें नमन करते हैं। तुमने विश्व को सुख पहुँचाया और भक्तों का कल्याण किया। तुम उदार हृदय हो। जो भक्तगण तुम्हारे अभय चरण-कमलों में अपने को समर्पित कर देते हैं, तुम उनकी सदैव रक्षा एवं उद्धार किया करते हो। भक्तों के कल्याण और परित्राण के निमित्त ही तुम अवतार लेते हो। ब्रह्म के साँचे में शुद्ध आत्मारूपी द्रव्य ढाला गया और उसमें से ढलकर जो मूर्ति निकली, वही सन्तों के संत श्री साईबाबा हैं। साई स्वयं ही 'आत्माराम' और चिरआनन्द धाम हैं। इस जीवन के समस्त कार्यों को नश्वर जानकर उन्होंने भक्तों को निष्काम और मुक्त किया।

बाबा की हंडी

मानव धर्म-शास्त्र में भिन्न-भिन्न युगों के लिए भिन्न-भिन्न साधनाओं का उल्लेख किया गया है। सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान का विशेष माहात्म्य है। सर्व प्रकार के दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है। जब मध्याह्न के समय हमें भोजन प्राप्त नहीं होता, तब हम विचलित हो जाते हैं। ऐसी ही स्थिति अन्य प्राणियों की अनुभव कर जो किसी भिक्षुक या भूखे को भोजन देता है, वही श्रेष्ठ दानी है। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि “ अन्न ही ब्रह्म है और उसीसे सब प्राणियों की-उत्पत्ति होती है तथा उससे ही वे जीवित रहते हैं और मृत्यु के उपरांत उसी में लय भी हो जाते हैं।” जब कोई अतिथि दोपहर के समय अपने घर आता है तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम उसका अभिनंदन कर उसे भोजन कराएँ। अन्य दान जैसे-धन, भूमि और वस्त्र इत्यादि देने में तो पात्रता का विचार करना पड़ता है, परन्तु अन्न के लिए विशेष सोचविचार की आवश्यकता नहीं है। दोपहर के समय कोई भी अपने द्वार पर आए, उसे शीघ्र भोजन कराना हमारा परम कर्तव्य है। प्रथमतः लूले, लंगड़े, अन्धे या रुग्ण भिखारियों को; फिर उन्हें, जो हाथ पैर से स्वस्थ हैं और उन सभी के बाद अपने संबन्धियों को भोजन कराना चाहिए। अन्य सभी की अपेक्षा पंगुओं को भोजन कराने का महत्त्व अधिक है। अन्नदान के बिना अन्य सब प्रकार के दान जैसे ही अपूर्ण हैं, जैसे कि चन्द्रमा बिना तारे, पदक बिना हार, कलश बिना मन्दिर, कमलरहित तालाब, भक्तिरहित भजन, सिन्दूररहित सुहागिन, मधुर स्वरविहीन गायन, नमक बिना पक्वान्न। जिस प्रकार अन्य भोज्य पदार्थों में दाल उत्तम समझी जाती है, उसी प्रकार समस्त दानों में अन्नदान श्रेष्ठ है। अब देखें कि बाबा किस प्रकार भोजन तैयार करके उसका वितरण किया करते थे।

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि बाबा अल्पाहारी थे और वे थोड़ा बहुत जो कुछ भी खाते थे, वह उन्हें केवल दो गृहों से ही भिक्षा में उपलब्ध हो जाया करता था। परन्तु जब उनके मन में सभी भक्तों को भोजन कराने की इच्छा होती तो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संपूर्ण व्यवस्था वे स्वयं किया करते थे। वे किसी पर निर्भर नहीं रहते थे और न ही किसी को इस संबंध में कष्ट ही दिया करते थे। प्रथमतः वे स्वयं बाजार जाकर सब वस्तुएँ-अनाज, आटा, नमक, मिर्ची, जीरा, खोपरा और अन्य मसाले आदि वस्तुएँ नगद दाम देकर खरीद लाया करते थे। यहाँ तक कि पीसने का कार्य भी वे स्वयं ही किया करते थे। मस्जिद के आँगन में ही एक भट्टी बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करके हंडी के ठीक नाप से पानी भर देते थे। हंडी दो प्रकार की थी- एक छोटी और दूसरी बड़ी। एक में सौ और दूसरी में पाँच सौ व्यक्तियों का भोजन तैयार हो सकता था। कभी वे मीठे चावल बनाते और कभी मांसमिश्रित चावल(पुलाव) बनाते थे। कभी-कभी दाल और मुटकुले भी बना लेते थे। पत्थर की सिल पर महीन मसाला पीस कर

हंडी में डाल देते थे। भोजन रुचिकर बने, इसका वे भरसक प्रयत्न किया करते थे। ज्वार के आटे को पानी में उबाल कर उसमें छाँछ मिलाकर अंबिल (आमटी) बनाते और भोजन के साथ सब भक्तों को समान मात्रा में बाँट देते थे। भोजन ठीक बन रहा है या नहीं, यह जानने के लिए वे अपनी कफनी की बाँहें ऊपर चढ़ाकर निर्भय हो उबलती हंडी में हाथ डाल देते और उसे चारों ओर घुमाया करते थे। ऐसा करने पर भी उनके हाथ पर न कोई जलन का चिह्न और न चेहरे पर ही कोई व्यथा की रेखा प्रतीत हुआ करती थी। जब पूर्ण भोजन तैयार हो जाता, तब वे मस्जिद से बर्तन मँगाकर मौलवी से फातिहा पढ़ने को कहते थे; फिर वे म्हालसापति तथा तात्या पाटील के प्रसाद का भाग पृथक् रखकर शेष भोजन गरीब और अनाथ लोगों को खिलाकर उन्हें तृप्त करते थे। सचमुच वे लोग धन्य थे। कितने भाग्यशाली थे वे, जिन्हें बाबा के हाथ का बना और परोसा हुआ भोजन खाने को प्राप्त हुआ ?

यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि क्या वे शाकाहारी और मांसाहारी भोज्य पदार्थों का प्रसाद सभी को बाँटा करते थे? इसका उत्तर बिलकुल सीधा और सरल है। जो लोग मांसाहारी थे, उन्हें हण्डी में से दिया जाता था तथा शाकाहारियों को उसका स्पर्श तक न होने देते थे। न कभी उन्होंने किसी को मांसाहार का प्रोत्साहन ही दिया और न ही उनकी आंतरिक इच्छा थी कि किसी को इसके सेवन की आदत लग जाए। यह एक अति पुरातन अनुभूत नियम हैं कि जब गुरुदेव प्रसाद वितरण कर रहे हों, तभी यदि शिष्य उसके ग्रहण करने में शंकि त हो जाए तो उसका अधःपतन हो जाता है। यह अनुभव करने के लिए कि शिष्य गण इस नियम का किस अंश तक पालन करते हैं, वे कभी-कभी परीक्षा भी ले लिया करते थे। उदाहरणार्थ एक एकादशी के दिन उन्होंने दादा केलकर को कुछ रुपए देकर कुछ मांस खरीद लाने को कहा। दादा केलकर पूरे कर्मकांडी थे और प्रायः सभी नियमों का जीवन में पालन किया करते थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि द्रव्य, अन्न और वस्त्र इत्यादि गुरु को भेंट करना पर्याप्त नहीं है। केवल उनकी आज्ञा ही शीघ्र कार्यान्वित करने से वे प्रसन्न हो जाते हैं। यही उनकी दक्षिणा है। दादा शीघ्र कपड़े पहन कर एक थैला लेकर बाजार जाने के लिये उद्यत हो गए। तब बाबा ने उन्हें लौटा लिया और कहा कि तुम न जाओ, अन्य किसी को भेज दो। दादा ने अपने नौकर पाण्डू को इस कार्य के निमित्त भेजा। उसको जाते देखकर बाबा ने उसे भी वापस बुलाने को कहकर यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर उन्होंने दादा से कहा कि देखो तो नमकीन पुलाव कैसा पका है? दादा ने यूँही मुँहदेखी कह दिया कि अच्छा है। तब वे कहने लगे कि तुमने न अपनी आँखों से ही देखा और न जिह्वा से स्वाद लिया, फिर तुमने यह कैसे कह दिया कि उत्तम बना है? थोड़ा ढक्कन हटाकर तो देखो। बाबा ने दादा की बाँह पकड़ी और बलपूर्वक बर्तन में डालकर बोले- थोड़ासा इसमें से निकालो और अपना कट्टरपन छोड़कर चख कर देखो। जब माँ का सच्चा प्रेम बच्चे पर उमड़ आता है, तब माँ उसे चिमटी भरती है, परन्तु उसका चिल्लाना या रोना देखकर वह उसे अपने हृदय से लगाती है। इसी प्रकार बाबा ने सात्विक मातृप्रेम के वश ही दादा का इस प्रकार हाथ पकड़ा। यथार्थ में कोई भी सन्त या गुरु कभी भी अपने कर्मकांडी शिष्य को वर्जित भोज्य के लिए आग्रह करके अपनी अपकीर्ति कराना पसन्द न करेगा।

इस प्रकार यह हंडी का कार्यक्रम सन् १९१० तक चला और फिर स्थगित हो गया। जैसा पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, दास गणू ने अपने कीर्तन द्वारा समस्त बम्बई प्रांत में बाबा की अधिक कीर्ति फैलाई। फलतः इस प्रान्त से लोगों के झुंड के झुंड शिरड़ी को आने लगे और थोड़े ही दिनों में शिरड़ी पवित्र तीर्थ-क्षेत्र बन गया। भक्तगण बाबा को नैवेद्य अर्पित करने के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ लाते थे, जो इतनी अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता था कि फकीरों और भिखारियों को सन्तोषपूर्वक भोजन कराने पर भी बच जाता था। नैवेद्य वितरण करने की विधि का वर्णन करने से पूर्व हम नानासाहेब चाँदोरकर की उस कथा का वर्णन करेंगे, जो स्थानीय देवी-देवताओं और मूर्तियों के प्रति बाबा की सम्मान-भावना की द्योतक है।

नानासाहेब द्वारा देव-मूर्ति की उपेक्षा

कुछ व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार बाबा को ब्राह्मण तथा कुछ उन्हें यवन समझा करते थे, परन्तु वास्तव में उनकी कोई जाति न थी। उनकी और ईश्वर की केवल एक जाति थी। १ कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं जानता कि वे किस कुल में जनमे और उनके मातापिता कौन थे। फिर उन्हें हिन्दू या यवन कैसे घोषित किया जा सकता है? यदि वे यवन होते तो मस्जिद में सदैव धूनी और तुलसी वृन्दावन ही क्यों लगाते और शंख, घण्टे तथा अन्य संगीत वाद्य क्यों बजने देते? हिन्दुओं की विविध प्रकार की पूजाओं को क्यों स्वीकार करते? यदि सचमुच यवन

होते तो उनके कान क्यों छिदे होते तथा वे हिन्दू मन्दिरों का स्वयं जीर्णोद्धार क्यों करवाते? उन्होंने हिन्दुओं की मूर्तियों तथा देवी-देवताओं की जरा सी उपेक्षा भी कभी सहन न की।

१. (क) जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।

(ख) जाति पाँति पूँछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।। - तुलसी

एक बार नानासाहेब चाँदोरकर अपने सादू (साली के पति) श्री. बिनीवले के साथ शिरड़ी आए। जब वे मस्जिद में पहुँचे, बाबा वार्तालाप करते हुए अनायास ही क्रोधित होकर कहने लगे कि "तुम दीर्घकाल से मेरे सान्निध्य में हो, फिर भी ऐसा आचरण क्यों करते हो?" नानासाहेब प्रथमतः इन शब्दों का कुछ भी अर्थ न समझ सके। अतः उन्होंने अपना अपराध समझाने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि "तुम कब कोपरगाँव आए और फिर वहाँ से कैसे शिरड़ी आ पहुँचे?" तब नानासाहेब को अपनी भूल तुरन्त ही ज्ञात हो गई। उनका यह नियम था कि शिरड़ी आने से पूर्व वे कोपरगाँव में गोदावरी के तट पर स्थित श्री दत्त का पूजन किया करते थे। परन्तु रिश्तेदार के दत्त-उपासक होने पर भी इस बार विलम्ब होने के भय से उन्होंने उनको भी दत्त मंदिर में जाने से हतोत्साहित किया और वे दोनों सीधे शिरड़ी चले आए थे। अपना दोष स्वीकार कर उन्होंने कहा कि "गोदावरी में स्नान करते समय पैर में एक बड़ा काँटा चुभ जाने के कारण अधिक कष्ट हो गया था।" बाबा ने कहा कि "यह तो बहुत छोटासा दंड था" और उन्हें भविष्य में ऐसे आचरण के लिए सदैव सावधान रहने की चेतावनी दी।

नैवेद्य-वितरण

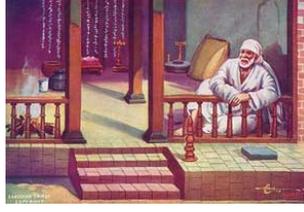
अब हम नैवेद्य-वितरण का वर्णन करेंगे। आरती समाप्त होने पर बाबा से आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर जब भक्तगण अपने-अपने घर चले जाते, तब बाबा परदे के भीतर प्रवेश कर निम्बर के सहारे पीठ टेककर भोजन के लिए आसन ग्रहण करते थे। भक्तों की दो पंक्तियाँ उनके समीप बैठा करती थीं। भक्तगण नाना प्रकार के नैवेद्य, पूरी, माण्डे, पेड़ा, बर्फी, बासुंदी उपमा (सांजा) अम्बे मोहर (भात) इत्यादि थाली में सजा-सजा कर लाते और जब तक वे नैवेद्य स्वीकार न कर लेते, तब तक भक्तगण बाहर ही प्रतीक्षा किया करते थे। समस्त नैवेद्य एकत्रित कर दिया जाता, तब वे स्वयं ही भगवान् को नैवेद्य अर्पण कर स्वयं ग्रहण करते थे। उसमें से कुछ भाग बाहर प्रतीक्षा करने वालों को देकर शेष भीतर बैठे हुए भक्त पा लिया करते थे। जब बाबा सबके मध्य में आ विराजते, तब दोनों पंक्तियों में बैठे हुए भक्त तृप्त होकर भोजन किया करते थे। बाबा प्रायः शामा और निमोणकर से भक्तों को अच्छी तरह भोजन कराने और प्रत्येक की आवश्यकता का सावधानपूर्वक ध्यान रखने को कहते थे। वे दोनों भी इस कार्य को बड़ी लगन और हर्ष से करते थे। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक ग्रास भक्तों को पोषक और सन्तोषदायक होता था। कितना मधुर, पवित्र, प्रेमरसपूर्ण भोजन था वह? सदा मांगलिक और पवित्र।

छाँछ (मट्ठा) का प्रसाद

इस सत्संग में बैठकर एक दिन जब हेमाडपंत पूर्णतः भोजन कर चुके, तब बाबा ने उन्हें एक प्याला छाँछ पीने को दिया। उसके श्वेत रंग से वे प्रसन्न तो हुए, परन्तु उदर में जरा सी भी गुंजाइश न होने के कारण उन्होंने केवल एक घूँट ही पिया। उनका यह उपेक्षात्मक व्यवहार देखकर बाबा ने कहा कि "सब पी जाओ। ऐसा सुअवसर अब कभी न पाओगे।" तब उन्होंने पूरी छाँछ पी ली, किन्तु उन्हें बाबा के सांकेतिक वचनों का मर्म शीघ्र ही विदित हो गया, क्योंकि इस घटना के थोड़े दिनों के पश्चात् ही बाबा समाधिस्थ हो गए।

पाठको! अब हमें अवश्य ही हेमाडपंत के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने तो छाँछ का प्याला पिया, परन्तु वे हमारे लिए यथेष्ट मात्रा में श्री साई-लीला रूपी अमृत दे गए। आओ, हम उस अमृत के प्याले पर प्याल पीकर सन्तुष्ट और सुखी हो जाएँ।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥



बाबा का संस्कृत ज्ञान। गीता के एक श्लोक की बाबा द्वारा टीका, समाधि मन्दिर का निर्माण।

इस अध्याय में बाबा ने गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाया है। कुछ लोगों की ऐसी धारणा थी कि बाबा को संस्कृत भाषा का ज्ञान न था और नानासाहेब की भी उनके प्रति ऐसी ही धारणा थी। इसका खंडन हेमाङ्गंत ने मूल मराठी ग्रंथ के ५० वें अध्याय में किया है। दोनों अध्यायों का विषय एक-सा होने के कारण वे यहाँ सम्मिलित रूप में लिखे जाते हैं।

प्रस्तावना

शिरडी के सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है? श्री द्वारकामाई भी धन्य हैं, जहाँ श्री साई ने आकर निवास किया और वहीं समाधिस्थ हुए। शिरडी के नरनारी भी धन्य हैं, जिन्हें स्वयं साई ने पधारकर अनुगृहीत किया और जिनके प्रेमवश ही वे दूर से चलकर वहाँ आये। शिरडी तो पहले एक छोटा सा ग्राम था, परन्तु श्री साई के सम्पर्क से विशेष महत्त्व पाकर वह एक तीर्थ-क्षेत्र में परिणत हो गया।

शिरडी की नारियाँ भी परम भाग्यशालिनी हैं, जिनका उनपर असीम और अभिन्न विश्वास प्रशंसा के परे है। आठों प्रहर-कामकाज करते, पीसते, अनाज निकालते, गृहकार्य करते हुए वे उनकी कीर्ति का गुणगान किया करती थीं। उनके प्रेम की उपमा ही क्या हो सकती है? वे अत्यन्त मधुर गायन करती थीं, जिससे गायकों और श्रोतागण के मन को परम शांति मिलती थी।

बाबा द्वारा टीका

किसी को स्वप्न में भी ज्ञात न था कि बाबा संस्कृत के भी ज्ञाता हैं। एक दिन नानासाहेब चाँदोरकर को गीता के एक श्लोक का अर्थ समझाकर उन्होंने लोगों को विस्मय में डाल दिया। इसका संक्षिप्त वर्णन सेवानिवृत्त मामलतदार श्री. बी. व्ही. देव ने मराठी साईलीला पत्रिका के भाग ४, (स्फुट विषय पृष्ठ ५६३) में छपवाया है। इसका संक्षिप्त विवरण **Sai Baba's charters and sayings** पुस्तक के ६१ वें पृष्ठ पर और **The Wonderous Saint Sai Baba** के पृष्ठ ३६ पर भी छपा है। ये दोनों पुस्तकें श्री. बी. व्ही. नरसिंह स्वामी द्वारा रचित हैं। श्री. बी. व्ही. देव ने अंग्रेजी में तारीख २७-९-१९३६ को एक वक्तव्य दिया है, जो कि नरसिंह स्वामी द्वारा रचित पुस्तक के " भक्तों के अनुभव, भाग ३" में छपा गया है। श्री. देव को इस विषय की प्रथम सूचना नानासाहेब चाँदोरकर से प्राप्त हुई थी। इसलिए उनका कथन नीचे उद्धृत किया जाता है। नानासाहेब चाँदोरकर वेदान्त के विद्वान् विद्यार्थियों में से एक थे। उन्होंने अनेक टीकाओं के साथ गीता का अध्ययन भी किया था तथा उन्हें अपने इस ज्ञान का अहंकार भी था। उनका मत था कि बाबा संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसीलिए बाबा ने उनके इस भ्रम का निवारण करने का विचार किया। यह उस समय की बात है, जब भक्तगण अल्प संख्या में आते थे। बाबा भक्तों से एकान्त में देर तक वार्तालाप किया करते थे। नानासाहेब इस समय बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे और अस्पष्ट शब्दों में कुछ गुनगुना रहे थे।

बाबा - नाना, तुम धीरे-धीरे क्या कह रहो हो?

नाना - मैं गीता के एक श्लोक का पाठ कर रहा हूँ।

बाबा - कौन-सा श्लोक है वह?

नाना - यह भगवद्गीता का एक श्लोक है।

बाबा - जरा उसे उच्च स्वर में कहो।

तब नाना भगवद्गीता के चौथे अध्याय का ३४ वाँ श्लोक कहने लगे:-

“ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।”

बाबा - नाना, क्या तुम्हें इसका अर्थ विदित है?

नाना - जी, महाराज।

बाबा- यदि विदित है तो मुझे भी सुनाओ।

नाना - इसका अर्थ है-तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों को भली प्रकार दंडवत् कर, सेवा और निष्कपट भाव से किए गए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान। वे ज्ञानी, जिन्हें सद्बस्तु (ब्रह्म) की प्राप्ति हो चुकी है, तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे।

बाबा- नाना, मैं इस प्रकार का संकुल भावार्थ नहीं चाहता। मुझे तो प्रत्येक शब्द और उसका भाषांतरित उच्चारण करते हुए व्याकरणसम्मत अर्थ समझाओ।

अब नाना एक-एक शब्द का अर्थ समझाने लगे।

बाबा- नाना, क्या केवल साष्टांग नमस्कार करना ही पर्याप्त है?

नाना- नमस्कार करने के अतिरिक्त मैं 'प्रणिपात' का कोई दूसरा अर्थ नहीं जानता।

बाबा- 'परिप्रश्न' का क्या अर्थ है?

नाना- प्रश्न पूछना।

बाबा- 'प्रश्न' का क्या अर्थ है?

नाना- वही (प्रश्न पूछना)।

बाबा- यदि 'परिप्रश्न' और 'प्रश्न' दोनों का अर्थ एक ही है, तो फिर व्यास ने 'परि' उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया? क्या व्यास की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी?

नाना- मुझे तो 'परिप्रश्न' का अन्य अर्थ विदित नहीं है।

बाबा- 'सेवा?' किस प्रकार की सेवा से यहाँ आशय है?

नाना- वही जो हम लोग सदा आपकी करते रहते हैं।

बाबा- क्या यह 'सेवा' पर्याप्त है?

नाना-और इससे अधिक 'सेवा' का कोई विशिष्ट अर्थ मुझे ज्ञात नहीं है।

बाबा- दूसरी पंक्ति के "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं" में क्या तुम 'ज्ञानं' शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग कर इसका अर्थ कह सकते हो?

नाना- जी हाँ।

बाबा- कौन सा शब्द?

नाना- अज्ञानम्।

बाबा- 'ज्ञानं' के बजाय उस शब्द को जोड़ कर क्या इस श्लोक का अर्थ निकलता है?

नाना- जी नहीं, शांकर भाष्य में इस प्रकार की कोई व्याख्या नहीं है।

बाबा- नहीं है, तो क्या हुआ? यदि 'अज्ञान' शब्द के प्रयोग से कोई उत्तम अर्थ निकल सकता है तो उसमें क्या आपत्ति है?

नाना- मैं नहीं जानता कि उसमें 'अज्ञान' शब्द का किस प्रकार प्रयोग होगा।

बाबा- कृष्ण ने अर्जुन को क्यों ज्ञानियों या तत्त्वदर्शियों को नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और सेवा करने का उपदेश किया था? क्या स्वयं कृष्ण तत्त्वदर्शी नहीं थे? वस्तुतः स्वयं ज्ञान स्वरूप?

नाना- जी हाँ, वे ज्ञानावतार थे। परन्तु मुझे यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने अर्जुन से अन्य ज्ञानियों के लिए क्यों कहा?

बाबा- क्या तुम्हारी समझ में नहीं आया?

अब नाना हतप्रभ हो गए। उनका घमंड चूर हो चुका था। तब बाबा स्वयं इस प्रकार अर्थ समझाने लगे। ज्ञानियों को केवल साष्टांग नमस्कार करना पर्याप्त नहीं है। हमें सद्गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना चाहिए।

केवल प्रश्न पूछना पर्याप्त नहीं। किसी कुप्रवृत्ति या पाखंड, या वाक्य-जाल में फँसाने, या कोई त्रुटि निकालने की भावना से प्रेरित होकर प्रश्न नहीं करना चाहिए, वरन् प्रश्न उत्सुकतापूर्वक केवल मोक्ष या आध्यात्मिक पथ पर उन्नति प्राप्त करने की भावना से ही प्रेरित होकर करना चाहिए।

मैं तो सेवा करने या अस्वीकार करने में पूर्ण स्वतंत्र हूँ, जो ऐसी भावना से कार्य करता है, वह सेवा नहीं कही जा सक ती। उसे अनुभव करना चाहिए कि मुझे अपने शरीर पर कोई अधिकार नहीं है। इस शरीर पर तो गुरु का ही अधिकार है और केवल उनकी सेवा के निमित्त ही वह विद्यमान है।

इस प्रकार आचरण करने से तुम्हें सद्गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी, जैसा कि पूर्व श्लोक में बताया गया है।

नाना को यह समझ में नहीं आ सका कि गुरु किस प्रकार 'अज्ञान' की शिक्षा देते हैं।

बाबा - ज्ञान का उपदेश कैसा है? अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाली आत्मानुभूति की शिक्षा। अज्ञान का नाश करना ज्ञान है। (गीता के श्लोक १८-६६^१ पर ज्ञानेश्वरी भाष्य की ओवी १३९६ में इस प्रकार वर्णन है:- हे अर्जुन! यदि तुम्हारी निद्रा और स्वप्न भंग हो, तब तुम स्वयं हो। वह इसी प्रकार है। गीता के अध्याय ५-१६ के आगे टीका में लिखा है:- क्या ज्ञान में अज्ञान नष्ट करने के अतिरिक्त कोई और भेद भी है?)

१. सर्वधर्मान्परित्यज्यं मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यमि मा शुचः ॥ गीता १८ ॥ ६६ ॥

अंधकार नष्ट करने का अर्थ प्रकाश है। जब हम द्वैत नष्ट करने की चर्चा करते हैं, तो हम अद्वैत की बात करते हैं। जब हम अंधकार नष्ट करने की बात करते हैं तो उसका अर्थ है कि प्रकाश की बात करते हैं। यदि हम अद्वैत की स्थिति का अनुभव करना चाहते हैं तो हमें द्वैत की भावना नष्ट करनी चाहिये। यही अद्वैत स्थिति प्राप्त होने का लक्षण है। द्वैत में रहकर अद्वैत की चर्चा कौन कर सकता है? जब तक वैसी स्थिति प्राप्त न हो, तब तक क्या उसका कोई अनुभव कर सकता है?

शिष्य श्री सद्गुरु के समान ही ज्ञान की मूर्ति है? उन दोनों में केवल अवस्था, उच्च अनुभूति, अद्भुत, अलौकिक सत्य, अद्वितीय योग्यता और ऐश्वर्य योग में भिन्नता होती है। सद्गुरु निर्गुण निराकार सच्चिदानंद है। वस्तुतः वे केवल मनुष्य जाति और विश्व के कल्याण के निमित्त स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण करते हैं, परन्तु नर-देह धारण करने पर भी उनकी सत्ता की अनंतता में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। उनकी आत्मोपलब्धि, लाभ, दैविक शक्ति और ज्ञान सदा एक-से रहते हैं। शिष्य का भी तो यथार्थ में वही स्वरूप है, परन्तु अनगिनत जन्मों के कारण उसे अज्ञान उत्पन्न हो जाता है और उसीके वशीभूत होकर उसे भ्रम हो जाता है तथा अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप की विस्मृति हो जाती है। गीता का अध्याय ५/१ देखो--

१. नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ गीता ५-१५ ॥

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।" जैसा कि वहाँ बतलाया गया है, उसे भ्रम हो जाता है कि "मैं" जीव हूँ, एक प्राणी हूँ, दुर्बल और असहाय हूँ। गुरु इन अज्ञानरूपी जड़ को काटकर फेंक देता है और इसीलिए उसे उपदेश करना पड़ता है। ऐसे शिष्य को जो जन्म-जन्मांतरों से यह धारणा करता आया है कि " मैं तो जीव, दुर्बल और असहाय हूँ, " गुरु सैकड़ों जन्मों तक ऐसी शिक्षा देते हैं कि तुम ही ईश्वर हो, सर्वशक्तिमान् और समर्थ हो, तब कहीं जाकर उसे किंचित् मात्र भास होता है कि यथार्थ में " मैं ही ईश्वर हूँ।" सतत भ्रम में रहने के कारण

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

ही उसे ऐसा भास होता है कि " मैं शरीर हूँ, एक जीव हूँ, तथा ईश्वर और यह विश्व मुझ से एक भिन्न वस्तु है।" यह तो केवल एक भ्रम ही है, जो अनेक जन्म धारण करने के कारण उत्पन्न हो गया है। कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी को सुखदुःख की प्राप्ति होती है। इस भ्रम, इस त्रुटि और अज्ञान की जड़ को नष्ट करने के लिये हमें स्वयं अपने से प्रश्न करना चाहिए कि यह अज्ञान कैसे पैदा हो गया? वह अज्ञान कहाँ है? और इस त्रुटि का दिग्दर्शन कराने को ही उपदेश कहते हैं।

अज्ञान के नीचे लिखे उदाहरण हैं:-

- (१) मैं एक जीव (प्राणी) हूँ।
- (२) शरीर ही आत्मा है। (मैं शरीर हूँ)
- (३) ईश्वर, विश्व और जीव भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं।
- (४) मैं ईश्वर नहीं हूँ।
- (५) शरीर आत्मा नहीं है, इसका अबोध।
- (६) इसका ज्ञान न होना कि ईश्वर, विश्व और जीव सब एक ही हैं।

जब तक इन त्रुटियों का उसे दिग्दर्शन नहीं कराया जाता, तब तक शिष्य को यह कभी अनुभव नहीं हो सकता कि ईश्वर, जीव और शरीर क्या हैं; उनमें क्या अन्वोन्याश्रित सम्बन्ध है तथा वे परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न हैं अथवा एक ही हैं? इस प्रकार की शिक्षा देना और भ्रम को दूर करना ही 'अज्ञान' का ज्ञानोपदेश कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि जीव जो स्वयं ज्ञान-मूर्ति है, उसे ज्ञान की क्या आवश्यकता है? उपदेश का हेतु तो केवल त्रुटि को उसकी दृष्टि में लेकर अज्ञान को नष्ट करना है। बाबा ने आगे कहा:-

- (१) ' प्रणिपात ' का अर्थ है ' शरणागति'।
- (२) शरणागत होना चाहिए तन, मन, धन से (अर्थात् अनन्य भाव से)।
- (३) कृष्ण अन्य ज्ञानियों की ओर क्यों संकेत करते हैं? सद्भक्त के लिए तो प्रत्येक तत्त्व वासुदेव है। (भगवद्गीता १ - अ. ७-१९ अर्थात् कोई भी गुरु अपने भक्त के लिए कृष्ण है) और गुरु शिष्य को वासुदेव मानता है और कृष्ण इन दोनों को अपने प्राण और आत्मा। (भगवद्गीता २ अ. ७-१८ पर ज्ञानदेव की टीका) चूँकि श्रीकृष्ण को विदित था कि ऐसे अनेक भक्त और गुरु विद्यमान हैं, इसलिए उनका महत्त्व बढ़ाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से ऐसा उल्लेख किया ।

१. बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ गीता ७ ॥ १९ ॥

२. उदारः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ गीता ७ ॥ १८ ॥

समाधि - मन्दिर का निर्माण

बाबा जो कुछ करना चाहते थे, उसकी चर्चा वे कभी नहीं करते थे, प्रत्युत आसपास ऐसा वातावरण और परिस्थिति निर्माण कर देते थे कि लोगों को उनका बाद में निश्चित परिणाम देखकर बड़ा अचम्भा होता था। समाधि होता था। समाधि-मन्दिर इस विषय का उदाहरण है। नागपुर के प्रसिद्ध लक्षाधिपति श्रीमान् बापूसाहेब बूटी सहकुटुम्ब शिरडी में रहते थे। एक बार उन्हें विचार आया कि शिरडी में स्वयं का एक वाड़ा होना चाहिए। कुछ समय के पश्चात् जब वे दीक्षित वाड़े में निद्रा ले रहे थे तो उन्हें एक स्वप्न हुआ। बाबा ने स्वप्न में आकार उनसे कहा कि " तुम अपना एक वाड़ा और एक मन्दिर बनवाओ। " शामा भी वहीं शयन कर रहा था और उसने भी ठीक वैसा ही स्वप्न देखा। बापूसाहेब जब उठे तो उन्होंने शामा को रुदन करते देखकर उससे रोने का कारण पूछा। तब शामा कहने लगा:-

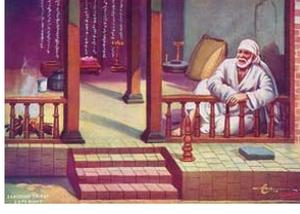
" अभी-अभी मुझे एक स्वप्न आया था कि बाबा मेरे बिलकुल समीप आए और स्पष्ट शब्दों में कहने लगे कि " मन्दिर के साथ वाड़ा बनवाओ। मैं समस्त भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण करूँगा। " बाबा के मधुर और प्रेमपूर्ण शब्द सुनकर मेरा प्रेम उमड़ पड़ा तथा गला रुँध गया और मेरी आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। इसलिए मैं जोर

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

से रोने लगा।” बापूसाहेब बूटी को आश्चर्य हुआ कि दोनों के स्वप्न एक से ही हैं। धनाढ्य तो वे थे ही, उन्होंने वाड़ा निर्माण करने का निश्चय कर लिया और शामा के साथ बैठकर एक नक्शा खींचा। काकासाहेब दीक्षित ने भी उसे स्वीकृत किया और जब नक्शा बाबा के सामने प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने भी तुरंत स्वीकृति दे दी। तब निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया और शामा की देखरेख में नीचे की मंजिल, तहखाना और कुआँ बनकर तैयार हो गए। बाबा भी लेंडी को आते-जाते समय परामर्श दे दिया करते थे। आगे यह कार्य बापूसाहेब जोग को सौंप दिया गया। जब कार्य इसी तरह चल ही रहा था, उसी समय बापूसाहेब जोग को एक विचार आया कि कुछ खुला स्थान भी अवश्य होना चाहिए, जिसके बीचोंबीच ‘ मुरलीधर’ की मूर्ति की भी स्थापना की जाए। उन्होंने अपना विचार शामा को प्रकट किया तथा बाबा से अनुमति प्राप्त करने को कहा। जब बाबा वाड़े के पास से जा रहे थे, तभी शामा ने बाबा से प्रश्न कर दिया। शामा का प्रश्न सुनकर बाबा ने स्वीकृति देते हुए कहा कि “ जब मन्दिर का कार्य पूर्ण हो जाएगा, तब मैं स्वयं वहाँ निवास करूँगा, ” और वाड़े की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा “ जब वाड़ा सम्पूर्ण बन जाएगा, तब हम सब लोग उसका उपभोग करेंगे। वहीं रहेंगे, घूमेंगे, फिरेंगे और एक दूसरे को हृदय से लगायेंगे तथा आनन्दपूर्वक विचरेंगे।” जब शामा ने बाबा से पूछा कि क्या यह मूर्ति के मध्ये कक्ष की नींव के कार्य आरम्भ का शुभ मुहूर्त है? तब उन्होंने स्वीकारत्मक उत्तर दे दिया। तभी शामा ने एक नारियल लाकर फोड़ा और कार्य प्रारम्भ कर दिया। ठीक समय में सब कार्य पूर्ण हो गया और ‘ मुरलीधर’ की एक सुन्दर मूर्ति बनवाने का प्रबन्ध किया गया। अभी उसका निर्माण कार्य प्रारम्भ भी न हो पाया था कि एक नवीन घटना घटित हो गई। बाबा की स्थिति चिंताजनक हो गई और ऐसा दिखने लगा कि वे अब देह त्याग देंगे। बापूसाहेब बहुत उदास और निराश से हो गए। उन्होंने सोचा कि यदि बाबा चले गए तो वाड़ा उनके पवित्र चरण-स्पर्श से वंचित रह जाएगा और मेरा सब (लगभग एक लाख) रुपया व्यर्थ हो जाएगा, परन्तु अंतिम समय बाबा के श्री मुख से निकले हुए वचनों ने (“मुझे वाड़े में ही रखना”) केवल बूटीसाहेब को ही सान्त्वना नहीं पहुँचाई, वरन् अन्य लोगों को भी शांति मिली। कुछ समय के पश्चात् बाबा का पवित्र शरीर मुरलीधर की मूर्ति के स्थान पर रख दिया गया। बाबा स्वयं ‘ मुरलीधर’ बन गए और वाड़ा साईबाबा का समाधि मंदिर।

उनकी अगाध लीलाओं की थाह कोई न पा सका। श्री. बापूसाहेब बूटी धन्य हैं, जिनके वाड़े में बाबा का दिव्य और पवित्र पार्थिव शरीर अब विश्राम कर रहा है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



श्री साईबाबा की कथाएँ

(१) श्री. बी.व्ही. देव की माता के उद्यापन उत्सव में सम्मिलित होना, और (२) हेमाङ्गपंत के भोजन-समारोह में चित्र के रूप में प्रगट होना।

इस अध्याय में दो कथाओं का वर्णन है:

(१) बाबा किस प्रकार श्रीमान् देव की माँ के यहाँ उद्यापन में सम्मिलित हुए । और (२) बाबा किस प्रकार होली त्योहार के भोजन समारोह के अवसर पर बाँद्रा में हेमाङ्गपंत के गृह पधारें।

प्रस्तावना

श्री साई समर्थ धन्य हैं, जिनका नाम बड़ा सुन्दर है! वे सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों ही विषयों में अपने भक्तों को उपदेश देते हैं और भक्तों को अपना जीवनध्येय प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर उन्हें सुखी बनाते हैं। श्री साई अपना वरद हस्त भक्तों के सिर पर रखकर उन्हें अपनी शक्ति प्रदान करते हैं। वे भेदभाव की भावना को नष्ट कर उन्हें अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति कराते हैं। भक्त लोग साई के चरणों पर भक्तिपूर्वक गिरते हैं और श्री साईबाबा भी भेदभावरहित होकर प्रेमपूर्वक भक्तों को हृदय से लगाते हैं। वे भक्तगण में ऐसे सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे वर्षाऋतु में समुद्र नदियों से मिलता तथा उन्हें अपनी शक्ति और मान देता है।

श्रीमती देव का उद्यापन उत्सव

श्री. बी.व्ही. देव डहाणू (जिला ठाणे) में मामलतदार थे। उनकी माता ने लगभग पच्चीस या तीस व्रत लिए थे, इसलिए अब उनका उद्यापन करना आवश्यक था। उद्यापन के साथ-साथ सौ-दो सौ ब्राह्मणों का भोजन भी होने वाला था। श्री देव ने एक तिथि निश्चित कर बापूसाहेब जोग को एक पत्र शिरडी भेजा । उसमें उन्होंने लिखा कि “ तुम मेरी ओर से श्री साईबाबा को उद्यापन और भोजन में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि उनकी अनुपस्थिति में उत्सव अपूर्ण ही रहेगा। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अवश्य डहाणू पधार कर दास को कृतार्थ करेंगे। ” बापूसाहेब जोग ने बाबा को वह पत्र पढ़कर सुनाया। उन्होंने उसे ध्यानपूर्वक सुना और शुद्ध हृदय से प्रेषित निमंत्रण जानकर वे कहने लगे कि “ जो मेरा स्मरण करता है, उसका मुझे सदैव ही ध्यान रहता है। मुझे यात्रा के लिए कोई भी साधन - गाड़ी, ताँगा या विमान की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो जो प्रेम से पुकारता है, उसके सम्मुख मैं अविलम्ब ही प्रगट हो जाता हूँ। ” उसे एक सुखद पत्र भेज दो कि मैं और दो व्यक्तियों के साथ अवश्य आऊँगा। जो कुछ बाबा ने कहा था, जोग ने श्री. देव को पत्र में लिखकर भेज दिया। पत्र पढ़कर देव को बहुत प्रसन्नता हुई, परन्तु उन्हें ज्ञात था कि बाबा केवल राहाता, रुई और नीमगाँव के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं जाते हैं। फिर उन्हें विचार आया कि उनके लिए क्या असंभव है? उनकी जीवनी अपार चमत्कारों से भरी हुई है। वे तो सर्वव्यापी हैं। वे किसी भी वेश में अनायास ही प्रगट होकर अपना वचन पूर्ण कर सकते हैं।

उद्यापन के कुछ दिन पूर्व एक संन्यासी डहाणू स्टेशन पर उतरा, जो बंगाली संन्यासियों के समान वेशभूषा धारण किए हुए था। दूर से देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि वह गौरक्षा संस्था का स्वयंसेवक है। वह सीधा स्टेशनमास्टर के पास गया और उनसे चंदे के लिए निवेदन करने लगा। स्टेशनमास्टर ने उसे सलाह दी कि तुम यहाँ के मामलेदार के पास जाओ और उनकी सहायता से ही तुम यथेष्ट चंदा प्राप्त कर सकोगे। ठीक उसी समय मामलेदार भी वहाँ पहुँच गए। तब स्टेशन मास्टर ने संन्यासी का परिचय उनसे कराया और वे दोनों स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर बैठे वार्तालाप करते रहे। मामलेदार ने बताया कि यहाँ के प्रमुख नागरिक श्री. रावसाहेब नरोत्तम सेठी ने धर्मार्थ कार्य के निमित्त चन्दा एकत्र करने की एक नामावली बनाई है। अतः अब एक और दूसरी नामावली

बनाना कुछ उचित सा प्रतीत नहीं होता। इसलिए श्रेयस्कर तो यही होगा कि आप दो-चार माहे के पश्चात् पुनः यहाँ दर्शन दें। यह सुनकर संन्यासी वहाँ से चला गया और एक माह पश्चात् श्री. देव के घर के सामने तौंगे से उतरा। तब उसे देखकर देव ने मन ही मन सोचा कि वह चन्दा माँगने ही आया है। उसने श्री. देव को कार्यव्यस्त देखकर उनसे कहा “ श्रीमान् ! मैं चन्दे के निमित्त नहीं, वरन् भोजन करने के लिए आया हूँ। ” देव ने कहा “ बहुत आनन्द की बात है, आपका सहर्ष स्वागत है। ”

संन्यासी - मेरे साथ दो बालक और हैं।

देव - तो कृपया उन्हें भी साथ ले आइए।

भोजन में अभी दो घण्टे का विलम्ब था। इसलिये देव ने पूछा - यदि आज्ञा हो तो मैं किसी को उनकी बुलाने को भेज दूँ।

संन्यासी - आप चिंता न करें, मैं निश्चित समय पर उपस्थित हो जाऊँगा। देव ने उनसे दोहर में पधारने की प्रार्थना। ठीक १२ बजे दोपहर को तीन मूर्तियाँ वहाँ पहुँचीं और भोज में सम्मिलित होकर भोजन करके वहाँ से चली गईं।

उत्सव समाप्त होने पर देव ने बापूसाहेब जोग को पत्र में उलाहना देते हुए बाबा पर वचन-भंग करने का आरोप लगाया। जोग वह पत्र लेकर बाबा के पास गए, परन्तु पत्र पढ़ने के पूर्व ही बाबा उनसे कहने लगे- “ अरे! मैंने वहाँ जाने का वचन दिया था तो मैंने उसे धोखा नहीं दिया। उसे सूचित करो कि मैं अन्य दो व्यक्तियों के साथ भोजन में उपस्थित था, परन्तु जब वह मुझे पहचान ही न सका, तब निमंत्रण देने का कष्ट ही क्यों उठाया था? उसे लिखो कि उसने सोचा होगा कि वह संन्यासी चन्दा माँगने आया है। परन्तु क्या मैंने उसका सन्देह दूर नहीं कर दिया था कि दो अन्य व्यक्तियों के साथ मैं भोजन के लिए आऊँगा और क्या वे त्रिमूर्तियाँ ठीक समय पर भोजन में सम्मिलित नहीं हुईं? देखो! मैं अपना वचन पूर्ण करने के लिए अपना सर्वस्व निष्ठावर कर दूँगा। मेरे शब्द कभी असत्य न निकलेंगे। ” इस उत्तर से जोग के हृदय में बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने पूर्ण उत्तर लिखकर देव को भेज दिया। जब देव ने उत्तर पढ़ा तो उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। उन्हें अपने आप पर बढ़ा क्रोध आ रहा था कि मैंने व्यर्थ ही बाबा पर दोषारोपण किया। वे आश्चर्यचकित से हो गये कि किस तरह मैंने संन्यासी की पूर्व यात्रा से धोखा खाया, जो कि चन्दा माँगने आया था और संन्यासी के शब्दों का अर्थ भी न समझ पाया कि “ अन्य दो व्यक्तियों के साथ मैं भोजन को आऊँगा। ”

इस कथा से विदित होता है कि जब भक्त अनन्य भाव से सद्गुरु की शरण में आता है, तभी उसे अनुभव होने लगता है कि उसके सब धार्मिक कृत्य उत्तम प्रकार से चलते और निर्विघ्न समाप्त होते रहते हैं।

हेमाङ्गपत का होली त्यौहार पर भोजन -समारोह

अब हम एक दूसरी कथा लें, जिसमें बतलाया गया है कि बाबा ने किस प्रकार चित्र के रूप में प्रगट हो कर अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण की।

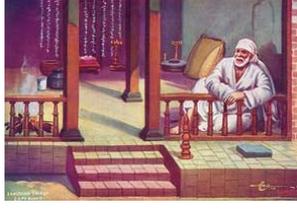
सन् १९१७ में होली पूर्णिमा के दिन हेमाङ्गपत को एक स्वप्न हुआ। बाबा उन्हें एक संन्यासी के वेश में दिखे और उन्होंने हेमाङ्गपत को जगाकर कहा कि “ मैं आज दोपहर को तुम्हारे यहाँ भोजन करने आऊँगा। ” जागृत करना भी स्वप्न का एक भाग ही था। परन्तु जब उनकी निद्रा सचमुच में भंग हुई तो उन्हें न तो बाबा और न कोई अन्य संन्यासी ही दिखाई दिया। वे अपनी स्मृति दौड़ाने लगे और अब उन्हें संन्यासी के प्रत्येक शब्द की स्मृति हो आई। यद्यपि वे बाबा के सान्निध्य का लाभ गत सात वर्षों से उठा रहे थे तथा उन्हीं का निरंतर ध्यान किया करते थे, परंतु यह कभी भी आशा न थी कि बाबा भी कभी उनके घर पधार कर भोजन कर उन्हें कृतार्थ करेंगे। बाबा के शब्दों से अति हर्षित होते हुए वे अपनी पत्नी के समीप गए और कहा कि “ आज होली का दिन है। एक संन्यासी अतिथि भोजन के लिये अपने यहाँ पधारेंगे। इसलिए भात थोड़ा अधिक बनाना। उनकी पत्नी ने अतिथि के सम्बन्ध में पूछताछ की। प्रत्युत्तर में हेमाङ्गपत ने बात गुप्त न रखकर स्वप्न का वृत्तान्त सत्य-सत्य बतला दिया। तब वे सन्देहपूर्वक पूछने लगीं कि क्या यह भी कभी संभव है कि वे शिरङ्गी के उत्तम पक्वान्न त्यागकर इतनी दूर बान्द्रा में अपना रुखा-सूखा भोजन करने को पधारेंगे? हेमाङ्गपत ने विश्वास दिलाया कि उनके लिये क्या असंभव है? हो सकता है, वे स्वयं न आएँ और कोई अन्य स्वरूप धारण कर यहाँ पधारें। इस कारण थोड़ा अधिक भात बनाने में हानि ही क्या है? इसके उपरान्त भोजन की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। होलिका पूजन प्रारम्भ हो गया और पत्तलें बिछाकर उनके चारों ओर राँगोली डाल दी गई। दो पंक्तियाँ बनाई गईं और बीच में अतिथि के लिए स्थान छोड़ दिया गया। घर के सभी कुटुम्बी-पुत्र, नाती, लड़कियाँ, दामाद इत्यादि ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

लिया और भोजन परोसना भी प्रारम्भ हो गया। जब भोजन परोसा जा रहा था तो प्रत्येक व्यक्ति उस अज्ञात अतिथि की उत्सुकतापूर्वक राह देख रहा था। जब मध्याह्न भी हो गया और कोई भी न आया, तब द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दी गई। अन्न शुद्धि के लिए घृत वितरण हुआ, जो कि भोजन प्रारम्भ करने का संकेत है। वैश्वदेव (अग्नि) को औपचारिक आहुति देकर श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पण किया गया। फिर सभी लोग जैसे ही भोजन प्रारम्भ करने वाले थे कि इतने में सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आहट स्पष्ट आने लगी। हेमाडपंत ने शीघ्र उठकर साँकल खोली और दो व्यक्तियों (१) अली मुहम्मद और (२) मौलाना हरसू मुजावर को द्वार पर खड़े हुए पाया। इन लोगों ने जब देखा कि भोजन परोसा जा चुका है और केवल प्रारम्भ करना ही शेष है तो उन्होंने विनीत भाव में कहा कि आपको बड़ी असुविधा हुई, इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप अपनी थाली छोड़कर दौड़े आये हैं तथा अन्य लोग भी आपकी प्रतीक्षा में हैं, इसलिए आप अपनी यह संपदा सँभालिए। इससे सम्बन्धित आश्चर्यजनक घटना किसी अन्य सुविधाजनक अवसर पर सुनाएँगे - ऐसा कहकर उन्होंने पुराने समाचार पत्रों में लिपटा हुआ एक पैकेट निकालकर उसे खोलकर मेज पर रख दिया। कागज के आवरण को ज्यों ही हेमाडपंत ने हटाया तो उन्हें बाबा का एक बड़ा सुन्दर चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ। बाबा का चित्र देखकर वे द्रवित हो गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी और उनके समूचे शरीर में रोमांच हो आया। उनका मस्तक बाबा के श्री चरणों पर झुक गया। वे सोचने लगे कि बाबा ने इस लीला के रूप में ही मुझे आशीर्वाद दिया है। कौतूहलवश उन्होंने अली मुहम्मद से प्रश्न किया कि बाबा का यह मनोहर चित्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ? उन्होंने बताया कि मैंने इसे एक दूकान से खरीदा था। इसका पूर्ण विवरण मैं किसी अन्य समय के लिए शेष रखता हूँ। कृपया आप अब भोजन कीजिए, क्योंकि सभी आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। हेमाडपंत ने उन्हें धन्यवाद देकर नमस्कार किया और भोजन गृह में आकर अतिथि के स्थान पर चित्र को मध्ये में रखा तथा विधिपूर्वक नैवेद्य अर्पण किया। सब लोगों ने ठीक समय पर भोजन प्रारम्भ कर दिया। चित्र में बाबा का सुन्दर मनोहर रूप देखकर प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्नता हुई और इस घटना पर आश्चर्य भी हुआ कि वह सब कैसे घटित हुआ? इस प्रकार बाबा ने हेमाडपंत को स्वप्न में दिए गए अपने वचनों को पूर्ण किया।

इस चित्र की कथा का पूर्ण विवरण, अर्थात् अली मुहम्मद को चित्र कैसे प्राप्त हुआ और किस कारण से उन्होंने उसे लाकर हेमाडपंत को भेंट किया, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



चित्र की कथा, चिंदियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी के पठन की कथा ।

गत अध्याय में वर्णित घटना के नौ वर्ष पश्चात् अली मुहम्मद हेमाडपंत से मिले और वह पिछली कथा निम्नलिखित रूप में सुनाई:-

“ एक दिन बम्बई में घूमते-फिरते मैंने एक दुकानदार से बाबा का चित्र खरीदा। उसे फ्रेम कराया और अपने घर (मध्य बम्बई की बस्ती में) लाकर दीवाल पर लगा दिया। मुझे बाबा से स्वाभाविक प्रेम था। इसलिए मैं प्रतिदिन उनका श्री दर्शन किया करता था। जब मैंने आपको (हेमाडपंत को) वह चित्र भेंट किया, उसके तीन माह पूर्व मेरे पैर में सूजन आने के कारण शल्यचिकित्सा भी हुई थी। मैं अपने साले नूर मुहम्मद के यहाँ पड़ा हुआ था। खुद मेरे घर पर तीन माह से ताला लगा था और उस समय वहाँ पर कोई न था। केवल प्रसिद्ध बाबा अब्दुल रहमान, मौलाना साहेब, मुहम्मद हुसेन, साई बाबा, ताजुद्दीन बाबा और अन्य सन्त चित्रों के रूप में ही वहाँ विराजमान थे, परन्तु कालचक्र ने उन्हें भी न छोड़ा। मैं वहाँ (बम्बई) बीमार पड़ा हुआ था तो फिर मेरे घर में उन लोगों (फोटो) को कष्ट क्यों हो ? ऐसा समझ में आता है कि वे भी आवागमन (जन्म और मृत्यु) के चक्कर से मुक्त नहीं हैं ! अन्य चित्रों की गति तो उनके भाग्यानुसार ही हुई, परन्तु केवल श्री साईबाबा का ही चित्र कैसे बच निकला, इसका रहस्योद्घाटन अभी तक कोई नहीं कर सका है! इससे श्री साईबाबा की सर्वव्यापकता और उनकी असीम शक्ति का पता चलता है।”

“कुछ वर्ष पूर्व मुझे मुहम्मद हुसेन थारिया टोपण से सन्त बाबा अब्दुल रहमान का चित्र प्राप्त हुआ था, जिसे मैंने अपने साले नूर मुहम्मद पीरभाई को दे दिया, जो गत आठ वर्षों से उसकी मेज पर पड़ा हुआ था। एक दिन उसकी दृष्टि इस चित्र पर पड़ी, तब उसने उसे फोटोग्राफर के पास ले जाकर उसकी बड़ी फोटो बनवाई और उसकी कापियाँ अपने कई रिश्तेदारों और मित्रों में वितरित कीं। उनमें से एक प्रति मुझे भी मिली थी, जिसे मैंने अपने घर की दीवार पर लगा रखा था। नूर मुहम्मद सन्त अब्दुल रहमान के शिष्य थे। जब सन्त अब्दुल रहमान साहेब का आम दरबार लगा हुआ था, तभी नूर मुहम्मद उन्हें वह फोटो भेंट करने के हेतु उनके समक्ष उपस्थित हुए। फोटो को देखते ही वे अति क्रोधित हो नूर मुहम्मद को मारने दौड़े तथा उन्हें बाहर निकाल दिया। तब उन्हें बड़ा दुःख और निराशा हुई। फिर उन्हें विचार आया कि मैंने इतना रुपया व्यर्थ ही खर्च किया, जिसका परिणाम अपने गुरु के क्रोध और अप्रसन्नता का कारण बना। उनके गुरु मूर्तिपूजा के विरोधी थे, इसलिए वे हाथ में फोटो लेकर अपोलो बन्दर पहुँचे और एक नाव किराए पर लेकर बीच समुद्र में वह फोटो विसर्जित कर आए। नूर मुहम्मद ने अपने सब मित्रों सम्बंधियों से भी प्रार्थना कर सब फोटो वापस बुला लिये (कुल छः फोटो थे) और एक मछुए के हाथ से बांद्रा के निकट समुद्र में विसर्जित करा दिए।”

“इस समय मैं अपने साले के घर पर ही था। तब नूर मुहम्मद ने मुझसे कहा कि यदि तुम सन्तों के सब चित्रों को समुद्र में विसर्जित करा दोगे तो तुम शीघ्र स्वस्थ हो जाओगे। यह सुनकर मैंनेजर मेहता को अपने घर पर भेजा और उसके द्वारा घर में लगे हुए सब चित्रों को समुद्र में फिकवा दिया। दो माह पश्चात् जब मैं अपने घर वापस लौटा तो बाबा का चित्र पूर्ववत् लगा देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। मैं समझ न सका कि मेहता ने अन्य सब चित्र तो निकालकर विसर्जित कर दिए, पर केवल यही चित्र कैसे बच गया? तब मैंने तुरन्त ही उसे निकाल लिया और सोचने लगा कि कहीं मेरे साले की दृष्टि इस चित्र पर पड़ गई तो वह इसकी भी इतिश्री कर देगा। जब मैं ऐसा विचार कर ही रहा था कि इस चित्र कौन अच्छी तरह सँभाल कर रख सकेगा, तब स्वयं श्री साईबाबा ने सुझाया कि मौलाना इस्मू मुजावर के पास जाकर उनसे परामर्श करो और उनकी इच्छानुसार ही कार्य करो। मैंने मौलाना साहेब से भेंट की और सब बातें उन्हें बतलाई। कुछ देर विचार करने के पश्चात् वे इस निर्णय पर पहुँचे

कि इस चित्र को आपको (हेमाडपंत) ही भेंट करना उचित है, क्योंकि केवल आप ही इसे उत्तम प्रकार से संभालने के लिए सर्वथा सत्पात्र हैं। तब हम दोनों आप के घर आए और उपयुक्त समय पर ही यह चित्र आपको भेंट कर दिया। इस कथा से विदित होता है कि बाबा त्रिकालज्ञानी थे और कितनी कुशलता से समस्या हल कर भक्तों की इच्छाएँ पूर्ण किया करते थे। निम्नलिखित कथा इस बात का प्रतीक है कि आध्यात्मिक जिज्ञासुओं पर बाबा किस प्रकार स्नेह रखते तथा किस प्रकार उनके कष्ट निवारण कर उन्हें सुख पहुँचाते थे।

चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी का पठन

श्री बी.व्ही. देव, जो उस समय डहाणू के मामलेदार थे, को दीर्घकाल से अन्य धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ ज्ञानेश्वरी के पठन की तीव्र इच्छा थी। (ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता पर श्री ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा रचित मराठी टीका है।) वे भगवद्गीता के एक अध्याय का नित्य पाठ करते तथा थोड़ा बहुत अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे। परन्तु जब भी वे ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो उनके सामने अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जातीं, जिससे वे पाठ करने से सर्वथा वंचित रह जाया करते थे। तीन मास की छुट्टी लेकर वे शिरडी पधारे और तत्पश्चात् वे अपने घर पौड में विश्राम करने के लिए भी गए। अन्य ग्रन्थ तो वे पढ़ा ही करते थे, परन्तु जब ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो नाना प्रकार के क्लुषित विचार उन्हें इस प्रकार घेर लेते कि लाचार होकर उसका पठन स्थगित करना पड़ता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उनको केवल दो चार ओवियाँ पढ़ना भी दुष्कर हो गया, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि जब दयानिधि श्री साई ही कृपा करके इस ग्रन्थ के पठन की आज्ञा देंगे, तभी उसका श्रीगणेश करूँगा। सन् १९१४ के फरवरी मास में वे सहकुटुम्ब शिरडी पधारे। तभी श्री. जोग ने उनसे पूछा कि क्या आप ज्ञानेश्वरी का नित्य पठन करते हैं? श्री. देव ने उत्तर दिया कि "मेरी इच्छा तो बहुत है, परन्तु मैं ऐसा करने में सफलता नहीं पा रहा हूँ। अब तो जब बाबा की आज्ञा होगी, तभी प्रारम्भ करूँगा।" श्री जोग ने सलाह दी कि ग्रन्थ की एक प्रति खरीद कर बाबा को भेंट करो और जब वे अपने करकमलों से स्पर्श कर उसे वापस लौटा दें, तब उसका पठन प्रारम्भ कर देना। श्री. देव ने कहा कि " मैं इस प्रणाली को श्रेयस्कर नहीं समझता, क्योंकि बाबा तो अन्तर्यामी हैं और मेरे हृदय की इच्छा उनसे कैसे गुप्त रह सकती है? क्या वे स्पष्ट शब्दों में आज्ञा देकर मेरी मनोकामना पूर्ण न करेंगे? "

श्री. देव ने जाकर बाबा के दर्शन किए और एक रुपया दक्षिणा भेंट की। तब बाबा ने उनसे बीस रुपये दक्षिणा और माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दिया। रात्रि के समय श्री. देव ने बालकराम से भेंट की और उनसे पूछा " आपने किस प्रकार बाबा की भक्ति तथा कृपा प्राप्त की है? " बालकराम ने कहा " मैं दूसरे दिन आरती समाप्त होने के पश्चात् आपको पूर्ण वृत्तान्त सुनाऊँगा। " दूसरे दिन जब श्री. देवसाहब दर्शनार्थ मस्जिद में आए तो बाबा ने फिर बीस रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष भेंट कर दी। मस्जिद में भीड़ अधिक होने के कारण वे एक ओर एकांत में जाकर बैठ गए। बाबा ने उन्हें बुलाकर अपने समीप बैठा लिया। आरती समाप्त होने के पश्चात् जब सब लोग अपने घर लौट गए, तब श्री. देव ने बालकराम से भेंटकर उनसे उनका पूर्व इतिहास जानने की जिज्ञासा प्रगट की तथा बाबा द्वारा प्राप्त उपदेश और ध्यानादि के संबंध में पुछताछ की। बालकराम इन सब बातों का उत्तर देने ही वाले थे कि इतने में चन्द्रू कोढ़ी ने आकर कहा कि श्री. देव को बाबा ने याद किया है। जब देव बाबा के पास पहुँचे तो उन्होंने प्रश्न किया कि वे किससे और क्या बातचीत कर रहे थे? श्री. देव ने उत्तर दिया कि वे बालकराम से उनकी कीर्ति का गुणगान श्रवण कर रहे थे। तब बाबा ने उनसे पुनः २५ रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी। फिर बाबा उन्हें भीतर ले गए और अपना आसन ग्रहन करने के पश्चात् उन पर दोषारोपण करते हुए कहा कि " मेरी अनुमति के बिना तुमने मेरी चिन्दियों की चोरी की है। " श्री. देव ने उत्तर दिया " भगवन्! जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है। " परन्तु बाबा कहाँ मानने वाले थे? उन्होंने अच्छी तरह से ढूँढ़ने को कहा। उन्होंने खोज की, परन्तु कहीं कुछ भी न पाया। तब बाबा ने क्रोधित होकर कहा कि तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है। तुम्ही चोर हो। तुम्हारे बाल तो सफेद हो गए हैं और इतने वृद्ध होकर भी तुम यहाँ चोरी करने को आये हो। इसके पश्चात् बाबा आपे से बाहर हो गए और उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे बुरी तरह से गालियाँ देने और डाँटने लगे। देव शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे। वे मार पड़ने की भी आशंका कर रहे थे कि एक घण्टे के पश्चात् ही बाबा ने उनसे वाड़े को लौटने को कहा। वाड़े को लौटकर उन्होंने जो कुछ हुआ था, उसका पूर्ण विवरण जोग और बालकराम को सुनाया। दोपहर के पश्चात् बाबा ने सबके साथ देव को भी बुलाया और कहने लगे कि शायद मेरे शब्दों ने इस वृद्ध को पीड़ा पहुँचाई होगी। इन्होंने चोरी की है और इसे ये स्वीकार नहीं करते हैं। इन्होंने देव से पुनः बारह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने एकत्र करके सहर्ष भेंट करते हुए उन्हें नमस्कार किया। तब बाबा देव से कहने लगे कि " तुम आजकल

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

क्या कर रहे हो ?” देवने उत्तर दिया कि “ कुछ भी नहीं।” तब बाबा ने कहा “ प्रतिदिन पोथी (ज्ञानेश्वरी) का पाठ किया करो। जाओ, वाड़े में बैठकर क्रमशः नित्य पाठ करो और जो कुछ भी तुम पढ़ो, उसका अर्थ दूसरों को प्रेम और भक्तिपूर्वक समझाओ। मैं तो तुम्हें सुनहरा शेला (दुपट्टा) भेंट देना चाहता हूँ, फिर तुम दूसरों के समीप चिन्दियों की आशा से क्यों जाते हो ? क्या तुम्हें यह शोभा देता है?”

पोथी पढ़ने की आज्ञा प्राप्त करके देव अति प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि मुझे इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो गई है और अब मैं आनन्दपूर्वक पोथी (ज्ञानेश्वरी) पढ़ सकूँगा। उन्होने पुनः साष्टांग नमस्कार किया और कहा कि “ हे प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ। आपका अबोध शिशु हूँ। मुझे पाठ में सहायता कीजिए। ” अब उन्हें चिन्दियों का अर्थ स्पष्टतया विदित हो गया था। उन्होंने बालकराम से जो कुछ पूछा था, वह चिन्दी स्वरूप था। इन विषयों में बाबा को इस प्रकार का कार्य रुचिकर नहीं था। क्योंकि वे स्वयं प्रत्येक शंका का समाधान करने को सदैव तैयार रहते थे। दूसरों से निरर्थक पूछताछ करना वे अच्छा नहीं समझते थे, इसलिए उन्होंने डाटा और क्रोधित हुए। देव ने इन शब्दों को बाबा का शुभ आशीर्वाद समझा तथा वे सन्तुष्ट होकर घर लौट गए।

यह कथा यहीं समाप्त नहीं होती। अनुमति देने के पश्चात् भी बाबा शान्त नहीं बैठे तथा एक वर्ष के पश्चात् ही वे श्री. देव के समीप गए और उनसे प्रगति के विषय में पूछताछ की। २ अप्रैल, सन् १९१४ गुरुवार को सुबह बाबा ने स्वप्न में देव से पूछा कि “ क्या तुम्हें पोथी समझ में आई?” जब देव ने स्वीकारत्मक उत्तर न दिया तो बाबा बोले कि “ अब तुम कब समझोगे?” देव की आँखों से टप-टप करके अश्रुपात होने लगा और वे रोते हुए बोले कि मैं निश्चयपूर्वक कह रहा हूँ कि हे भगवान् ! जब तक आपकी कृपा रुपी मेघवृष्टि नहीं होती, तब तक उसका अर्थ समझना मेरे लिए सम्भव नहीं है और यह पठन तो भारस्वरूप ही है। तब वे बोले कि मेरे सामने मुझे पढ़कर सुनाओ। तुम पढ़ने में अधिक शीघ्रता किया करते हो। फिर पूछने पर उन्होंने अध्यात्म विषयक अंश पढ़ने को कहा। देव पोथी लाने गए और जब उन्होंने नेत्र खोले तो उनकी निद्रा भंग हो गई थी। अब पाठक स्वयं ही इस बात का अनुमान कर लें कि देव को इस स्वप्न के पश्चात् कितना आनंद प्राप्त हुआ होगा?

(श्री. देव अभी (सन् १९४४) जीवित हैं और मुझे गत ४-५ वर्षों के पूर्व उनसे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जहाँ तक मुझे पता चला है, वह यही है कि वे अभी भी ज्ञानेश्वरी का पाठ किया करते हैं। उनका ज्ञान अगाध और पूर्ण है। यह उनके साई लीला के लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है।) (ता. १९.१०.१९४४)

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



महासमाधि की ओर (१) भविष्य की आगाही -रामचन्द्र दादा पाटील और तात्या कोते पाटील की मृत्यु टालना - लक्ष्मीबाई शिन्दे को दान - अन्तिम क्षण। बाबा ने किस प्रकार समाधि ली, इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

प्रस्तावना

गत अध्यायों की कथाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरुकृपा की केवल एक किरण ही भवसागर के भय से सदा के लिए मुक्त कर देती है तथा मोक्ष का पथ सुगम करके दुःख को सुख में परिवर्तित कर देती है। यदि सद्गुरु के मोहविनाशक पूजनीय चरणों का सदैव स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे समस्त कष्टों और भवसागर के दुःखों का अन्त होकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा हो जाएगा। इसलिए जो अपने कल्याणार्थ चिन्तित हों, उन्हें साई समर्थ के अलौकिक मधुर लीलामृत का पान करना चाहिए। ऐसा करने से उनकी मति शुद्ध हो जाएगी। प्रारम्भ में डॉक्टर पंडित का पूजन तथा किस प्रकार उन्होंने बाबा को त्रिपुंड लगाया, इसका उल्लेख मूल ग्रन्थ में किया गया है। इस प्रसंग का वर्णन ११ वे अध्याय में किया जा चुका है, इसलिए यहाँ उसका दुहराना उचित नहीं है।

भविष्य की आगाही

पाठको! आपने अभी तक केवल बाबा के जीवन-काल की ही कथाएँ सुनी हैं। अब आप ध्यानपूर्वक बाबा के निर्वाणकाल का वर्णन सुनिए। २८ सितम्बर, सन् १९१८ को बाबा को साधारण-सा ज्वर आया। यह ज्वर २-३ दिन तक रहा। इसके उपरान्त ही बाबा ने भोजन करना बिलकुल त्याग दिया। इससे उनका शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण एवं दुर्बल होने लगा। १७ दिनों के पश्चात् १५ अक्टूबर, सन् १९१८ को २ बजकर ३० मिनट पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। (यह समय प्रो. जी.जी. नारके के तारीख ५-११-१९१८ के पत्र के अनुसार है, जो उन्होंने दादासाहेब खापर्डे को लिखा था और उस वर्ष की साईलीलापत्रिका के ७-८ पृष्ठ (प्रथम वर्ष) में प्रकाशित हुआ था)। इसके दो वर्ष पूर्व ही बाबा ने अपने निर्वाण के दिन का संकेत कर दिया था, परन्तु उस समय कोई भी समझ नहीं सका। घटना इस प्रकार है। विजया दशमी के दिन जब लोग सन्ध्या के समय 'सीमोल्लंघन' से लौट रहे थे तो बाबा सहसा ही क्रोधित हो गए। सिर पर का कपड़ा, कफनी और लँगोटी निकालकर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े करके जलती हुई धूनी में फेंक दिए। बाबा के द्वारा आहुति प्राप्त कर धूनी द्विगुणित प्रज्वलित होकर चमकने लगी और उससे भी कहीं अधिक बाबा के मुख-मंडल की कांति चमक रही थी। वे पूर्ण दिगम्बर खड़े थे और उनकी आँखें अंगारे के समान चमक रही थीं। उन्होंने आवेश में आकर उच्च स्वर में कहा कि " लोको! यहाँ आओ, मुझे देखकर पूर्ण निश्चय कर लो कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान।" सभी भय से काँप रहे थे। किसी को भी उनके समीप जाने का साहस न हो रहा था। कुछ समय बीतने के पश्चात् उनके भक्त भागोजी शिन्दे, जो महारोग से पीड़ित थे, साहस कर बाबा के समीप गए और किसी प्रकार उन्होंने लँगोटी बाँध दी और उसने कहा की, बाबा! यह क्या बात है? देव! आज दशहरा (सीमोल्लंघन) का त्योहार है। " तब उन्होंने जमीन पर सटका पटकते हुए कहा कि यह मेरा सीमोल्लंघन है। लगभग ११ बजे तक भी उनका क्रोध शान्त न हुआ और भक्तों को चावड़ी जुलूस निकलने में सन्देह होने लगा। एक घण्टे के पश्चात् वे अपनी सहज स्थिति में आ गए और सदा की भाँति पोशाख पहनकर चावड़ी जुलूस में सम्मिलित हो गए, जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है। इस घटना द्वारा बाबा ने इंगित किया कि जीवन - रेखा पार करने के लिए दशहरा ही उचित समय है। परन्तु उस समय किसी को भी उसका असली अर्थ समझ में न आया। बाबा ने और भी अन्य संकेत किए, जो इस प्रकार हैं:-

रामचन्द्र दादा पाटील की मृत्यु टालना

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

कुछ समय के पश्चात् रामचन्द्र पाटील बहुत बीमार हो गए। उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। सब प्रकार के उपचार किए गए, परन्तु कोई लाभ न हुआ और जीवन से हताश होकर वे मृत्यु के अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा करने लगे। तब एक दिन मध्याह्न रात्रि के समय बाबा अनायास ही उनके सिरहाने प्रगट हुए। पाटील उनके चरणों से लिपट कर कहने लगे कि मैंने अपने जीवन की समस्त आशाएँ छोड़ दी हैं। अब कृपा कर मुझे इतना तो निश्चित बतलाइए कि मेरे प्राण अब कब निकलेंगे ? दया- सिन्धु बाबा ने कहा कि घबराओ नहीं। तुम्हारी हुण्डी वापस ले ली गई है और तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे। मुझे तो केवल तात्या का भय है कि सन् १९१८ में विजया दशमी के दिन उसका देहान्त हो जाएगा। किन्तु यह भेद किसी से प्रगट न करना और न ही उसे बतलाना। अन्यथा वह अधिक भयभीत हो जाएगा। रामचन्द्र अब पूर्ण स्वस्थ तो हो गए, परन्तु वे तात्या के जीवन के लिये निराश हुए। उन्हें ज्ञात था कि बाबा के शब्द कभी असत्य नहीं निकल सकते और दो वर्ष के पश्चात् ही तात्या इस संसार से विदा हो जाएगा। उन्होंने यह भेद बाला शिंपी के अतिरिक्त किसी से भी प्रगट न किया। केवल दो ही व्यक्ति- रामचंद्र दादा और बाला शिंपी तात्या के जीवन के लिये चिन्ताग्रस्त और दुःखी थे।

रामचंद्र ने शैया त्याग दी और वे चलने-फिरने लगे। समय तेजी से व्यतीत होने लगा। शके १८४० का भाद्रपद समाप्त होकर आश्विन मास प्रारम्भ होने ही वाला था कि बाबा के वचन पूर्णतः सत्य निकले। तात्या बीमार पड़ गए और उन्होंने चारपाई पकड़ ली। उनकी स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि अब वे बाबा के दर्शनों को भी जाने में असमर्थ हो गए। इधर बाबा भी ज्वर से पीड़ित थे। तात्या का पूर्ण विश्वास बाबा पर था और बाबा का भगवान श्रीहरि पर, जो उनके संरक्षक थे। तात्या की स्थिति अब और अधिक चिन्ताजनक हो गई। वह हिलडुल भी न सकता था और सदैव बाबा का ही स्मरण किया करता था। इधर बाबा की भी स्थिति उत्तरोत्तर गंभीर होने लगी। बाबा द्वारा बतलाया हुआ विजया-दशमी का दिन भी निकट आ गया। तब रामचंद्र दादा और बाला शिंपी बहुत घबरा गए। उनके शरीर काँप रहे थे, पसीने की धारायें प्रवाहित हो रही थीं, कि अब तात्या का अन्तिम साथ है। जैसे ही विजया-दशमी का दिन आया, तात्या की नाड़ी की गति मन्द होने लगी और उसकी मृत्यु सन्निकट दिखलाई देने लगी। उसी समय एक विचित्र घटना घटी। तात्या की मृत्यु टल गई और उसके प्राण बच गये, परन्तु उसके स्थान पर बाबा स्वयं प्रस्थान कर गये और ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कि परस्पर हस्तान्तरण हो गया हो। सभी लोग कहने लगे कि बाबा ने तात्या के लिए प्राण त्यागे। ऐसा उन्होंने क्यों किया, यह वे ही जानें, क्योंकि यह बात हमारी बुद्धि के बाहर की है। ऐसा भी प्रतीत होती है कि बाबा ने अपने अन्तिम काल का संकेत तात्या का नाम लेकर ही किया था।

दूसरे दिन १६ अक्टूबर को प्रातःकाल बाबा ने दासगणू को पंढरपुर में स्वप्न दिया कि मस्जिद अर्वा करके गिर पड़ी है। शिरड़ी के प्रायः सभी तेली तम्बोली मुझे कष्ट देते थे। इसलिये मैंने अपना स्थान छोड़ दिया है। मैं तुम्हें यह सूचना देने आया हूँ कि कृपया शीघ्र वहाँ जाकर मेरे शरीर पर हर तरह के फूल इकट्ठा कर चढ़ाओ। दासगणू को शिरड़ी से भी एक पत्र प्राप्त हुआ और वे अपने शिष्यों को साथ लेकर शिरड़ी आये तथा उन्होंने बाबा की समाधि के समक्ष अखंड कीर्तन और हरिनाम प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने स्वयं फूलों की माला गुँथी और ईश्वर का नाम लेकर समाधि पर चढ़ाई। बाबा के नाम पर एक बृहद् भोज का भी आयोजन किया गया।

लक्ष्मीबाई को दान

विजयादशमी का दिन हिन्दुओं को बहुत शुभ है और सीमोल्लंघन के लिए बाबा द्वारा इस दिन का चुना जाना सर्वथा उचित ही है। इसके कुछ दिन पूर्व से ही उन्हें अत्यन्त पीड़ा हो रही थी, परन्तु आन्तरिक रूप में वे पूर्ण सजग थे। अन्तिम क्षण के पूर्व वे बिना किसी की सहायता लिए उठकर सीधे बैठ गए और स्वस्थ दिखाई पड़ने लगे। लोगों ने सोचा कि संकट टल गया और अब भय की कोई बात नहीं है तथा अब वे शीघ्र ही नीरोग हो जाएँगे। परन्तु वे तो जानते थे कि अब मैं शीघ्र ही विदा लेने वाला हूँ और इसलिये उन्होंने लक्ष्मीबाई शिन्दे को कुछ दान देने की इच्छा प्रगट की।

समस्त प्राणियों में बाबा का निवास

लक्ष्मीबाई एक उच्च कुलीन महिला थीं। वे मस्जिद में बाबा की दिन-रात सेवा किया करती थीं। केवल भगत म्हालसापति, तात्या और लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त रात को मस्जिद की सीढियों पर कोई नहीं चढ़ सकता था। एक

बार सन्ध्या समय जब बाबा तात्या के साथ मस्जिद में बैठे हुए थे, तभी लक्ष्मीबाई ने आकर उन्हें नमस्कार किया। तब बाबा कहने लगे कि “ अरी लक्ष्मी, मैं अत्यन्त भूखा हूँ।” वे यह कहकर लौट पड़ीं कि “ बाबा, थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आपके लिये रोटी लेकर आती हूँ।” उन्होंने रोटी और साग लाकर बाबा के सामने रख दिया, जो उन्होंने एक भूखे कुत्ते को दे दिया। तब लक्ष्मीबाई कहने लगीं कि “ बाबा यह क्या? मैं तो शीघ्र गईं और अपने हाथ से आपके लिए रोटी बना लाई । आपने एक ग्रास भी ग्रहण किये बिना उसे कुत्ते के सामने डाल दिया। तब आपने व्यर्थ ही मुझे यह कष्ट क्यों दिया ?” बाबा ने उत्तर दिया कि “व्यर्थ दुःख न करो। **कुत्ते की भूख शांत करना मुझे तृप्त करने के बराबर ही है। कुत्ते की भी तो आत्मा है।** प्राणी चाहे भले ही भिन्न आकृति-प्रकृति के हों उनमें कोई बोल सकते हैं और कोई मूक हैं, परन्तु भूख सबकी एक सदृश ही है। इसे तुम सत्य जानो कि **जो भूखों को भोजन कराता है, वह यथार्थ में मुझे ही भोजन कराता है।** यह एक अकाट्य सत्य है।” इस साधारण-सी घटना के द्वारा बाबा ने एक महान् आध्यात्मिक सत्य की शिक्षा प्रदान की कि बिना किसी की भावनाओं को कष्ट पहुँचाये किस प्रकार उसे नित्य व्यवहार में लाया जा सकता है। इसके पश्चात् ही लक्ष्मीबाई उन्हें नित्य ही प्रेम और भक्तिपूर्वक दूध, रोटी व अन्य भोजन देने लगीं, जिसे वे स्वीकार कर बड़े चाव से खाते थे। वे उसमें से कुछ खाकर शेष लक्ष्मीबाई के द्वारा ही राधाकृष्ण माई के पास भेज दिया करते थे। इस उच्छिष्ट अन्न को वे प्रसाद स्वरूप समझ कर प्रेमपूर्वक पाती थीं । इस रोटी की कथा को असंबद्ध नहीं समझना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि सभी प्राणियों में बाबा का निवास है, जो सर्वव्यापी, जन्म- मृत्यु से परे और अमर हैं।

बाबा ने लक्ष्मीबाई की सेवाओं को सदैव स्मरण रखा। बाबा उनको भुला भी कैसे सकते थे? देह-त्याग के बिल्कुल पूर्व बाबा ने अपनी जेब में हाथ डाला और पहले उन्होंने लक्ष्मी को पाँच रुपये और बाद में चार रुपये, इस प्रकार कुल नौ रुपये दिए। यह नौ की संख्या इस पुस्तक के अध्याय २१ में वर्णित नवविधा भक्ति की द्योतक है अथवा यह सीमोल्लंघन के समय दी जानेवाली दक्षिणा भी हो सकती है। लक्ष्मीबाई एक सुसंपन्न महिला थी। अतएव उन्हें रुपयों की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस कारण संभव है कि बाबा ने उनका ध्यान प्रमुख रूप से श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ११, अध्याय १० के श्लोक सं. ६ की ओर आकर्षित किया हो, जिसमें उत्कृष्ट कोटि के भक्त के नौ लक्षणों का वर्णन है, जिनमें से पहले ५ और बाद में ४ लक्षणों का क्रमशः प्रथम और द्वितीय चरणों में उल्लेख हुआ है। बाबा ने भी उसी क्रम का पालन किया (पहले ५ और बाद में ४; कुल ९) केवल ९ रुपये ही नहीं, बल्कि नौ के कई गुने रुपये लक्ष्मीबाई के हाथों में आये-गए होंगे, किन्तु बाबा के द्वारा प्रदत्त यह नौ (रुपये) का उपहार वह महिला सदैव स्मरण रखेगी।

१. अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः।

असत्त्वरोऽर्थ जिज्ञासुर्नसूयुरमोघवाक् ।।

अंतिम क्षण

बाबा सदैव सजग और चैतन्य रहते थे और उन्होंने अन्तिम समय भी पूर्ण सावधानी से काम लिया। अपने भक्तों के प्रति बाबा का हृदय प्रेम, ममता या मोह से ग्रस्त न हो जाय, इस कारण उन्होंने अन्तिम समय सबको वहाँ से चले जाने का आदेश दिया।

चिन्तामग्न काकासाहेब दीक्षित, बापूसाहेब बूटी और अन्य महानुभाव, जो मस्जिद में बाबा की सेवा में उपस्थित थे, उनको भी बाबा ने वाड़े में जाकर भोजन करके लौट आने को कहा। ऐसी स्थिति में वे बाबा को अकेला छोड़ना तो नहीं चाहते थे, परन्तु उनकी आज्ञा का उल्लंघन भी तो नहीं कर सकते थे। इसलिए इच्छा न होते हुए भी उदास और दुःखी हृदय से उन्हें वाड़े को जाना पड़ा । उन्हें विदित था कि बाबा की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है और इस प्रकार उन्हें अकेले छोड़ना उचित नहीं है। वे भोजन करने के लिए बैठे तो, परन्तु उनके मन कहीं और (बाबा के साथ) थे। अभी भोजन समाप्त भी न हो पाया था कि बाबा के नश्वर शरीर त्यागने का समाचार उनके पास पहुँचा और वे अधपेटे ही अपनी अपनी थाली छोड़कर मस्जिद की ओर भागे तथा जाकर देखा कि बाबा सदा के लिए बयाजी आपा कोते की गोद में विश्राम कर रहे हैं। न वे नीचे लुढ़के और न शैया पर ही लेटे, अपने ही आसन पर शान्तिपूर्वक बैठे हुए और अपने ही हाथों से दान देते हुए उन्होंने यह मानव - शरीर त्याग दिया। सन्त स्वयं ही देह धारण करते तथा कोई निश्चित ध्येय लेकर इस संसार में प्रगट होते हैं और जब ध्येय

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

पूर्ण हो जाता है तो वे जिस सरलता और आकस्मिकता के साथ प्रगट होते हैं, उसी प्रकार लुप्त भी हो जाया करते हैं।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु

सप्ताह पारायणः षष्ठ विश्राम

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह



महासमाधि की ओर (२)

पूर्व तैयारी-समाधि मन्दिर, ईट का खंडन, ७२ घण्टे की समाधि, जोग का संन्यास, बाबा के अमृततुल्य वचन।

इन ४३ और ४४ अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है, इसलिए वे यहाँ संयुक्त रूप में लिखे जा रहे हैं।

पूर्व तैयारी: समाधि मंदिर

हन्दुओं में यह प्रथा प्रचलित है कि जब किसी मनुष्य का अन्तकाल निकट आ जाता है तो उसे धार्मिक ग्रन्थ आदि पढ़कर सुनाए जाते हैं। इसका मुख्य कारण केवल यही है कि जिससे उसका मन सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर आध्यात्मिक विषयों में लग जाए और वह प्राणी कर्मवश अगले जन्म में जिस योनि को धारण करे, उसमें उसे सद्गति प्राप्त हो। सर्वसाधारण को यह विदित ही है कि जब राजा परीक्षित को एक बृहार्षि पुत्र ने शाप दिया और एक सप्ताह के पश्चात् ही उनका अन्तकाल निकट आया तो महात्मा शुकदेव ने उन्हें उस सप्ताह में श्रीमद्भागवत पुराण का पाठ सुनाया, जिससे उनको मोक्ष की प्राप्ति हुई। यह प्रथा अभी भी अपनाई जाती है। महानिर्वाण के समय गीता, भागवत और अन्य ग्रन्थों का पाठ किया जाता है। बाबा तो स्वयं अवतार थे, इसलिए उन्हें बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं थी; परन्तु केवल दूसरों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करने के हेतु ही उन्होंने इस प्रथा की उपेक्षा नहीं की। जब उन्हें विदित हो गया कि मैं अब शीघ्र इस नश्वर देह का त्याग करूँगा, तब उन्होंने श्री. वझे को 'रामविजय' प्रकरण सुनाने की आज्ञा दी। श्री. वझे ने एक सप्ताह प्रतिदिन पाठ सुनाया। तत्पश्चात् ही बाबा ने उन्हें आठों प्रहर पाठ करने की आज्ञा दी। श्री. वझे ने उस अध्याय की द्वितीय आवृत्ति तीन दिन में पूर्ण कर दी और इस प्रकार ११ दिन बीत गए। फिर तीन दिन और उन्होंने पाठ किया। अब श्री. वझे बिलकुल थक गये। इसलिए उन्हें विश्राम करने की आज्ञा हुई। बाबा अब बिलकुल शान्त बैठ गये और आत्मस्थित होकर वे अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा करने लगे। दो-तीन दिन पूर्व ही प्रातःकाल से बाबा ने भिक्षाटन करना स्थगित कर दिया और वे मस्जिद में ही बैठे रहने लगे। वे अपने अन्तिम क्षण के लिए पूर्ण सचेत थे, इसलिये वे अपने भक्तों को धैर्य तो बँधाते रहते, पर उन्होंने किसी से भी अपने महानिर्वाण का निश्चित समय प्रगट न किया। इन दिनों काकासाहेब दीक्षित और श्रीमान् बूटी बाबा के साथ मस्जिद में नित्य ही भोजन करते थे। महानिर्वाण के दिन (१५ अक्टूबर को) आरती समाप्त होने के पश्चात् बाबा ने उन लोगों को भी अपने निवासस्थान पर ही भोजन करके लौटने को कहा। फिर भी लक्ष्मीबाई शिंदे, भागोजी शिंदे, बयाजी, लक्ष्मण बाला शिम्पी और नानासाहेब निमोणकर वहीं रह गए। शामा नीचे मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठे थे। लक्ष्मीबाई शिन्दे को ९ रुपयें देने के पश्चात् बाबा ने कहा कि "मुझे मस्जिद में अब अच्छा नहीं लगता है, इसलिए मुझे बूटी के पत्थर वाड़े में ले चलो, जहाँ मैं सुखपूर्वक रहूँगा।" ये ही अन्तिम शब्द उनके श्रीमुख से निकले। इसी समय बाबा बयाजी के शरीर की ओर लटक गए और अन्तिम श्वास छोड़ दी। भागोजी ने देखा कि बाबा की श्वास रुक गई है, तब उन्होंने नानासाहेब निमोणकर को पुकार कर यह बात कही। नानासाहेब ने कुछ जल लाकर बाबा के श्रीमुख में डाला, जो बाहर लुढ़क आया। तभी उन्होंने जोर से आवाज लगाई " अरे! देव! " तब बाबा ऐसे दिखाई पड़े, जैसे उन्होंने धीरे से नेत्र खोलकर धीमे स्वर में ' ओह ' कहा हो। परन्तु अब स्पष्ट विदित हो गया कि उन्होंने सचमुच ही शरीर त्याग दिया है।

"बाबा समाधिस्थ हो गए" - यह हृदयविदारक दुःसंवाद दावानल की भाँति तुरन्त ही चारों ओर फैल गया। शिरड़ी के सब नर-नारी और बालकगण मस्जिद की ओर दौड़े। चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी के हृदय पर वज्रपात हुआ। उनके हृदय विचलित होने लगे। कोई जोर-जोर से चिल्लाकर रुदन करने लगे। कोई सड़कों पर लोटने लगा और बहुत से बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। प्रत्येक की आँखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे। प्रलय काल के वातावरण में तांडव नृत्य का जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है, वही गति शिरड़ी के नर -नारियों के रुदन से

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

उपस्थित हो गई। उनके इस महान् दुःख में कौन आकर उन्हें धैर्य बँधाता, जब कि उन्होंने साक्षात् सगुण परब्रह्म का सान्निध्य खो दिया था? इस दुःख का वर्णन भला कर ही कौन सकता है?

“अब कुछ भक्तों को श्री साई बाबा के वचन याद आने लगे। किसी ने कहा कि महाराज(साई बाबा) ने अपने भक्तों से कहा था कि “ भविष्य में वे आठ वर्ष के बालक के रूप में पुनः प्रगट होंगे।” ये एक सन्त के वचन हैं और इसलिए किसी को भी उन पर सन्देह नहीं करना चाहिए, क्योंकि कृष्णावतार में भी चक्रपाणि (भगवान विष्णु) ने ऐसी ही लीला की थी। श्रीकृष्ण माता देवकी के सामने आठ वर्ष की आयु वाले एक बालक के रूप में प्रगट हुए, जिनका दिव्य तेजोमय स्वरूप था और जिनके चारों हाथों में आयुध (शंख, चक्र, गदा और पद्म) सुशोभित थे। अपने उस अवतार में भगवान श्रीकृष्ण ने भू-भार हलका किया था। साई बाबा का यह अवतार अपने भक्तों के उत्थान के लिए हुआ था। सन्तों की कार्यप्रणाली अगम्य होती है। साई बाबा का अपने भक्तों के साथ यह संपर्क केवल एक ही पीढ़ी का नहीं, बल्कि यह उनका पिछले कई जन्मों का संपर्क है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का प्रेम-सम्बन्ध विकसित करके महाराज (श्री साई बाबा) दौरे पर चले गये हैं और भक्तों को दृढ़ विश्वास है कि शीघ्र ही पुनः वापस आ जाएँगे।”

अब समस्या उत्पन्न हुई कि बाबा के शरीर की अन्तिम क्रिया किस प्रकार की जाए? कुछ यवन लोग कहने लगे कि उनके शरीर को कब्रिस्तान में दफन कर उसके ऊपर एक मकबरा बना देना चाहिए। खुशालचन्द और अमीर शक्कर की भी यही धारणा थी, परंतु ग्राम्य अधिकारी श्री. रामचंद्र पाटील ने दृढ़ और निश्चयात्मक स्वर में कहा कि “ तुम्हारी निर्णय मुझे मान्य नहीं है। शरीर को वाड़े के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं रखा जाएगा।” इस प्रकार लोगों में मतभेद उत्पन्न हो गया और वह वादविवाद ३६ घण्टों तक चलता रहा।

बुधवार के दिन प्रातःकाल बाबा ने लक्ष्मण मामा जोशी को स्वप्न दिया और उन्हें अपने हाथ से खींचते हुए कहा कि “शीघ्र उठो, बापूसाहेब समझता है कि मैं मृत हो गया हूँ। इसलिए वह तो आयेगा नहीं। तुम पूजन और काकड़ आरती करो।” लक्ष्मण मामा ग्राम के ज्योतिषी, शामा के मामा तथा एक कर्मठ ब्राह्मण थे। वे नित्य प्रातःकाल बाबा का पूजन किया करते, तत्पश्चात् ही ग्राम देवियों और देवताओं का। उनकी बाबा पर दृढ़ निष्ठा थी, इसलिए इस दृष्टांत के पश्चात् वे पूजन की समस्त सामग्री लेकर वहाँ आये और ज्यों ही उन्होंने बाबा के मुख का आवरण हटाया तो उस निर्जीव अलौकिक महान् प्रदीप्त प्रतिभा के दर्शन कर वे स्तब्ध रह गए, मानो हिमांशु ने उन्हें अपने पाश में आबद्ध करके जड़वत् बना दिया हो। स्वप्न की स्मृति ने उन्हें अपना कर्तव्य करने को प्रेरित कर दिया। फिर उन्होंने मौलवियों के विरोध की कुछ भी चिंता न कर विधिवत् पूजन और कांकड़ आरती की। दोपहर को बापूसाहेब जोग भी अन्य भक्तों के साथ आए और सदैव की भाँति मध्याह्न की आरती की।

बाबा के अन्तिम श्री-वचनों को आदरपूर्वक स्वीकार करके लोगों ने उनके शरीर को बूटी वाड़े में ही रखने का निश्चय किया और वहाँ का मध्य भाग खोदना आरम्भ कर दिया। मंगलवार की सन्ध्या को राहाता से सब-इन्स्पेक्टर और भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक लोग वहाँ आकर एकत्र हुए। सब लोगों ने उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल बम्बई से अमीर भाई और कोपरगाँव से मामलेदार भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि लोग अभी भी एकमत नहीं है। तब उन्होंने मतदान करवाया और पाया कि अधिकांश लोगों का बहुमत वाड़े के पक्ष में ही है। फिर भी वे इस विषय में कलेक्टर की स्वीकृति अति आवश्यक समझते थे। तब काकासाहेब स्वयं अहमदनगर जाने को उद्यत् हो गए, परन्तु बाबा की प्रेरणा से विपक्षियों ने भी प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन सबने मिलकर अपना मत भी वाड़े के ही पक्ष में दिया। अतः बुधवार की सन्ध्या को बाबा का पवित्र शरीर बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ वाड़े में लाया गया और विधिपूर्वक उस स्थान पर समाधि बना दी गई, जहाँ ‘मुरलीधर’ की मूर्ति स्थापित होने को थी। सच तो यह है कि बाबा ‘मुरलीधर’ बन गए और वाड़ा ‘समाधि-मन्दिर’ तथा भक्तों का एक पवित्र देवस्थान, जहाँ अनेकों भक्त आया जाया करते थे और अभी भी नित्य-प्रति वहाँ आकर सुख और शान्ति प्राप्त करते हैं। बालासाहेब भाटे और बाबा के अनन्य भक्त श्री. उपासनी ने बाबा की विधिवत् अन्तिम क्रिया की। जैसा प्रोफेसर नारके को देखने में आया, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाबा का शरीर ३६ घण्टे के उपरांत भी जड़ नहीं हुआ और उनके शरीर का प्रत्येक अवयव लचीला (Elastic) बना रहा, जिससे शरीर पर से कफनी बिना चीरे हुए सरलता से निकाली जा सकी।

ईंट का खण्ड

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

बाबा के निर्वाण के कुछ समय पूर्व एक अपशकुन हुआ, जो इस घटना की पूर्वसूचना-स्वरूप था। मस्जिद में एक पुरानी ईंट थी, जिसपर बाबा अपना हाथ टेककर रखते थे। रात्रि के समय बाबा उस पर सिर रखकर शयन किया करते थे। यह कार्यक्रम अनेक वर्षों तक चला। एक दिन बाबा की अनुपस्थिति में एक बालक ने मस्जिद में झाडू लगाते समय वह ईंट अपने हाथ में उठाई। दुर्भाग्यवश वह ईंट उसके हाथ से गिर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गए। जब बाबा को इस बात की सूचना मिली तो उन्हें उसका बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि "यह ईंट नहीं फूटी है, मेरा भाग्य ही फूटकर छिन्न-भिन्न हो गया है। यह तो मेरी जीवनसंगिनी थी और इसको अपने पास रखकर मैं आत्म-चिंतन किया करता था। यह मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय थी और उसने आज मेरा साथ छोड़ दिया है।" कुछ लोग यहाँ शंका कर सकते हैं कि बाबा को ईंट जैसी एक तुच्छ वस्तु के लिए इतना शोक क्यों करना चाहिए? इसका उत्तर हेमाङ्गपन्त इस प्रकार देते हैं कि सन्त जगत के उद्धार तथा दीन और अनाश्रितों के कल्याणार्थ ही अवतीर्ण होते हैं। जब वे नरदेह धारण करते हैं और जनसम्पर्क में आते हैं तो वे इसी प्रकार आचरण किया करते हैं, अर्थात् बाह्य रूप से वे अन्य लोगों के समान ही हँसते, खेलते और रोते हैं, परन्तु आन्तरिक रूप से वे अपने अवतार-कार्य और उसके ध्येय के लिए सदैव सजग रहते हैं।

७२ घण्ट की समाधि

इसके ३२ वर्ष पूर्व भी बाबा ने अपनी जीवन-रेखा पार करने का एक प्रयास किया था। १८८६ में मार्गशीर्ष को पूर्णिमा के दिन बाबा को दमा से अधिक पीड़ा हुई और इस व्याधि से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने अपने प्राण ब्रह्मांड में चढ़ाकर समाधि लगाने का विचार किया। अतएव उन्होंने भगत म्हालसापति से कहा कि "तुम मेरे शरीर की तीन दिन तक रक्षा करना और यदि मैं वापस लौट आया तो ठीक ही है, नहीं तो उस स्थान(एक स्थान को इंगित करते हुए) पर मेरी समाधि बना देना और दो ध्वजाएँ चिह्न स्वरूप फहरा देना।" - ऐसा कहकर बाबा रात में लगभग दस बजे पृथ्वी पर लेट गए। उनका श्वासोच्छ्वास बन्द हो गया और ऐसा दिखाई देने लगा कि जैसे उनके शरीर में प्राण ही न हों। सभी लोग, जिनमें ग्रामवासी भी थे, वहाँ एकत्रित हुए और शरीर परीक्षण के पश्चात् शरीर को उनके द्वारा बताए हुए स्थान पर समाधिस्थ कर देने का निश्चय करने लगे। परन्तु भगत म्हालसापति ने उन्हें ऐसा करने से रोका और उनके शरीर को अपनी गोद में रखकर वे तीन दिन तक उसकी रक्षा करते रहे। तीन दिन व्यतीत होने पर रात को लगभग तीन बजे प्राण लौटने के चिन्ह दिखलाई पड़ने लगे। श्वासोच्छ्वास पुनः चालू हो गया और उनके अंग-प्रत्यंग हिलने लगे। उन्होंने नेत्र खोल दिये और करवट लेते हुए वे पुनः चेतना में आ गए।

इस प्रसंग तथा अन्य प्रसंगों पर दृष्टिपात कर अब हम यह पाठकों पर छोड़ते हैं कि वे ही इसका निश्चय करें कि क्या बाबा अन्य लोगों की भाँति ही साढ़े तीन हाथ लम्बे एक देहधारी मानव थे, जिस देह को उन्होंने कुछ वर्षों तक धारण करने के पश्चात् छोड़ दिया, या वे स्वयं आत्मज्योतिस्वरूप थे। पंच महाभूतों से शरीर निर्मित होने के कारण उसका नाश और अन्त तो सुनिश्चित है, परन्तु जो सद्बस्तु(आत्मा) अन्तःकरण में है, वही यथार्थ में सत्य है। उसका न रूप है, न अंत है और न नाश। यही शुद्ध चैतन्य घन या ब्रह्म-इंद्रियों और मन पर शासन और नियंत्रण रखने वाला जो तत्त्व है, वही 'साई' है, जो संसार के समस्त प्राणियों में विद्यमान है और जो सर्वव्यापी है। अपना अवतार-कार्य पूर्ण करने के लिए ही उन्होंने देह-धारण किया था और वह कार्य पूर्ण होने पर उन्होंने उसे त्याग कर पुनः अपना शाश्वत और अनंत स्वरूप धारण कर लिया। श्री दत्तात्रेय के पूर्ण अवतार-गाणगापुर के श्रीनृसिंह सरस्वती के समान श्री साई भी सदैव वर्तमान हैं। उनका निर्वाण तो एक औपचारिक बात है। वे जड़ और चेतन सभी पदार्थों में व्याप्त हैं तथा सर्व भूतों के अन्तःकरण के संचालक और नियंत्रणकर्ता हैं। इसका अभी भी अनुभव किया जा सकता है और अनेकों के अनुभव में आ भी चुका है, जो अनन्य भाव से उनके शरणागत हो चुके हैं और जो पूर्ण अंतःकरण से उनके उपासक हैं।

यद्यपि बाबा का स्वरूप अब देखने को नहीं मिल सकता है, फिर भी यदि हम शिरड़ी को जाएँ तो हमें वहाँ उनका जीवित-सदृश चित्र मस्जिद (द्वारकामाई) को शोभायमान करते हुए अब भी देखने में आएगा। यह चित्र बाबा के एक प्रसिद्ध भक्त-कलाकार श्री. शामराव जयकर ने बनाया था। एक कल्पनाशील और भक्त दर्शक को यह चित्र अभी भी बाबा के दर्शन के समान ही सन्तोष और सुख पहुँचाता है। बाबा अब देह में स्थित नहीं हैं, परन्तु वे सर्वभूतों में व्याप्त हैं और भक्तों का कल्याण पूर्ववत् ही करते रहे हैं, करते रहेंगे, जैसा कि वे सदेह रहकर किया करते थे। बाबा सन्तों के समान अमर हैं, चाहे वे नरदेह धारण कर लें, जो कि एक आवरण मात्र है, परन्तु वे तो स्वयं भगवान श्री हरि हैं, जो समय-समय पर भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

बापूसाहेब जोग का संन्यास

जोग के संन्यास की चर्चा कर हेमाङ्गपन्त यह अध्याय समाप्त करते हैं। श्री. सखाराम हरी उर्फ बापूसाहेब जोग पूने के प्रसिद्ध वारकरी विष्णु बुवा जोग के काका थे। वे लोक कर्म विभाग (P.W.D.) में पर्यवेक्षक (Supervisor) थे। सेवा-निवृत्ति के पश्चात् वे सपत्नीक शिरडी में आकर रहने लगे। उनके कोई सन्तान न थी। पति और पत्नी दोनों की ही साई चरणों में अटल श्रद्धा थी। वे दोनों अपने दिन उनकी पूजा और सेवा करने में ही व्यतीत किया करते थे। मेघा की मृत्यु के पश्चात् बापूसाहेब जोग ने बाबा की महासमाधि पर्यन्त मस्जिद और चावडी में आरती की। उनको साठे वाड़ा में श्री ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवत का वाचन तथा उसका भावार्थ श्रोताओं को समझाने का कार्य भी दिया गया था। इस प्रकार अनेक वर्षों तक सेवा करने के पश्चात् उन्होंने एक बार बाबा से प्रार्थना की कि- “ हे मेरे जीवन के एकमात्र आधार! आपके पूजनीय चरणों का दर्शन कर समस्त प्राणियों को परम शांति का अनुभव होता है। मैं इन श्रीचरणों की अनेक वर्षों से निरंतर सेवा कर रहा हूँ, परन्तु क्या कारण है कि आपके चरणों की छाया के सन्निकट होते हुए भी मैं उनकी शीतलता से वंचित हूँ। मेरे इस जीवन में कौन-सा सुख है, यदि मेरा चंचल मन शान्त और स्थिर बनकर आपके श्रीचरणों में मग्न नहीं होता? क्या इतने वर्षों का मेरा सन्तसमागम व्यर्थ ही जाएगा? मेरे जीवन में वह शुभ घड़ी कब आएगी, जब आपकी मुझपर कृपा दृष्टि होगी?”

भक्त की प्रार्थना सुनकर बाबा को दया आ गई। उन्होंने उत्तर दिया कि थोड़े ही दिनों में अब तुम्हारे अशुभ कर्म समाप्त हो जायेंगे तथा पाप और पुण्य जलकर शीघ्र ही भस्म हो जाएँगे। मैं तुम्हें उस दिन ही भाग्यशाली समझूँगा, जिस दिन तुम ऐन्द्रिक-विषयों को तुच्छ जानकर समस्त पदार्थों से विरक्त होकर पूर्ण अनन्य भाव से ईश्वर भक्ति कर संन्यास धारण कर लोगे। कुछ समय पश्चात् बाबा के वचन सत्य सिद्ध हुए। उनकी स्त्री का देहान्त हो जाने पर उनकी अन्य कोई आसक्ति शेष न रही। वे अब स्वतंत्र हो गये और उन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व संन्यास धारण कर अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

बाबा के अमृततुल्य वचन

दयानिधि कृपालु श्री साई समर्थ ने मस्जिद (द्वारिकामाई) में अनेक बार निम्नलिखित सुधोपम वचन कहे थे:-

“जो मुझे अत्यधिक प्रेम करता है, वह सदैव मेरा दर्शन पाता है। उसके लिए मेरे बिना सारा संसार ही सूना है। वह केवल मेरा ही लीलागान करता है। वह सतत मेरा ही ध्यान करता है और सदैव मेरा ही नाम जपता है। जो पूर्ण रूप से मेरी शरण में आ जाता है और सदा मेरा ही स्मरण करता है, अपने ऊपर उसका यह ऋण मैं उसे मुक्ति (आत्मोपलब्धि)प्रदान करके चुका दूँगा। जो मेरा ही चिन्तन करता है और मेरा प्रेम ही जिसकी भूख-प्यास है और जो पहले मुझे अर्पित किए बिना कुछ भी नहीं खाता, मैं उसके अधीन हूँ। जो इस प्रकार मेरी शरण में आता है, वह मुझसे मिलकर उसी तरह एकाकार हो जाता है, जिस तरह नदियाँ समुद्र से मिलकर तदाकार हो जाती हैं। अतएव महत्ता और अहंकार का सर्वथा परित्याग करके तुम्हें मेरे प्रति, जो तुम्हारे हृदय में आसीन है; पूर्ण रूप से समर्पित हो जाना चाहिए।”

यह 'मैं' कौन है?

श्री साईबाबा ने अनेक बार समझाया कि यह 'मैं' कौन है। इस 'मैं' को ढूँढने के लिए अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे नाम और आकार से परे 'मैं' तुम्हारे अन्तःकरण और समस्त प्राणियों में चैतन्यधन स्वरूप में विद्यमान हूँ और यही 'मैं' का स्वरूप है। ऐसा समझकर तुम अपने तथा समस्त प्राणियों में मेरा ही दर्शन करो। यदि तुम इसका नित्य प्रति अभ्यास करोगे तो तुम्हें मेरी सर्वव्यापकता का अनुभव शीघ्र हो जायेगा और मेरे साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाएगी।

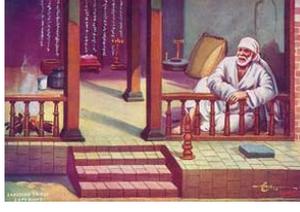
अतः हेमाङ्गपन्त पाठकों को नमन कर उनसे प्रेम और आदरपूर्वक विनम्र प्रार्थना करते हैं कि उन्हें समस्त देवताओं, सन्तों और भक्तों का आदर करना चाहिए। बाबा सदैव कहा करते थे कि जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, वह मेरे हृदय को दुःख देता है तथा मुझे कष्ट पहुँचाता है। इसके विपरीत जो स्वयं कष्ट सहन करता है, वह मुझे अधिक प्रिय है। बाबा समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं और उनकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं। समस्त जीवों से प्रेम करो, यही उनकी आंतरिक इच्छा है। इस प्रकार का विशुद्ध अमृतमय स्त्रोत उनके श्री मुख से सदैव झरता

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

रहता था। अतः जो प्रेमपूर्वक बाबा का लीलागान करेंगे या उन्हें भक्तिपूर्वक श्रवण करेंगे, उन्हें 'साई' से अवश्य अभिन्नता प्राप्त होगी।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह



संदेह निवारण

काकासाहेब दीक्षित का सन्देह और आनन्दराव का स्वप्न, बाबा के विश्राम के लिए लकड़ी का तख्ता।

प्रस्तावना

गत तीन अध्यायों में बाबा के निर्वाण का वर्णन किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब बाबा का साकार स्वरूप लुप्त हो गया है, परन्तु उनका निराकार स्वरूप तो सदैव ही विद्यमान रहेगा। अभी तक केवल उन्हीं घटनाओं और लीलाओं का उल्लेख किया गया है, जो बाबा के जीवनकाल में घटित हुई थीं। उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् भी अनेक लीलाएँ हो चुकी हैं और अभी भी देखने में आ रही हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि **बाबा अभी भी विद्यमान हैं और पूर्व की ही भाँति अपने भक्तों को सहायता पहुँचाया करते हैं**। बाबा के जीवन-काल में जिन व्यक्तियों को उनका सान्निध्य या सत्संग प्राप्त हुआ, यथार्थ में उनके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है? यदि किसी को फिर भी ऐंद्रिक और सांसारिक सुखों से वैराग्य प्राप्त नहीं हो सका तो इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? जो उस समय आचरण में लाया जाना चाहिए था और अभी भी लाया जाना चाहिए, वह है अनन्य भाव से बाबा की भक्ति। समस्त चेतनाओं, इन्द्रिय-प्रवृत्तियों और मन को एकाग्र कर बाबा के पूजन और सेवा की ओर लगाना चाहिए। कृत्रिम पूजन से क्या लाभ? यदि पूजन या ध्यानादि करने की ही अभिलाषा है तो वह शुद्ध मन और अन्तःकरण से होनी चाहिये।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री का विशुद्ध प्रेम अपने पति पर होता है, इस प्रेम की उपमा कभी-कभी लोग शिष्य और गुरु के प्रेम से भी दिया करते हैं। परन्तु फिर भी शिष्य और गुरु-प्रेम के सामने पतिव्रता का प्रेम तुच्छ है और उसकी कोई समानता नहीं की जा सकती। माता, पिता, भाई या अन्य सम्बन्धी जीवन का ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) प्राप्त करने में कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते। इसके लिए हमें स्वयं अपना मार्ग अन्वेषण कर आत्मानुभूति के पथ पर अग्रसर होना पड़ता है। सत्य और असत्य में विवेक, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों का त्याग, इन्द्रियनिग्रह और केवल मोक्ष की धारणा रखते हुए अग्रसर होना पड़ता है। दूसरों पर निर्भर रहने के बदले हमें आत्मविश्वास बढ़ाना उचित है। जब हम इस प्रकार विवेक-बुद्धि से कार्य करने का अभ्यास करेंगे तो हमें अनुभव होगा कि यह संसार नाशवान् और मिथ्या है। इस प्रकार की धारणासे सांसारिक पदार्थोंमें हमारी आसक्ति उत्तरोत्तर घटती जाएगी और अन्त में हमें उनसे वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा। तब कहीं आगे चलकर यह रहस्य प्रकट होगा कि ब्रह्म हमारे गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं, वरन् यथार्थ में वे ही सद्वस्तु (परमात्मा) हैं और यह रहस्योद्घाटन होता है कि यह दृश्यमान जगत् उनका ही प्रतिबिम्ब है। अतः इस प्रकार हम सभी प्राणियों में उनके ही रूप का दर्शन कर उनका पूजन करना प्रारम्भ कर देते हैं और यही समत्वभाव दृश्यमान जगत् से विरक्ति प्राप्त करानेवाला भजन या मूलमंत्र है। इस प्रकार जब हम ब्रह्म या गुरु की अनन्यभाव से भक्ति करेंगे तो हमें उनसे अभिन्नता की प्राप्ति होगी और आत्मानुभूति की प्राप्ति सहज हो जायेगी। संक्षेप में यह कि सदैव गुरु का कीर्तन और उनका ध्यान करना ही हमें सर्वभूतों में भगवत् दर्शन करने की योग्यता प्रदान करता है और इसी से परमानन्द की प्राप्ति होती है। निम्नलिखित कथा इस तथ्य का प्रमाण है।

काकासाहेब का सन्देह तथा आनन्दराव का स्वप्न

यह तो सर्वविदित ही है कि बाबा ने काकासाहेब दीक्षित को श्री एकनाथ महाराज के दो ग्रन्थ (१) श्रीमद्भागवत और (२) भावार्थ रामायण का नित्य पठन करने की आज्ञा दी थी। काकासाहेब इन ग्रन्थों का नियमपूर्वक पठन बाबा के समय से करते आए हैं और बाबा के समाधिस्थ होने के उपरान्त अभी भी वे उसी प्रकार अध्ययन कर रहे हैं। एक समय चौपाटी (बम्बई) में काकासाहेब प्रातःकाल एकनाथी भागवत का पाठ कर रहे थे। माधवराव देशपांडे (शामा) और काका महाजनी भी उस समय वहाँ उपस्थित थे तथा ये दोनों ध्यानपूर्वक पाठ श्रवण कर रहे थे। उस

समय ११ वें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का वाचन चल रहा था, जिसमें नवनाथ अर्थात् ऋषभ वंश के सिद्ध यानी कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन का वर्णन है, जिन्होंने भागवत धर्म की महिमा राजा जनक को समझायी थी। राजा जनक ने इन नव-नाथों से बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे और इन सभी ने उनकी शंकाओं का बड़ा सन्तोषजनक समाधान किया था, अर्थात् कवि ने भागवत धर्म, हरि ने भक्ति की विशेषताएँ, अंतरिक्ष ने माया क्या हैं, प्रबुद्ध ने माया से मुक्त होने की विधि, पिप्पलायन ने परब्रह्म के स्वरूप, आविर्होत्र ने कर्म के स्वरूप, द्रुमिल ने परमात्मा के अवतार और उनके कार्य, चमस ने नास्तिक की मृत्यु के पश्चात् की गति एवं करभाजन ने कलिकाल में भक्ति की पद्धतियों का यथाविधि वर्णन किया। इन सबका अर्थ यही था कि कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन केवल हरिकिर्तन या गुरु-चरणों का चिंतन ही है। पठन समाप्त होने पर काकासाहेब बहुत निराशापूर्ण स्वर में माधवराव और अन्य लोगों से कहने लगे कि नवनाथों की भक्ति पद्धति का क्या कहना है, परन्तु उसे आचरण में लाना कितना दुष्कर है? नाथ तो सिद्ध थे, परन्तु हमारे समान मूर्खों में इस प्रकार की भक्ति का उत्पन्न होना क्या कभी संभव हो सकता है? अनेक जन्म धारण करने पर भी वैसी भक्ति नहीं हो सकती तो फिर हमें मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकेगा? ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लिए तो कोई आशा ही नहीं है। माधवराव को यह निराशावादी धारणा अच्छी न लगी। वे कहने लगे कि हमारा अहोभाग्य है, जिसके फलस्वरूप ही हमें साई सद्दृश अमूल्य हीरा हाथ लग गया है; तब फिर इस प्रकार निराशा का राग अलापना बड़ी निन्दनीय बात है। यदि तुम्हें बाबा पर अटल विश्वास है तो फिर इसप्रकार चिंतित होने की आवश्यकता ही क्या है? माना कि नवनाथों की भक्ति अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ और प्रबल होगी, परन्तु क्या हम लोग भी प्रेम और स्नेहपूर्वक भक्ति नहीं कर रहे हैं? क्या बाबा ने अधिकारपूर्ण वाणी में नहीं कहा है कि श्रीहरि या गुरु के नामजप से मोक्ष की प्राप्ति होती है? तब फिर भय और चिन्ता को स्थान ही कहाँ रह जाता है? परन्तु फिर भी माधवराव के वचनों से काकासाहेब का समाधान न हुआ। वे फिर भी दिन भर व्यग्र और चिन्तित ही बने रहे। यह विचार उनके मस्तिष्क में बार-बार चक्कर काट रहा था कि किस विधि से नवनाथों के समान भक्ति की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी ?

एक महाशय, जिनका नाम आनन्दराव पाखाड़ था, माधवराव को ढूँढते-ढूँढते वहाँ आ पहुँचे। उस समय भागवत का पठन हो रहा था। श्री. पाखाड़े भी माधवराव के समीप ही जाकर बैठ गये और उनसे धीरे-धीरे कुछ वार्ता भी करने लगे। वे अपना स्वप्न माधवराव को सुना रहे थे। इनकी कानाफूसी के कारण पाठ में विघ्न उपस्थित होने लगा। अतएव काकासाहेब ने पाठ स्थगित कर माधवराव से पूछा कि क्यों, क्या बात हो रही है? माधवराव ने कहा कि कल तुमने जो सन्देह प्रगट किया था, यह चर्चा भी उसी का समाधान है। कल बाबा ने श्री. पाखाड़े को जो स्वप्न दिया है, उसे इनसे ही सुनो। इसमें बताया गया है कि **विशेष भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं; केवल गुरु को नमन या उनका पूजन ही पर्याप्त है।** सभी को स्वप्न सुनने की तीव्र उत्कंठा थी और सबसे अधिक काकासाहेब को। सभी के कहने पर श्री. पाखाड़े अपना स्वप्न सुनाने लगे, जो इस प्रकार है:- “ मैंने देखा कि मैं एक अथाह सागर में खड़ा हुआ हूँ। पानी मेरी कमर तक है और अचानक ही जब मैंने ऊपर देखा तो साईबाबा के श्री-दर्शन हुए। वे एक रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान थे और उनके श्री-चरण जल के भीतर थे। यह सुन्दर दृश्य और बाबा का मनोहर स्वरूप देख मेरा चित्त बड़ा-प्रसन्न हुआ। इस स्वप्न को भला कौन स्वप्न कह सकेगा? मैंने देखा कि माधवराव भी बाबा के समीप ही खड़े हैं और उन्होंने मुझसे भावुकतापूर्ण शब्दों में कहा कि “ आनन्दराव! बाबा के श्रीचरणों पर गिरो।” मैंने उत्तर दिया कि “मैं भी तो यही करना चाहता हूँ, परन्तु उनके श्री-चरण तो जल के भीतर हैं। अब बताओ कि मैं कैसे अपना शीश उनके चरणों पर रखूँ। मैं तो निस्सहाय हूँ।” इन शब्दों को सुनकर शामा ने बाबा से कहा कि “ अरे देवा! जल में से कृपाकर अपने चरण बाहर निकालिए न।” बाबा ने तुरन्त चरण बाहर निकाले और मैं उनसे तुरन्त लिपट गया। बाबा ने मुझे यह कहते हुए आशीर्वाद दिया कि अब तुम आनन्दपूर्वक जाओ। घबड़ाने या चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तुम्हारा कल्याण होगा। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि एक जरी के किनारों की धोती मेरे शामा को दे देना , इससे तुम्हें बहुत लाभ होगा।”

बाबा की आज्ञा को पूर्ण करने के लिए ही श्री. पाखाड़े धोती लाए और काकासाहेब से प्रार्थना की कि कृपा करके इसे माधवराव को दे दीजिए, परन्तु माधवराव ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि जब तक बाबा से मुझे कोई आदेश या अनुमति प्राप्त नहीं होती, तब तक मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ। कुछ तर्क-वितर्क के पश्चात् काका ने दैवी आदेशसूचक पर्चियों निकालकर इस बात का निर्णय करने का विचार किया। काकासाहेब का यह नियम था कि जब उन्हें कोई सन्देह हो जाता तो वे कागज की दो पर्चियों पर ‘स्वीकार-अस्वीकार’ लिखकर उसमें से एक पर्ची निकालते और जो कुछ उत्तर प्राप्त होता था, उसके अनुसार ही कार्य किया करते थे। इसका भी

निपटारा करने के लिए उन्होंने उपर्युक्त विधि के अनुसार ही दो पर्चियाँ लिखकर बाबा के चित्र के समक्ष रखकर एक अबोध बालक को उसमें से एक पर्ची उठाने को कहा। बालक द्वारा उठाई गई पर्ची जब खोलकर देखी गई तो वह स्वीकारसूचक पर्ची ही निकली और तब माधवराव को धोती स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार आनंदराव और माधवराव सन्तुष्ट हो गए और काकासाहेब का भी सन्देह दूर हो गया।

इसमें हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें अन्य संतों के वचनों का उचित आदर करना चाहिए, परन्तु साथ यह भी परम आवश्यक है कि हमें अपनी माँ अर्थात् गुरु पर पूर्ण विश्वास रख, उनके आदेशों का अक्षरशः पालन करना चाहिए, क्योंकि अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे कल्याण की उन्हें अधिक चिन्ता है।

बाबा के निम्नलिखित वचनों को हृदयपटल पर अंकित कर लो - इस विश्व में असंख्य सन्त हैं, परन्तु अपना पिता (गुरु) ही सच्चा पिता (सच्चा गुरु) है। दूसरे चाहे कितने ही मधुर वचन क्यों न कहते हों, परन्तु अपना गुरु-उपदेश कभी नहीं भूलना चाहिए। संक्षेप में सार यही है कि शुद्ध हृदय से अपने गुरु से प्रेम कर, उनकी शरण जाओ और उन्हें श्रद्धापूर्वक साष्टांग नमस्कार करो। तभी तुम देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख भवसागर का अस्तित्व वैसा ही है, जैसा सूर्य के समक्ष अंधरे का।”

बाबा की शयन शैया-लकड़ी का तख्ता

बाबा अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में एक लकड़ी के तख्ते पर शयन किया करते थे। वह तख्ता चार हाथ लम्बा और एक बीता चौड़ा था, जिसके चारों कोनों पर चार मिट्टी के जलते दीपक रखे जाया करते थे। पश्चात् बाबा ने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। (जिसका वर्णन गत अध्याय दस में हो चुका है)। एक समय बाबा उस पट्टिए की महत्ता का वर्णन काकासाहेब को सुना रहे थे, जिसको सुनकर काकासाहेब ने बाबा से कहा कि यदि अभी भी आपको उससे विशेष स्नेह है तो मैं मस्जिद में एक दूसरी पट्टिया लटकाए देता हूँ। आप सुखपूर्वक उस पर शयन किया करें। तब बाबा कहने लगे कि “ अब म्हालसापति को नीचे छोड़कर मैं ऊपर नहीं सोना चाहता।”

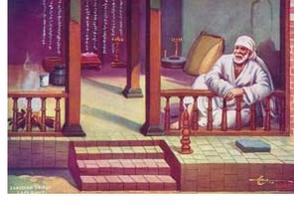
काकासाहेब ने कहा कि “ यदि आज्ञा दें तो मैं एक और तख्ता म्हालसापति के लिए भी टाँग दूँ।”

बाबा बोले कि “ वे इस पर कैसे सो सकते हैं? क्या यह कोई सहज कार्य है? जो उसके गुण से सम्पन्न हो, वही ऐसा कार्य कर सकता है। जो खुले नेत्र रखकर निद्रा ले सके, वही इसके योग्य है। जब मैं शयन करता हूँ तो बहुधा म्हालसापति को अपने बाजू में बिठाकर उनसे कहता हूँ कि मेरे हृदय पर अपना हाथ रखकर देखते रहो कि कहीं मेरा भगवज्जप बन्द न हो जाए और मुझे यदि थोड़ा-सा भी निद्रित देखो तो तुरंत जागृत कर दो, परन्तु उससे तो यह भी नहीं हो सकता। वह तो स्वयं ही झपकी लेने लगता है और निद्रामग्न होकर अपना सिर डुलाने लगता है और जब मुझे भगत का हाथ पत्थर-सा भारी प्रतीत होने लगता है तो मैं जोर से पुकार उठता हूँ कि “ ओ भगत”। तब कहीं वह घबड़ा कर नेत्र खोलता है। जो पृथ्वी पर ही अच्छी तरह बैठ और सो नहीं सकता तथा जिसका आसन सिद्ध नहीं है और जो निद्रा का दास है, वह या तख्ते पर सो सकेगा?” १ अन्य अनेक अवसरों पर वे भक्तों के स्नेहवश ऐसा कहा करते थे कि “अपना अपने साथ और उसका उसके साथ।”

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

१. या निशा सर्वभूतानां तस्यांजागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ - गीता २/६९



बाबा की गया यात्रा-बकरों की पूर्व जन्मकथा

इस अध्याय में शामा की काशी, प्रयाग व गया की यात्रा और बाबा किस प्रकार वहाँ इनके पूर्व ही (चित्र के रूप में) पहुँच गए तथा दो बकरों के गत जन्मों के इतिहास आदि का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना

हे साई! आपके श्रीचरण धन्य हैं और उनका स्मरण कितना सुखदायी है! आपके भवभयविनाशक स्वरूप का दर्शन भी धन्य है, जिसके फलस्वरूप कर्मबन्धन छिन्नभिन्न हो जाते हैं। यद्यपि अब हमें आपके सगुण स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता, फिर भी यदि भक्तगण आपके श्रीचरणों में श्रद्धा रखें तो आप उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव दे दिया करते हैं। आप एक अज्ञात आकर्षण शक्ति द्वारा निकटस्थ या दूरस्थ भक्तों को अपने समीप खींचकर उन्हें एक दयालु माता की नाई हृदय लगाते हैं। हे साई! भक्त नहीं जानते कि आपका निवास कहाँ है, परन्तु आप इस कुशलता से उन्हें प्रेरित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भासित होने लगता है कि आपका अभय हस्त उनके सिर पर है और यह आपकी ही कृपा-दृष्टि का परिणाम है कि उन्हें अज्ञात सहायता सदैव प्राप्त होती रहती है। अहंकार वे वशीभूत होकर उच्च कोटि के विद्वान् और चतुर पुरुष भी इस भवसागर की दलदल में फँस जाते हैं। परन्तु हे साई! आप केवल अपनी शक्ति से असहाय और सुहृदय भक्तों को इस दलदल से उबारकर उनकी रक्षा किया करते हैं। पर्दे की ओट में छिपे रहकर आप ही तो सब न्याय कर रहे हैं। फिर भी आप ऐसा अभिनय करते हैं, जैसे उनसे आपका कोई सम्बन्ध ही न हो। कोई भी आप की संपूर्ण जीवन गाथा न जान सका। इसलिए यही श्रेयस्कर है कि हम अनन्य भाव से आपके श्रीचरणों की शरण में आ जाएँ और अपने पापों से मुक्त होने के लिए आपका ही नामस्मरण करते रहें। आप अपने निष्काम भक्तों की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर उन्हें परमानंद की प्राप्ति करा दिया करते हैं। केवल आपके मधुर नाम का उच्चारण ही भक्तों के लिए अत्यन्त सुगम पथ है। इस साधन से उनमें राजसिक और तामसिक गुणों का न्हास होकर सात्विक और धार्मिक गुणों का विकास होगा। इसके साथ ही साथ उन्हें क्रमशः विवेक, वैराग्य और ज्ञान की भी प्राप्ति हो जाएगी। तब उन्हें आत्मस्थित होकर गुरु से भी अभिन्नता प्राप्त होगी और इसका ही दूसरा अर्थ है गुरु के प्रति अनन्य भाव से शरणागत होना। इसका निश्चित प्रमाण केवल यही है कि तब हमारा मन स्थिर और शांत हो जाता है। इस शरणागति, भक्ति और ज्ञान की महत्ता अद्वितीय है, क्योंकि इनके साथ ही शांति, वैराग्य, कीर्ति, मोक्ष इत्यादि की भी प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

यदि बाबा अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं तो वे सदैव ही उनके समीप रहते हैं, चाहे भक्त कहीं भी क्यों न चला जाए, परन्तु वे तो किसी न किसी रूप में पहले ही वहाँ पहुँच जाते हैं। यह निम्नलिखित कथा से स्पष्ट है।

गया यात्रा

बाबा से परिचय होने के कुछ काल पश्चात् ही काकासाहेब दीक्षित ने अपने ज्येष्ठ पुत्र बापू का नागपुर में उपनयन संस्कार करने का निश्चय किया और लगभग उसी समय नानासाहेब चाँदोरकर ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र की ग्वालियर में शादी करने का कार्यक्रम बनाया। दीक्षित और चाँदोरकर दोनों ही शिरडी आए और प्रेमपूर्वक उन्होंने बाबा को निमंत्रण दिया। तब उन्होंने अपने प्रतिनिधि शामा को ले जाने को कहा, परन्तु जब उन्होंने स्वयं पधारने के लिए उनसे आग्रह किया तो उन्होंने उत्तर दिया कि “ बनारस और प्रयाग निकल जाने के पश्चात्, मैं शामा से पहले ही पहुँच जाऊँगा। ” पाठकगण! कृपया इन शब्दों को थोड़ा ध्यान में रखें, क्योंकि ये शब्द बाबा की सर्वज्ञता के बोधक हैं।

बाबा की आज्ञा प्राप्त कर शामा ने इन उत्सवों में सम्मिलित होने के लिए प्रथम नागपुर, ग्वालियर और इसके पश्चात् काशी, प्रयाग और गया जाने का निश्चय किया। अप्पा कोते भी शामा के साथ जाने को तैयार हो गए।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

प्रथम तो वे दोनों उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने नागपुर पहुँचे। वहाँ काकासोब दीक्षित ने शामा को दो सौ रुपये खर्च के निमित्त दिये। वहाँ से वे लोग विवाह में सम्मिलित होने ग्वालियर गये। वहाँ नानासाहेब चांदोरकर ने सौ रुपये और उनके संबंधी श्री. जठार ने भी सौ रुपये शामा को भेंट किये। फिर शामा काशी पहुँचे, जहाँ जठार ने लक्ष्मी-नारायण जी के भव्य मंदिर में उनका उत्तम स्वागत किया। अयोध्या में जठार के व्यवस्थापक ने भी शामा का अच्छा स्वागत किया। शामा और कोते अयोध्या में २१ दिन तथा काशी (बनारस) में दो मास ठहर कर फिर गया को रवाना हो गए। गया में प्लेग फैलने का समाचार रेलगाड़ी में सुनकर इन लोगों को थोड़ी चिन्ता सी होने लगी। फिर भी रात्रि को वे गया स्टेशन पर उतरे और एक धर्मशाला में जाकर ठहरे। प्रातःकाल गयावाला पुजारी (पंडा), जो यात्रियों के ठहरने और भोजन की व्यवस्था किया करता था, आया और कहने लगा कि सब यात्री तो प्रस्थान कर चुके हैं, इसलिए अब आप भी शीघ्रता करें। शामा ने सहज ही उससे पूछा कि क्या गया में प्लेग फैला है? तब पुजारी ने कहा कि “ नहीं। आप निर्विघ्न मेरे यहाँ पधारकर वस्तुस्थिति का स्वयं अवलोकन कर लें।” तब वे उसके साथ उसके मकान पर पहुँचे। उसका मकान क्या; एक विशाल महल था, जिसमें पर्याप्त यात्री विश्राम पा सकते थे। शामा को भी उसी स्थान पर ठहराया गया, जो उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा। बाबा का एक बड़ा चित्र, जो कि मकान के अग्निम भाग के ठीक मध्य में लगा था, देखकर वे अति प्रसन्न हो गये। उनका हृदय भर आया और उन्हें बाबा के शब्दों की स्मृति हो आई कि “मैं काशी और प्रयाग निकल जाने के पश्चात् शामा से आगे ही पहुँच जाऊँगा।” शामा की आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी और उनके शरीर में रोमांच हो आया तथा कंठ रुँध गया और रोते-रोते उनकी घिग्घियाँ बँध गईं। पुजारी ने शामा की जो ऐसी स्थिति देखी तो उसने सोचा कि यह व्यक्ति प्लेग की सूचना पर भयभीत होकर रुदन कर रहा है, परन्तु शामा ने उसकी कल्पना के विपरीत ही प्रश्न किया कि यह बाबा का चित्र तुम्हें कहाँ से मिला? उसने उत्तर दिया कि मेरे दो-तीन सौ दलाल मनमाड़ और पुणताम्बे क्षेत्र में कार्य करते हैं तथा उस क्षेत्र से गया आने वाले यात्रियों की सुविधा का विशेष ध्यान रखा करते हैं। वहाँ शिरडी के साई महाराज की कीर्ति मुझे सुनाई पड़ी। लगभग बारह वर्ष हुए, मैंने स्वयं शिरडी जाकर बाबा के श्रीदर्शन का लाभ उठाया था और वहीं शामा के घर में लगे हुए उनके चित्र से मैं आकर्षित हुआ था। तभी बाबा की आज्ञा से शामा ने जो चित्र मुझे भेंट किया था, यह वही चित्र है। शामा की पूर्व स्मृति जागृत हो आई और जब गया वाले पुजारी को यह ज्ञात हुआ कि ये वही शामा हैं, जिन्होंने मुझे इस चित्र द्वारा अनुगृहीत किया था और आज मेरे यहाँ अतिथि बनकर ठहरे हैं तो उसके आनंद की सीमा न रही। दोनों बड़े प्रेमपूर्वक मिलकर हर्षित हुए। फिर पुजारी ने शामा का बादशाही ढंग से भव्य स्वागत किया। वह एक धनाढ्य व्यक्ति था। स्वयं डोली में और शामा को हाथी पर बिठाकर खूब घुमाया तथा हर प्रकार से उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखा। इस कथा ने सिद्ध कर दिया कि बाबा के वचन सत्य निकले। उनका अपने भक्तों पर कितना स्नेह था, इसको तो छोड़ो। वे तो सब प्राणियों पर एक-सा प्रेम किया करते थे और उन्हें अपना ही स्वरूप समझते थे। यह निम्नलिखित कथा से भी विदित हो जाएगा।

दो बकरे

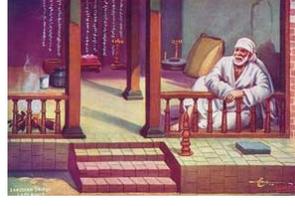
एक बार जब बाबा लेंडी बाग से लौट रहे थे तो उन्होंने बकरों का एक झुंड आते देखा। उनमें से दो बकरों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। बाबा ने जाकर प्रेम-से उनका शरीर अपने हाथ से थपथपाया और उन्हें ३२ रुपये में खरीद लिया। बाबा का यह विचित्र व्यवहार देखकर भक्तों को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि बाबा तो इस सौदे में ठगा गए हैं, क्योंकि एक बकरे का मूल्य उस समय तीन-चार रुपये से अधिक न था और वे दो बकरे अधिक से अधिक आठ रुपये में प्राप्त हो सकते थे।

उन्होंने बाबा को कोसना प्रारंभ किया, परंतु बाबा शान्त बैठे रहे। जब शामा और तात्या ने बकरे मोल लेने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि “ मेरे कोई घर या स्त्री तो है नहीं, जिसके लिए मुझे पैसे इकट्ठे करके रखना है।” फिर उन्होंने चार सेर दाल बाजार से मँगाकर उन्हें खिलाई। जब उन्हें खिला-पिला चुके तो उन्होंने पुनः उनके मालिक को बकरे लौटा दिए। तत्पश्चात् ही उन्होंने उन बकरों के पूर्वजन्मों की कथा इस प्रकार सुनाई- “ शामा और तात्या, तुम सोचते हो कि मैं इस सौदे में ठगा गया हूँ? परन्तु ऐसा नहीं, इनकी कथा सुनो। गत जन्म में ये दोनों मनुष्य थे और सौभाग्य से मेरे निकट संपर्क में थे। मेरे पास बैठते थे। ये दोनों सगे भाई थे और पहले इनमें परस्पर बहुत प्रेम था, परन्तु बाद में ये एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन गए। बड़ा भाई आलसी था, किन्तु छोटा भाई बहुत परिश्रमी था, जिसने पर्याप्त धन उपार्जन कर लिया था, जिससे बड़ा भाई अपने छोटे भाई से ईर्ष्या किया करता था। इसलिए उसने छोटे भाई की हत्या करके उसका धन हड़पने की ठानी और अपना आत्मीय सम्बन्ध भूलकर वे एक दूसरे से बुरी तरह झगड़ने लगे। बड़े भाई ने अनेक प्रयत्न किए, परन्तु वह छोटे भाई की हत्या में असफल रहा। तब वे एक दूसरे के प्राणघातक शत्रु बन गए। एक दिन बड़े भाई ने छोटे भाई के सिर पर लाठी से

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

प्रहार किया। तब बदले में छोटे भाई ने भी बड़े भाई के सिर पर कुल्हाड़ी चलाई और परिणामस्वरूप वहीं दोनों की मृत्यु हो गई। फिर अपने कर्मों के अनुसार ये दोनों बकरे की योनि को प्राप्त हुए। जैसे ही वे मेरे समीप से निकले तो मुझे उनके पूर्व इतिहास का स्मरण हो आया और मुझे दया आ गई। इसलिए मैंने उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने तथा सुख देने का विचार किया। यही कारण है कि मैंने उनके लिए पैसे खर्च किए, जो तुम्हें महँगे प्रतीत हुए हैं। तुम लोगों को यह लेन-देन अच्छा नहीं लगा, इसलिए मैंने इनके बकरों को गड़ेरिऐ को वापस कर दिया है। सचमुच बकरे जैसे सामान्य प्राणियों के लिये भी बाबा को बेहद प्रेम था।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



पुनर्जन्म

वीरभद्रप्पा और चैनबसाप्पा (सर्प व मेंढक) की वार्ता ।

गत अध्याय में बाबा द्वारा बताई गई दो बकरों के पूर्व जन्मों की वार्ता थी। इस अध्याय में कुछ और भी पूर्व जन्मों की स्मृतियों का वर्णन किया जाता है। प्रस्तुत कथा वीरभद्रप्पा और चैनबसाप्पा के सम्बन्ध में है।

प्रस्तावना

हे त्रिगुणातीत ज्ञानावतार श्रीसाई! तुम्हारी मूर्ति कितनी भव्य और सुन्दर है। हे अन्तर्यामिन्! तुम्हारे श्रीमुख की आभा धन्य है। उसका क्षणमात्र भी अवलोकन करने से पूर्व जन्मों के समस्त दुःखों का नाश होकर सुख का द्वार खुल जाता है। परन्तु हे मेरे प्यारे श्री साई! यदि तुम अपने स्वभाववश ही कुछ कृपाकटाक्ष करो, तभी इसकी कुछ आशा हो सकती है। तुम्हारी दृष्टिमात्र से ही हमारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और हमें आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। गंगा में स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गंगामाई भी संतों के आगमन की सदैव उत्सुकतापूर्वक राह देखा करती हैं कि वे कब पधारें और मुझे अपनी चरण-रज से पावन करें। श्री साई तो संत - चूड़ामणि हैं। अब उनके द्वारा ही हृदय पवित्र बनाने वाली यह कथा सुनो।

सर्प और मेंढक

श्री साई बाबा ने कहा -“ एक दिन प्रातःकाल ८ बजे जलपान के पश्चात् मैं घूमने निकला। चलते-चलते मैं एक छोटीसी नदी के किनारे पहुँचा। मैं अधिक थक चुका था, इस कारण वहाँ बैठकर कुछ विश्राम करने लगा। कुछ देर के पश्चात् ही मैंने हाथ-पैर धोए और स्नान किया। तब कहीं मेरी थकावट दूर हुई और मुझे कुछ प्रसन्नता का अनुभव होने लगा। उस स्थान से एक पगडंडी और बैलगाड़ी के जाने का मार्ग था, जिसके दोनों ओर सघन वृक्ष थे। मलय-पवन मंद-मंद बह रहा था। मैं चिलम भर ही रहा था कि इतने में ही मेरे कानों में एक मेंढक के बुरी तरह टराने की ध्वनि पड़ी। मैं चकमक सुलगा ही रहा था कि इतने में एक यात्री वहाँ आया और मेरे समीप ही बैठकर उसने मुझे प्रणाम किया और घर पर पधारकर भोजन तथा विश्राम करने का आग्रह करने लगा। उसने चिलम सुलगा कर मेरी ओर पीने के लिए बढ़ाई। मेंढक के टराने की ध्वनि सुनकर वह उसका रहस्य जानने के लिए उत्सुक हो उठा। मैंने उसे बतलाया कि एक मेंढक कष्ट में है, जो अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोग रहा है। पूर्व जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में भोगना पड़ता है, अतः अब उसका चिल्लाना व्यर्थ है। एक कश लेकर उसने चिलम मेरी ओर बढ़ाई। “ थोड़ा देखूँ तो, आखिर बात क्या है?” ऐसा कहकर वह उधर जाने लगा। मैंने उसे बतलाया कि एक बड़े साँप ने एक मेंढक को मुँह में दबा लिया है, इस कारण वह चिल्ला रहा है। दोनों ही पूर्व जन्म में बड़े दुष्ट थे और अब इस शरीर में अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। आगन्तुक ने घटना-स्थल पर जाकर देखा कि सचमुच एक बड़े सर्प ने एक बड़े मेंढक को मुँह में दबा रखा है।

उसने वापस आकर मुझे बताया कि लगभग घड़ी-दो में ही साँप मेंढक को निगल जाएगा। मैंने कहा - “ नहीं, यह कभी नहीं हो सकता; मैं उसका संरक्षक पिता हूँ और इस समय यहाँ उपस्थित हूँ फिर सर्प की क्या सामर्थ्य है कि मेंढक को निगल जाए ? क्या मैं व्यर्थ ही यहाँ बैठा हूँ? देखो, मैं अभी उसकी किस प्रकार रक्षा करता हूँ।” दुबारा चिलम पीने के पश्चात् हम लोग उस स्थान पर गए। आगन्तुक डरने लगा और उसने मुझे आगे बढ़ने से रोका कि कहीं सर्प आक्रमण न कर दे। मैं उसकी बात की उपेक्षा कर आगे बढ़ा और दोनों से कहने लगा कि “ अरे वीरभद्रप्पा ! क्या तुम्हारे शत्रु को पर्याप्त फल नहीं मिल चुका है, जो उसे मेंढक की और तुम्हें यह सर्प की योनि प्राप्त हुई है? अरे ! अब तो अपना वैमनस्य छोड़ो। यह बड़ी लज्जाजनक बात है। अब तो इस ईर्ष्या को त्यागो और शांति से रहो।” इन शब्दों को सुनकर सर्प ने मेंढक को छोड़ दिया और शीघ्र ही नदी में लुप्त हो गया। मेंढक भी कूदकर भागा और झाड़ियों में जा छिपा।

उस यात्रीं को बड़ा अचम्भा हुआ। उसकी समझ में न आया कि बाबा के शब्दों को सुनकर साँप ने मेंढक को क्यों छोड़ दिया और वीरभद्रप्पा व चैनबसाप्पा कौन थे? उनके वैमनस्य का कारण क्या था? इस प्रकार के विचार उसके मन में उठने लगे। मैं उसके साथ उसी वृक्ष के नीचे लौट आया धूम्रपान करने के पश्चात् उसे इसका रहस्य सुनाने लगा:-

“मेरे निवासस्थान से लगभग ४-५ मील की दूरी पर एक पवित्र स्थान था, जहाँ महादेव का एक मंदिर था। मंदिर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण स्थिति में था, सो वहाँ के निवासियों ने उसका जीर्णोद्धार करने के हेतु कुछ चन्दा इकट्ठा किया। पर्याप्त धन एकत्रित हो गया और वहाँ नित्य पूजन की व्यवस्था कर मंदिर के निर्माण की योजनाएँ तैयार की गईं। एक धनाढ्य व्यक्ति को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर उसको समस्त कार्य की देख-भाल का भार सौंप दिया गया। उसको कार्य, व्यय आदि का यथोचित विवरण रखकर ईमानदारी से सब कार्य करना था। सेठ तो एक उच्च कौटि का कंजूस था। उसने मरम्मत में अत्यन्त अल्पराशि व्यय की, इस कारण मंदिर का जीर्णोद्धार भी उसी अनुपात में हुआ। उसने सब राशि व्यय कर दी तथा कुछ अंश स्वयं हड़प लिया और उसने अपनी गाँठ से एक पाई भी व्यय न की। उसकी वाणी अधिक रसीली थी, इसलिये उसने लोगों को किसी प्रकार समझा-बुझा लिया और कार्य पूर्वत् ही अधूरा रह गया। लोग फिर संगठित होकर उसके पास जाकर कहने लगे-सेठसाहेब! कृपया कार्य शीघ्र पूर्ण कीजिए। आपके प्रयत्न के अभाव में यह कार्य पूर्ण होना कदापि संभव नहीं। अतः आप पुनः योजना बनाइए। हम और भी चन्दा आपको वसूल करके देंगे। लोगों ने पुनः चन्दा एकत्रित कर सेठ को दे दिया। उसने रुपये तो ले लिए, परन्तु पूर्वत् ही शांत बैठा रहा। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी स्त्री को भगवान् शंकर ने स्वप्न दिया कि उठो और मंदिर पर कलश चढ़ाओ। जो कुछ भी तुम इस कार्य में व्यय करोगी, मैं उसका सौ गुना अधिक तुम्हें दूँगा। उसने यह स्वप्न अपने पति को सुना दिया। सेठ भयभीत होकर सोचने लगा कि यह कार्य तो ज्यादा रुपये खर्च कराने वाला है, इसलिये उसने यह बात हँसकर टाल दी कि यह तो एक निरा स्वप्न ही है और उस पर भी कहीं विश्वास किया जा सकता है? यदि ऐसा होता तो महादेव मेरे समक्ष ही प्रगट होकर यह बात मुझसे न कह देते? मैं क्या तुमसे अधिक दूर था? यह स्वप्न शुभदायक नहीं। यह तो पति-पत्नी के सम्बन्ध बिगाड़ने वाला है। इसलिये तुम बिलकुल शांत रहो। भगवान् को ऐसे द्रव्य की आवश्यकता ही कहाँ, जो दानियों की इच्छा के विरुद्ध एकत्र किया गया हो। वे तो सदैव प्रेम के भूखे हैं तथा प्रेम और भक्तिपूर्वक दिए गए एक तुच्छ ताँबे का सिक्का भी सहर्ष स्वीकार कर लते हैं। महादेव ने पुनः सेठानी को स्वप्न में कह दिया कि तुम अपने पति की व्यर्थ की बातों और उनके पास संचित धन की ओर ध्यान न दो और न उनसे मंदिर बनवाने के लिए आग्रह ही करो। मैं तो तुम्हारे प्रेम और भक्ति का ही भूखा हूँ। जो कुछ भी तुम्हारी व्यय करने की इच्छा हो, सो अपने पास से करो। उसने अपने पतिसे विचार-विनिमय करके अपने पिता से प्राप्त आभूषणों को विक्रय करने का निश्चय किया। तब कृपण सेठ अशान्त हो उठा। इस बार उसने भगवान् को भी धोखा देने की ठान ली। उसने कौड़ी-मोल केवल एक हजार रुपयों में ही अपनी पत्नी के समस्त आभूषण स्वयं खरीद डाले और एक बंजर भूमि का भाग मंदिर के निमित्त लगा दिया, जिसे उसकी पत्नी ने भी चुपचाप स्वीकार कर लिया। सेठ ने जो भूमि दी, वह उसकी स्वयं की न थी, वरन् एक निर्धन स्त्री 'दुबकी' की थी, जो इसके यहाँ दो सौ रुपयों में गहन रखी हुई थी। दीर्घकाल तक वह ऋण चुकाकर उसे वापस न ले सकी, इसलिए उस धूर्त कृपण ने अपनी स्त्री, 'दुबकी' और भगवान् को धोखा दे दिया। भूमि पथरीली होने के कारण उसमें उत्तम ऋतु में भी कोई पैदावार न होती थी। इस प्रकार यह लेन-देन समाप्त हुआ। भूमि उस मंदिर के पुजारी को दे दी गई, जो उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् एक विचित्र घटना घटित हुई। एक दिन बहुत जोरों से झंझावात आया और अति वृष्टि हुई। उस कृपण के घर पर बिजली गिरी और फलस्वरूप पति-पत्नी दोनों की मृत्यु हो गई। दुबकी ने भी अंतिम श्वास छोड़ दी। अगले जन्म में वह कृपण मथुरा के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ और उसका नाम 'वीरभद्रप्पा' रखा गया। उसकी धर्मपत्नी उस मंदिर के पुजारी के घर कन्या होकर उत्पन्न हुई और उसका नाम 'गौरी' रखा गया। 'दुबकी' पुरुष बनकर मंदिर के गुरव (सेवक) वंश में पैदा हुई और उसका नाम चैनबसाप्पा रखा गया। पुजारी मेरा मित्र था और अधिकांश मेरे पास आता जाता, वार्तालाप करता और मेरे साथ चिलम पिया करता था। उसकी पुत्री गौरी भी मेरी भक्त थी। वह दिनोंदिन सयानी होती जा रही थी, जिससे उसका पिता भी उसके हाथ पीले करने की चिंता में रहता था। मैंने उससे कहा कि चिंता की कोई आवश्यकता नहीं, वर स्वयं तुम्हारे घर लड़की की खोज में आ जाएगा। कुछ दिनों के पश्चात् ही उसी की जाति का वीरभद्रप्पा नामक एक युवक

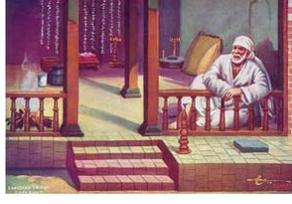
श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

भिक्षा माँगते-माँगते उसके घर पहुँचा। मेरी सम्मति से गौरी का विवाह उसके साथ सम्पन्न हो गया। पहले तो वह मेरा भक्त था, किन्तु अब वह कृतघ्न बन गया। इस नूतन जन्म में भी उसकी धन-तृष्णा नष्ट न हुई। उसने मुझसे कोई उद्योग धंधा सुझाने को कहा, क्योंकि इस समय वह विवाहित जीवन व्यतीत कर रहा था। तभी एक विचित्र घटना हुई। अचानक ही प्रत्येक वस्तुओं के भाव ऊँचे चढ़ गए। गौरी के भाग्य से जमीन की माँग अधिक होने लगी और समस्त भूमि एक लाख रुपयों में, आभूषणों के मूल्य से १०० गुना अधिक मूल्य में बिक गई। ऐसा निर्णय हुआ कि ५० हजार रुपये नगद और २००० रुपये प्रतिवर्ष किश्त पर चुकता कर दिए जाएँगे। सबको यह लेनदेने स्वीकार था, परन्तु धन में हिस्से के कारण उनमें परस्पर विवाद होने लगा। वे परामर्श लेने मेरे पास आये और मैंने कहा कि यह भूमि तो भगवान् की है, जो पुजारी को सौंपी गई थी। इसकी स्वामिनी 'गौरी' ही है और एक पैसा भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खर्च करना उचित नहीं तथा उसके पति का इस पर कोई अधिकारी नहीं है। मेरे निर्णय को सुनकर वीरभद्रप्पा मुझसे क्रोधित होकर कहने लगा कि तुम गौरी को फुसलाकर उसका धन हड़पना चाहते हो। इन शब्दों को सुनकर मैं भगवत् नाम लेकर चुप गया। वीरभद्र ने अपनी स्त्री को पीटा भी। गौरी ने दोपहर के समय आकर मुझसे कहा कि आप उन लोगों के कहने का बुरा न मानें। मैं तो आपकी लड़की हूँ। मुझ पर कृपादृष्टि ही रखें। वह इस प्रकार मेरी शरण में आई तो मैंने उसे वचन दे दिया कि **मैं सात समुद्र पार कर भी तुम्हारी रक्षा करूँगा।** तब उस रात्रि को गौरी को एक दृष्टांत हुआ। महादेव ने आकर कहा कि यह सब सम्पत्ति तुम्हारी ही है और इसमें से किसी को कुछ न दो। चैनबसाप्पा की सलाह से कुछ राशि मंदिर के कार्य के लिये खर्च करो। यदि और किसी भी कार्य में तुम्हें खर्च करने की इच्छा हो तो मस्जिद में जाकर बाबा (स्वयं मैं) के परामर्श से करो। गौरी ने उपना दृष्टांत मुझे सुनाया और मैंने इस विषय में उचित सलाह भी दी। मैंने उससे कहा कि मूलधन तो तुम स्वयं ले लो और व्याज की आधी रकम चैनबसाप्पाको दे दो। वीरभद्र का इसमें कोई संबन्ध नहीं है। जब मैं यह बात कर ही रहा था, वीरभद्र और चैनबसाप्पा दोनों ही वहाँ झगड़ते हुए आए। मैंने दोनों को शांत करने का प्रयत्न किया तथा गौरी को हुआ महादेव का स्वप्न भी सुनाया। वीरभद्र क्रोध से उन्मत्त हो गया और चैनबसाप्पा को टुकड़े-टुकड़े कर मार डालने की धमकी देने लगा। चैनबसाप्पा बड़ा डरपोक था। वह मेरे पैर पकड़कर रक्षा की प्रार्थना करने लगा। तब मैंने शत्रु के पाश से उसका छुटकारा करा दिया। कुछ समय पश्चात् ही दोनों की मृत्यु हो गई। वीरभद्र सर्प बना और चैनबसाप्पा मेंढक। चैनबसाप्पा की पुकार सुनकर और अपने पूर्व वचन की स्मृति करके यहाँ आया और इस तरह से उसकी रक्षा कर मैंने अपने वचन पूर्ण किये। **संकट के समय भगवान् दौड़कर अपने भक्त के पास जाते हैं। उसने मुझे यहाँ भेजकर चैनबसाप्पा की रक्षा कराई। यह सब ईश्वरीय लीला ही है।**

शिक्षा

इस कथा की यही शिक्षा है कि **जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, जब तक कि भोग पूर्ण नहीं होते।** पिछला ऋण और अन्य लोगों के साथ लेने-देने का व्यवहार जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक छुटकारा भी संभव नहीं है। धनतृष्णा मनुष्य का पतन कर देती है और अन्त में इससे ही वह विनाश को प्राप्त होता है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



सद्गुरु के लक्षण

(१) श्री शेवड़े और (२) श्री सपटणेकर व श्रीमती सपटणेकर (३) संतति दान।

अध्याय प्रारम्भ करने से पूर्व किसी ने हेमाङ्गपंत से प्रश्न किया कि साईबाबा गुरु थे या सद्गुरु? इसके उत्तर में हेमाङ्गपंत सद्गुरु के लक्षणों का निम्नप्रकार वर्णन करते हैं।

सद्गुरु के लक्षण

जो वेद और वेदान्त तथा छहों शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करके ब्रह्मविषयक मधुर व्याख्यान देने में पारंगत हो तथा जो अपने श्वासोच्छ्वास क्रियाओं पर नियंत्रण कर सहज ही मुद्राएँ लगाकर अपने शिष्यों को मंत्रोपदेश दे निश्चित अवधि में यथोचित संख्या का जप करने का आदेश दे और केवल अपने वाक्चातुर्य से ही उन्हें जीवन के अंतिम ध्येय का दर्शन कराता हो तथा जिसे स्वयं आत्मसाक्षात्कार न हुआ हो, वह सद्गुरु नहीं। वरन् जो अपने आचरणों से लौकिक व पारलौकिक सुखों से विरक्ति की भावना का निर्माण कर हमें आत्मानुभूति का रसास्वादन करा दे तथा जो अपने शिष्यों को क्रियात्मक और प्रत्यक्ष ज्ञान (आत्मानुभूति) करा दे, उसे ही सद्गुरु कहते हैं। जो स्वयं ही आत्मसाक्षात्कार से वंचित हैं, वे भला अपने अनुयायियों को किस प्रकार अनुभूति करा सकते हैं? सद्गुरु स्वप्न में भी अपने शिष्य से कोई लाभ या सेवा - शुश्रूषा की लालसा नहीं करते, वरन् स्वयं उनकी सेवा करने को ही उद्यत रहते हैं। उन्हें यह कभी भी भान नहीं होता है कि मैं कोई महान् हूँ और मेरा शिष्य मुझसे तुच्छ है, अपितु उसे अपने ही सदृश (या ब्रह्मस्वरूप) समझा करते हैं। सद्गुरु की मुख्य विशेषता यही है कि उनके हृदय में सदैव परम शांति विद्यमान रहती है। वे कभी अस्थिर या अशांत नहीं होते और न उन्हें अपने ज्ञान का ही लेशमात्र गर्व होता है। उनके लिए राजा-रंक, स्वर्ग -अपवर्ग सब एक ही समान हैं।

हेमाङ्गपंत कहते हैं कि मुझे गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप श्री साईबाबा सदृश सद्गुरु के चरणों की प्राप्ति तथा उनके कृपापात्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे अपने यौवन काल में चिलम के अतिरिक्त कुछ संग्रह न किया करते थे। न उनके बाल-बच्चे तथा मित्र थे, न घरबार था और न उन्हें किसी प्रकार का आश्रय प्राप्त था। १८ वर्ष की अवस्था से ही उनका मनोनिग्रह बड़ा विलक्षण था। वे निर्भय होकर निर्जन स्थानों में विचरण करते एवं सदा आत्मलीन रहते थे। वे सदैव भक्तों की निःस्वार्थ भक्ति देखकर ही उनकी इच्छानुसार आचरण किया करते थे। उनका कथन था कि मैं सदा भक्त के पराधीन रहता हूँ। जब वे शरीर में थे, उस समय भक्तों ने जो अनुभव किए, उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् आज भी जो उनके शरणागत हो चुके हैं, उन्हें उसी प्रकार के अनुभव होते रहते हैं। भक्तों को तो केवल इतना ही यथेष्ट है कि यदि वे अपने हृदय को भक्त और विश्वास का दीपक बनाकर उसमें प्रेम की ज्योति प्रज्वलित करें तो ज्ञानज्योति (आत्मसाक्षात्कार) स्वयं प्रकाशित हो उठेगी। प्रेम के अभाव में शुष्क ज्ञान व्यर्थ है। ऐसा ज्ञान किसी को भी लाभप्रद नहीं हो सकता, प्रेमभाव में संतोष नहीं होता। इसलिए हमारा प्रेम असीम और अटूट होना चाहिए। प्रेम की कीर्ति का गुणगान कौन कर सकता है, जिसकी तुलना में समस्त वस्तुएँ तुच्छ जान पड़ती हैं? प्रेमरहित पठनपाठन सब निष्फल है। प्रेमांकुर के उदय होते ही भक्ति, वैराग्य, शांति और कल्याणरूपी सम्पत्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। जब तक किसी वस्तु के लिए प्रेम उत्पन्न नहीं होता, तब तक उसे प्राप्त करने की भावना ही उत्पन्न नहीं होती। इसलिए जहाँ व्याकुलता और प्रेम है, वहाँ भगवान् स्वयं प्रगट हो जाते हैं। भाव में ही प्रेम अंतर्निहित है और वही माक्ष का कारणीभूत है। यदि कोई व्यक्ति कलुषित भाव से भी किसी सच्चे संत के चरण पकड़ ले तो यह निश्चित है कि वह अवश्य तर जाएगा। ऐसी ही कथा नीचे दर्शाई गई है।

श्री. शेवड़े

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

अक्कलकोट (सोलापुर जिला) के श्री. सपटणेकर वकालत का अध्ययन कर रहे थे। एक दिन उनकी अपनी सहपाठी श्री. शेवड़े से भेंट हुई। अन्य और भी विद्यार्थी वहाँ एकत्रित हुए और सब ने अपनी-अपनी अध्ययन संबंधी योग्यता का परस्पर परीक्षण किया। प्रश्नोत्तरों से विदित हो गया कि सब से कम अध्ययन श्री. शेवड़े का है और वे परीक्षा में बैठने के अयोग्य हैं। जब सब मित्रों ने मिलकर उनका उपहास किया, तब शेवड़े ने कहा कि “यद्यपि मेरा अध्ययन अपूर्ण है तो भी मैं परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरे साईबाबा ही सबको सफलता देने वाले हैं।” श्री. सपटणेकर को यह सुनकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्री. शेवड़े से पूछा कि ये साईबाबा कौन हैं, जिनका तुम इतना गुणगान कर रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया कि वे एक फकीर हैं, जो शिरडी (अहमदनगर) की एक मस्जिद में निवास करते हैं। वे महान् सत्पुरुष हैं। ऐसे अन्य संत भी हो सकते हैं, परन्तु वे उनसे अद्वितीय हैं। **जब तक पूर्व जन्म के शुभ संस्कार संचित न हों, तब तक उनसे भेंट होना दुर्लभ है।** मेरी तो उन पर पूर्ण श्रद्धा है। उनके श्रीमुख से निकले वचन कभी असत्य नहीं होते। उन्होंने ही मुझे विश्वास दिलाया है कि मैं अगले वर्ष परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मेरा भी अटल विश्वास है कि मैं उनकी कृपा से परीक्षा में अवश्य ही सफलता पाऊँगा। श्री. सपटणेकर को अपने मित्र के ऐसे विश्वास पर हँसी आ गई और साथ ही साथ श्री साईबाबा का भी उन्होंने उपहास किया। भविष्य में जब शेवड़े दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये, तब सपटणेकर को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्री. सपटणेकर

श्री. सपटणेकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् अक्कलकोट में रहने लगे और वहीं उन्होंने अपनी वकालत प्रारम्भ कर दी। दस वर्षों के पश्चात् सन् १९१३ में उनके इकलौते पुत्र की गले की बीमारी से मृत्यु हो गई, जिससे उनका हृदय विचलित हो उठा। मानसिक शांति प्राप्त करने हेतु उन्होंने पंढरपुर, गाणगापुर और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की। परन्तु उनकी अशांति पूर्ववत् ही बनी रही। उन्होंने वेदांत का भी श्रवण किया, परन्तु वह भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। अचानक उन्हें शेवड़े के वचनों तथा श्री साईबाबा के प्रति उनके विश्वास की स्मृति हो आई और उन्होंने विचार किया कि मुझे भी शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करना चाहिए। वे अपने छोटे भाई पंडितराव के साथ शिरडी आए। बाबा के दर्शन कर उन्हें बड़ी प्रन्नता हुई। जब उन्होंने समीप जाकर नमस्कार करके शुद्ध भावना से श्रीफल भेंट किया तो बाबा तुरन्त क्रोधित हो उठे और बोले कि “ यहाँ से निकल जाओ।” सपटणेकर का सिर झुक गया और वे कुछ हटकर पीछे बैठे गए। वे यह जानना चाहते थे कि किस प्रकार उनके समक्ष उपस्थित होना चाहिए। किसी ने उन्हें बाला शिम्पी का नाम सुझा दिया। सपटणेकर उनके पास गए और उनसे सहायता करने की प्रार्थना करने लगे। तब वे दोनों बाबा का एक चित्र मोल लेकर मस्जिद को आये। बाला शिम्पी ने अपने हाथ में चित्र लेकर बाबा के हाथ में दे दिया और पूछा कि यह किसका चित्र है? बाबा ने सपटणेकर की ओर संकेत कर कहा कि “ यह तो मेरे यार का है।” यह कहकर वे हँसने लगे और साथ ही सब भक्त मंडली भी हँसने लगी। बाला शिम्पी के इशारे पर जब सपटणेकर उन्हें प्रणाम करने लगे तो वे पुनः चिल्ला पड़े कि “ बाहर निकलो।” सपटणेकर की समझ में नहीं आता था कि वे क्या करें। तब वे दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बाबा के सामने बैठ गये, परन्तु बाबा ने उन्हें तुरन्त ही बाहर निकलने की आज्ञा दी। वे दोनों बहुत ही निराश हुए। उनकी आज्ञा कौन टाल सकता था? आखिर सपटणेकर खिन्न-हृदय शिरडी से वापस चले आये। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की कि “ हे साई ! मैं आपसे दया की भिक्षा माँगता हूँ। कम से कम इतना ही आश्वासन दे दीजिए कि मुझे भविष्य में कभी न कभी आपके श्री दर्शनों की अनमति मिल जाएगी।”

श्रीमती सपटणेकर

एक वर्ष बीत गया, फिर भी उनके मन में शांति न आई। वे गाणगापुर गए, जहाँ उनके मन में और अधिक अशांति बढ़ गई। अतः वे माढेगाँव विश्राम के लिये पहुँचे और वहाँ से ही काशी जाने का निश्चय किया। प्रस्थान करने के दो दिन पूर्व उनकी पत्नी को स्वप्न हुआ कि वह स्वप्न में एक गागर ले लक्कड़शाह के कुएँ पर जल भरने जा रही है। वहाँ नीम के नीचे एक फकीर बैठा है। सिर पर एक कपड़ा बँधा हुआ है। फकीर उसके पास आकर कहने लगा कि “ मेरी प्रिय बच्ची ! तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठा रही हो ? मैं तुम्हारी गागर निर्मल जल से भर देता हूँ।” तब फकीर के भय से वह खाली गागर लेकर ही लौट आई। फकीर भी उसके पीछे-पीछे चला आया। इतने में ही घबराहट में उसकी निद्रा भंग हो गई और उसने आँखें खोल दीं। यह स्वप्न उसने अपने पति को सुनाया। उन्होंने इसे एक शुभ शकुन जाना और वे दोनों शिरडी को रवाना हो गए। जब वे मस्जिद पहुँचे तो बाबा वहाँ उपस्थित न थे। वे लेण्डी बाग गए हुए थे। उनके लौटने की प्रतीक्षा में वे वहीं बैठे रहे। जब बाबा लौटे तो उन्हें देखकर उनकी पत्नी को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में जिस फकीर के उसने दर्शन किए थे, उसकी

आकृति बाबा से बिलकुल मिलती-जुलती थी। उसने अति आदरसहित बाबा को प्रणाम किया और वहीं बैठे-बैठे उन्हें निहारने लगी। उसका विनम्र स्वभाव देखकर बाबा अत्यन्त प्रसन्न हो गए। अपनी पद्धति के अनुसार वे एक तीसरे व्यक्ति को अपने अनोखे ढंग से एक कहानी सुनाने लगे - “ मेरे हाथ, उदर, शरीर तथा कमर में बहुत दिनों से दर्द हुआ करता था। मैंने उनेक उपचार किए, परन्तु मुझे कोई लाभ न पहुँचा। मैं औषधियों से ऊब उठा, क्योंकि मुझे उनसे कोई लाभ न हो रहा था, परन्तु अब मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है कि मेरी समस्त पीड़ाएँ एकदम ही जाती रहीं। ” यद्यपि किसी का नाम नहीं लिया गया था, परन्तु यह चर्चा स्वयं श्रीमती सपटणेकर की थी। उनकी पीड़ा जैसा बाबा ने अभी कहा, सर्वथा मिट गई और वे अत्यन्त प्रसन्न हो गईं।

संतति –दान

तब श्री. सपटणेकर दर्शनों के लिए आगे बढ़े, परन्तु उनका पूर्वोक्त वचनों से ही स्वागत हुआ कि “ बाहर निकल जाओ ।” इस बार वे बहुत धैर्य और नम्रता धारण करके आए थे। उन्होंने कहा कि पिछले कर्मों के कारण ही बाबा मुझसे अप्रसन्न हैं और उन्होंने अपना चरित्र सुधारने का निश्चय कर लिया और बाबा से एकान्त में भेंट करके अपने पिछले कर्मों की क्षमा माँगने का निश्चय किया। उन्होंने वैसा ही किया भी और अब जब उन्होंने अपना मस्तक उनके श्रीचरणों पर रखा तो बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अब सपटणेकर उनके चरण दबाते हुए बैठे ही थे कि इतने में एक गड़ेरिन आई और बाबा की कमर दबाने लगी। तब वे सदैव की भाँति एक बनीए की कहानी सुनाने लगे। जब उन्होंने उसके जीवन के अनेकों परिवर्तन तथा उसके इकलौते पुत्र की मृत्यु का हाल सुनाया तो सपटणेकर को अत्यंत आश्चर्य हुआ कि जो कथा वे सुना रहे हैं, वह तो मेरी ही हैं। उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ कि उनको मेरे जीवन की प्रत्येक बात का पता कैसे चल गया? अब उन्हें विदित हो गया कि बाबा अन्तर्यामी हैं और सबके हृदय का पूरा-पूरा रहस्य जानते हैं। यह विचार उनके मन में आया ही था कि गड़ेरिन से वार्त्तालाप चालू रखते हुए बाबा सपटणेकर की ओर संकेत कर कहने लगे कि “ यह भला आदमी मुझ पर दोषारोपण करता है कि मैंने ही इसके पुत्र को मार डाला है। क्या मैं लोगों के बच्चों के प्राण -हरण करता हूँ? फिर ये महाशय मस्जिद में आकर अब क्यों चीख-पुकार मचाते हैं? अब मैं एक काम करूँगा। अब मैं उसी बालक को फिर से इनकी पत्नी के गर्भ में ला दूँगा ।” - ऐसा कहकर बाबा ने अपना वरद हस्त सपटणेकर के सिर पर रखा और उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि “ **ये चरण अधिक पुरातन तथा पवित्र हैं। जब तुम चिंता से मुक्त होकर मुझ पर पूरा विश्वास करोगे, तभी तुम्हें अपने ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी।**” सपटणेकर का हृदय गद्गद हो उठा। तब अश्रुधारा से उनके चरण धोकर वे अपने निवासस्थान पर लौट आए और फिर पूजन की तैयारी कर नैवेद्य आदि लेकर वे सपत्नीक मस्जिद में आए। वे इसी प्रकार नित्य नैवेद्य चढाते और बाबा से प्रसाद ग्रहण करते रहे। मस्जिद में अपार भीड़ होते हुए भी वे वहाँ जाकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते थे। एक दूसरे से सिर टकराते देखकर बाबा ने उनसे कहा कि “ **प्रेम तथा श्रद्धा द्वारा हुआ एक ही नमस्कार मुझे पर्याप्त है।**” उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी का उत्सव देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और उन्हें बाबा ने पांडुरंग के रूप में दर्शन दिए।

जब वे दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो उन्होंने विचार किया कि पहले दक्षिणा में बाबा को एक रुपया दूँगा। यदि उन्होंने और माँगे तो अस्वीकार करने के बजाय एक रुपया और भेंट में चढ़ा दूँगा। फिर भी यात्रा के लिए शेष द्रव्यराशि पर्याप्त होती। जब उन्होंने मस्जिद जाकर बाबा को एक रुपया दक्षिणा दी तो बाबा ने भी उनकी इच्छा जानकर एक रुपया उनसे और माँगा। जब सपटणेकर ने उसे सहर्ष दे दिया तो बाबा ने भी उन्हें आशीर्वाद देकर कहा कि “ यह श्रीफल ले जाओ और इसे अपनी पत्नी की गोद में रखकर निश्चित होकर घर जाओ। ” उन्होंने वैसा ही किया और एक वर्ष के पश्चात् ही उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। आठ मास का शिशु लेकर वह दम्पति फिर शिरड़ी को आए और बाबा के चरणों पर बालक को रखकर फिर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि “ हे श्रीसाईनाथ ! आपके ऋण हम किस प्रकार चुका सकेंगे ? आपके श्रीचरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है। हम दीनों पर आप सदैव कृपा करते रहिएगा, क्योंकि हमारे मन में ही सोते /जागते हर समय न जाने क्या/क्या संकल्प /विकल्प उठा करते हैं। आपके भजन में ही हमारा मन मग्न हो जाए, ऐसा आशीर्वाद दीजिए। ”

उस पुत्र का नाम ‘मुरलीधर’ रखा गया। बाद में उनके दो पुत्र (भास्कर और दिनकर) और उत्पन्न हुए। इस प्रकार सपटणेकर दम्पति को अनुभव हो गया कि बाबा के वचन कभी असत्य और अपूर्ण नहीं निकले।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह
॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह



परीक्षा

(१) हरि कानोबा (२) सोमदेव स्वामी (३) नानासाहेब चाँदोरकर की कथाएँ।

प्रस्तावना

जब वेद और पुराण ही ब्रह्म या सद्गुरु का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं तब मैं एक अल्पज्ञ प्राणी अपने सद्गुरु श्री साईबाबा का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ? मेरा स्वयं का तो यह मत है कि इस विषय में मौन धारण करना ही अति उत्तम है। सच पूछा जाय तो मूक रहना ही सद्गुरु की विमल पताकारुपी विरुदावली का उत्तम प्रकार से वर्णन करना है। परन्तु उनमें जो उत्तम गुण हैं, वे हमें मूक कहाँ रहने देते हैं? यदि स्वादिष्ट भोजन बने और मित्र तथा सम्बन्धी आदि साथ बैठकर न खाएँ तो वह नीरस-सा प्रतीत होता है और जब वही भोजन सब एक साथ बैठकर खाते हैं, तब उसमें एक विशेष प्रकार की सुस्वादुता आ जाती है। वैसी ही स्थिति साईलीलामृत के सम्बन्ध में भी है। इसका एकांत में रसास्वादन कभी नहीं हो सकता। यदि मित्र और पारिवारिक जन सभी मिलकर इसका रस लें तो और अधिक आनन्द आ जाता है। श्री साईबाबा स्वयं ही अंतःप्रेरणा कर अपनी इच्छानुसार ही इन कथाओं को मुझसे वर्णित करा रहे हैं। इसलिए हमारा तो केवल इतना ही कर्तव्य है कि अनन्यभाव से उनके शरणागत होकर उनका ही ध्यान करें। तप साधन, तीर्थ यात्रा, व्रत एवं यज्ञ और दान से हरिभक्त श्रेष्ठ है और सद्गुरु का ध्यान इन सबमें परम श्रेष्ठ है। इसलिए सदैव मुख से साईनाम का स्मरण कर उनके उपदेशों का निदिध्यासन एवं स्वरूप का चिन्तन कर हृदय में उनके प्रति सत्य और प्रेम के भाव से समस्त चेष्टाएँ उनके ही निमित्त करनी चाहिए। भवबन्धन से मुक्त होने का इससे उत्तम साधन और कोई नहीं। यदि उपर्युक्त विधि से कर्म करते जायें तो साई को विवश होकर हमारी सहायता कर हमें मुक्ति प्रदान करनी ही पड़ेगी। अब इस अध्याय की कथा श्रवण करें।

हरि कानोबा

बम्बई के हरि कानोबा नामक एक महानुभाव ने अपने कई मित्रों और संबन्धियों से साई बाबा की अनेक लीलाएँ सुनी थी, परन्तु उन्हें विश्वास ही न होता था; क्योंकि वे संशयालु प्रकृति के व्यक्ति थे। अविश्वास उनके हृदयपटल पर अपना आसना जमाए हुए था। वे स्वयं बाबा की परीक्षा करने का निश्चय करके अपने कुछ मित्रों सहित बम्बई से शिरडी आये। उन्होंने सिर पर एक जरी की पगड़ी और पैरों में नए सैंडिल पहिन रखे थे। उन्होंने बाबा को दूर से ही देखकर उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम तो करना चाहा, परन्तु उनके नये सैंडिल इस कार्य में बाधक बन गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए। तब उन्होंने अपने सैंडिल मंडप के एक सुरक्षित कोने में रखे और मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किए। उनका ध्यान सैंडिलों पर ही लगा रहा। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक बाबा को प्रणाम किया और उनसे प्रसाद और उदी प्राप्त कर लौट आए। पर जब उन्होंने कोने में दृष्टि डाली तो देखा कि सैंडिल तो अंतर्द्धान हो चुके हैं। पर्याप्त छानबीन भी व्यर्थ हुई और अन्त में निराश होकर वे अपने स्थान पर वापस आ गए।

स्नान, पूजन और नैवेद्य आदि अर्पित करके वे भोजन करने को तो बैठे, परन्तु वे पूरे समय तक उन सैंडिलों के चिन्तन में ही निमग्न रहे। भोजन कर मुँह-हाथ धोकर जब वे बाहर आए तो उन्होंने एक मराठा बालक को अपनी ओर आते देखा, जिसके हाथ धोने के लिए बाहर आने वाले लोगों से कहा कि बाबा ने मुझे यह डण्डा हाथ में देकर रास्तों में घूम-घूम कर "हरि का बेटा जरी का फेंटा" की पुकार लगाने को कहा है तथा जो कोई कहे कि सैंडिल हमारे हैं, उससे पहले यह पूछना कि क्या उसका नाम हरि और उसके पिता का 'क' (अर्थात् कानोबा) हैं? साथ ही यह भी देखना कि वह जरीदार साफा बाँधे हुए हैं, या नहीं, तब इन्हें उसे दे देना। बालक का कथन सुनकर हरि कानोबा को बेहद आनन्द व आश्चर्य हुआ। उन्होंने आगे बढ़कर बालक से कहा कि ये हमारे

ही सॅडिल हैं, मेरा ही नाम हरि और मैं ही 'क' (कानोबा) का पुत्र हूँ । यह मेरा जरी का साफा देखा । बालक सन्तुष्ट हो गया और सॅडिल उन्हें दे दी। उन्होंने सोचा कि मेरी जरीदार पगड़ी तो सब को ही दिख रही थी। हो सकता है कि बाबा की भी दृष्टि में आ गई हो। परन्तु यह मेरी शिरड़ी-यात्रा का प्रथम अवसर है, फिर बाबा को यह कैसे विदित हो गया कि मेरा ही नाम हरि है और मेरे पिता का कानोबा? वह तो कवल की परीक्षार्थ वहाँ आया था। उसे इस घटना से बाबा की महानता विदित हो गई । उसकी इच्छा पूर्ण हो गई और वह सहर्ष घर लौट गया।

सोमदेव स्वामी

अब एक दूसरे संशयालु व्यक्ति की कथा सुनिए, जो बाबा की परीक्षा करने आया था। काकासाहेब दीक्षित के भ्राता श्री. भाईजी नागपुर में रहते थे। जब वे सन् १९०६ में हिमालय गए थे, तब उनका गंगोत्री घाटी के नीचे हरिद्वार के समीप उत्तर काशी में एक सोमदेव स्वामी से परिचय हो गया। दोनों ने एक दूसरे के पते लिख लिये। पाँच वर्ष पश्चात् सोमदेव स्वामी नागपुर में आए और भाईजी के यहाँ ठहरे । वहाँ श्री साईबाबा की कीर्ति सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा हुई । मनमाड़ और कोपरगाँव निकल जाने पर वे एक ताँगे में बैठकर शिरड़ी को चल पड़े। शिरड़ी के समीप पहुँचने पर उन्होंने दूर से ही मस्जिद पर दो ध्वज लहराते देखे। सामान्यतः देखने में आता है कि भिन्न-भिन्न सन्तों का बर्ताव, रहन-सहन और बाह्य सामग्रियाँ प्रायः भिन्न प्रकार की ही रहा करती हैं। परन्तु केवल इन वस्तुओं से ही सन्तों की योग्यता का आकलन कर लेना बड़ी भूल है। सोमदेव स्वामी कुछ भिन्न प्रकृति के थे। उन्होंने जैसे ही ध्वजों को लहराते देखा तो वे सोचने लगे कि बाबा सन्त होकर इन ध्वजों में इतनी दिलचस्पी क्यों रखते हैं? क्या इससे उनका सन्तपन प्रकट होता है? ऐसा प्रतीत होता है कि यह सन्त अपनी कीर्ति का इच्छुक है। अतएव उन्होंने शिरड़ी जाने का विचार त्याग कर अपने सहयात्रियों से कहा कि मैं तो वापस लौटना चाहता हूँ । तब वे लोग कहने लगे कि फिर व्यर्थ ही इतनी दूर क्यों आए? अभी केवल ध्वजों को देखकर तुम इतने उद्विग्न हो उठे हो तो जब शिरडी में रथ, पालकी, घोड़ा और अन्य सामग्रियाँ देखोगे, तब तुम्हारी क्या दशा होगी? स्वामी को अब और भी अधिक घबराहट होने लगी और उसने कहा कि मैंने उनेक साधु-सन्तों के दर्शन किए हैं, परन्तु यह सन्त कोई विरला ही है, जो इस प्रकार ऐश्वर्य की वस्तुएँ संग्रह कर रहा है। ऐसे साधु के दर्शन न करना ही उत्तम है, ऐसा कहकर वे वापस लौटने लगे। तीर्थयात्रियों ने प्रतिरोध करते हुए उन्हें आगे बढ़ने की सलाह दी और समझाया कि तुम यह संकुचित मनोवृत्ति छोड़ दो। मस्जिद में जो साधु हैं, वे इन ध्वजाओं और अन्य सामग्रियों या अपनी कीर्ति का स्वप्न में भी सोचविचार नहीं करते। ये सब तो उनके भक्तगण प्रेम और भक्ति के कारण ही उनको भेंट किया करते हैं। अन्त में वे शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करने को तैयार हो गए। मस्जिद के मंडप में पहुँच कर तो वे द्रवित हो गए । उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और कंठ रुँध गया। अब उनके सब दूषित विचार हवा हो गए और उन्हें अपने गुरु के शब्दों की स्मृति हो आई कि **“मन जहाँ अति प्रसन्न और आकर्षित हो जाय, उसी स्थान को ही अपना विश्रामधाम समझना।”** वे बाबा की चरण-रज में लोटना चाहते थे, परन्तु जब वे उनके समीप गए तो बाबा एकदम क्रोधित होकर जोर-जोर चिल्लाकर कहने लगे कि **“हमारा सामान हमारे ही साथ रहने दो, तुम अपने घर वापस लौट जाओ। सावधान। यदि फिर कभी मस्जिद की सीढ़ी चढ़े तो। ऐसे संत के दर्शन ही क्यों करना चाहिए, जो मस्जिद पर ध्वजाएँ लगाकर रखे? क्या ये सन्तपन के लक्षण हैं? एक क्षण भी यहाँ न रुको।”** अब उसे अनुभव हो गया कि बाबा ने अपने हृदय की बात जान ली है और वे कितने सर्वज्ञ हैं! उसे अपनी योग्यता पर हँसी आने लगी तथा उसे पता चल गया कि बाबा कितने निर्विकार और पवित्र हैं। उसने देखा कि वे किसी को हृदय से लगाते और किसी को हाथ से स्पर्श करते हैं तथा किसी को सान्त्वना देकर प्रेमदृष्टि से निहारते हैं। किसी को उदी प्रसाद देकर सभी प्रकार से भक्तों को सुख और सन्तोष पहुँचा रहे हैं तो फिर मेरे साथ ऐसा रुक्ष बर्ताव क्यों ? अधिक विचार करने पर वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसका कारण मेरे आन्तरिक विचार ही थे और इससे शिक्षा ग्रहण कर मुझे अपना आचरण सुधारना चाहिए। बाबा का क्रोध तो मेरे लिए वरदानस्वरूप है । अब यह कहना व्यर्थ ही होगा कि वे बाबा की शरण में आ गए और उनके एक परम भक्त बन गये।

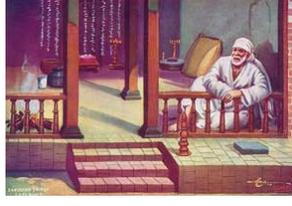
नानासाहेब चाँदोरकर

अन्त में नानासाहेब चाँदोरकर की कथा लिखकर हेमाङ्गंत ने यह अध्याय समाप्त किया है। एक समय जब नानासाहेब, म्हालसापति और अन्य लोगों के साथ मस्जिद में बैठे हुए थे तो बीजापुर से एक सम्भ्रान्त यवन परिवार श्री साईबाबा के दर्शनार्थ आया। कुलवन्तियों की लाजरक्षण भावना देखकर नानासाहेब वहाँ से निकल जाना चाहते थे, परन्तु बाबा ने उन्हें रोक लिया। स्त्रियाँ आगे बढ़ीं और उन्होंने बाबा के दर्शन किये। उनमें से एक महिला ने अपने मुँह पर से घूँघट हटाकर बाबा के चरणों में प्रणम कर फिर घूँघट डाल लिया। नानासाहेब उसके

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

सौंदर्य से आकर्षित हो गए और एक बार पुनः वह छटा देखने को लालायित हो उठे । नाना के मन की व्यथा जानकर उन लोगों के चले जाने के पश्चात् बाबा उनसे कहने लगे कि “ नाना, क्यों व्यर्थ में मोहित हो रहे हो? इन्द्रियों को अपना कार्य करने दो। हमें उनके कार्य में बाधक न होना चाहिए। भगवान् ने यह सुन्दर सृष्टि निर्माण की है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम उसके सौन्दर्य की सराहना करें । यह मन तो क्रमशः ही स्थिर होता है और जब सामने का द्वार खुला है, तब हमें पिछले द्वारे से क्यों प्रविष्ट होना चाहिए? चित्त शुद्ध होते ही फिर किसी कष्ट का अनुभव नहीं होता। यदि हमारे मन में कुविचार नहीं हैं तो हमें किसी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं । नेत्रों को अपना कार्य करने दो। इसके लिये तुम्हें लज्जित तथा विचलित न होना चाहिए।” उस समय शामा भी वहीं थे। उनकी समझ में न आया कि आखिर बाबा के कहने का तात्पर्य क्या है? इसलिए लौटते समय इस विषय में उन्होंने नाना से पूछा । उस परम सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर जिस प्रकार वे मोहित हुए तथा यह व्यथा जानकर बाबा ने इस विषय पर जो उपदेश उन्हें दिए, उन्होंने उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहकर शामा को इस प्रकार समझाया -“हमारा मन स्वभावतः ही चंचल है, पर हमें उसे लम्पट न होने देना चाहिए। इन्द्रियाँ चाहे भले ही चंचल हो जाएँ, परन्तु हमें अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखकर उसे अशांत न होने देना चाहिए । इन्द्रियाँ तो अपने विषयपदार्थों के लिए सदैव चेष्टा किया ही करती हैं, पर हमें उनके वशीभूत होकर उनके इच्छित पदार्थों के के समीप न जाना चाहिए। क्रमशः प्रयत्न करते रहने से इस चंचलता को नियंत्रित किया जा सकता है। यद्यपि उन पर पूर्ण नियंत्रण सम्भव नहीं है तो भी हमें उनके वशीभूत न होना चाहिये। प्रसंगानुसार हमें उनका वास्तविक रूप से उचित गति-अवरोध करना चाहिए। सौन्दर्य तो आँखें सेंकने का विषय है, इसलिये हमें निडर होकर सुन्दर पदार्थों की ओर देखना चाहिये। यदि हममें किसी प्रकार के कुविचार न आए तो इसमें लज्जा और भय की आवश्यकता ही क्या है। यदि मन को निरिच्छ बनाकर ईश्वर के सौन्दर्य को निहारो तो इन्द्रियाँ सहज और स्वाभाविक रूप से अपने वश में आ जाएँगी और विषयानन्द लेते समय भी तुम्हें ईश्वर की स्मृति बनी रहेगी । यदि उसे बाह्य इन्द्रियों के पीछे दौड़ने तथा उनमें लिप्त रहने दोगे तो तुम्हारा जन्म-मृत्यु के पाश से कदापि छुटकारा न होगा। विषयपदार्थ इन्द्रियों को सदा पथभ्रष्ट करने वाले होते हैं। अतएव हमें विवेक को सारथी बनाकर मन की लगाम अपने हाथ में लेकर इन्दिय रूपी घोड़ों को विषयपदार्थों की ओर जाने से रोक लेना चाहिए। ऐसा विवेक रूपी सारथी हमें विष्णु-पद की प्राप्ति करा देगा, जो हमारा यथार्थ में परम सत्य धाम है और जहाँ गया हुआ प्राणी फिर कभी यहाँ नहीं लौटता ।”

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥



(१) काकासाहेब दीक्षित, (२) श्री. टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ।

मूल सच्चरित्र के अध्यास ४३ और ४४ को हमने एक साथ सम्मिलित कर लिखा है, क्योंकि इन दोनों अध्यासों का विषय प्रायः एक-सा ही है। अब सच्चरित्र का अध्याय ५१ यहाँ ५० वें अध्याय के रूप में लिखा जा रहा है। इस अध्याय में (१) काकासाहेब दीक्षित, (२) टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ हैं।

प्रस्तावना

उन श्रीसाई महाराज की जय हो, जो भक्तों के जीवनाधार एवं सद्गुरु हैं। वे गीताधर्म का उपदेश देकर हमें शक्ति प्रदान कर रहे हैं। हे साई, कृपादृष्टि से देखकर हमें आशीष दो। जैसे मलयगिरि में होनेवाले चन्दनवृक्ष समस्त तारों का हरण कर लेता है अथवा जिस प्रकार बादल जलवृष्टि कर लोगों को शीतलता और आनन्द पहुँचाते हैं या जैसे वसन्त में खिले फूल ईश्वरपूजन के काम आते हैं, इसी प्रकार श्री साईबाबा की कथाएँ पाठकों तथा श्रोताओं को धैर्य एवं सान्त्वना देती हैं। जो कथा कहते या श्रवण करते हैं, वे दोनों ही धन्य हैं, क्योंकि उनके कहने से मुख तथा श्रवण से कान पवित्र हो जाते हैं।

यह तो सर्वमान्य है कि चाहे हम सैकड़ों प्रकार की साधनाएँ क्यों न करें, जब तक सद्गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक हमें अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी विषय में यह निम्नलिखित कथा सुनिये :-

काकासाहेब दीक्षित (१८६४-१९२६)

श्री हरि सीताराम उपनाम काकासाहेब दीक्षित सन् १८६४ में वड़नगर के नागर ब्राह्मण कुल में खण्डवा में पैदा हुए थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा खण्डवा और हिंगणघाट में हुई। माध्यमिक शिक्षा नागपुर में उच्च श्रेणी में प्राप्त करने के बाद उन्होंने पहले विल्सन तथा बाद में एल्फिन्स्टन कॉलेज में अध्ययन किया। सन् १८८३ में उन्होंने ग्रेज्युएट की डिग्री लेकर कानूनी (LL.B.) और कानूनी सलाहकार (Solicitor) की परीक्षाएँ पास की और फिर वे सरकारी सॉलिसिटर फर्म-मेसर्स लिटिल एण्ड कम्पनी में कार्य करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने स्वतः की एक सॉलिसिटर फर्म चालू कर दी।

सन् १९०९ के पहले तो बाबा की कीर्ति उनके कानों तक नहीं पहुँची थी, परन्तु इसके पश्चात् वे शीघ्र ही बाबा के परम भक्त बन गए। जब वे लोनावला में निवास कर रहे थे तो उनकी अचानक भेंट अपने पुराने मित्र नानासाहेब चाँदोरकर से हुई। दोनों ही इधर-उधर की चर्चाओं में समय बिताते थे। काकासाहेब ने उन्हें बताया कि जब वे लन्दन में थे तो रेलगाड़ी पर चढ़ते समय कैसे उनका पैर फिसला तथा कैसे उसमें चोट आई, इसका पूर्ण विवरण सुनाया। काकासाहेब ने आगे कहा कि मैंने सैकड़ों उपचार किये, परन्तु कोई लाभ न हुआ। नानासाहेब ने उनसे कहा कि यदि तुम इस लँगड़ेपन तथा कष्ट से मुक्त होना चाहते हो तो मेरे सद्गुरु श्री साईबाबा की शरण में जाओ। उन्होंने बाबा का पूरा पता बताकर उनके कथन को दुहराया कि "मैं अपने भक्त को सात समुद्रों के पार से भी उसी प्रकार खींच लूँगा, जिस प्रकार कि एक चिड़िया को जिसका पैर रस्सी से बँधा हो, खींच कर अपने पास लाया जाता है।"

उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि तुम बाबा के निजी जन न होगे तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे। काकासाहेब को ये बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा, वे शिरडी जाकर बाबा से प्रार्थना करेंगे कि शारीरिक लँगड़ेपन के बदले उनके चंचल मन को अपंग बनाकर परमानन्द की प्राप्ति करा दें।

कुछ दिनों के पश्चात् ही बम्बई विधान सभा (Legislative Assembly)के चुनाव में मत प्राप्त करने के सम्बन्ध में काकासाहेब दीक्षित अहमदनगर गए और सरदार काकासाहेब मिरीकर के यहाँ ठहरे । श्री. बालासाहेब मिरीकर जो कि कोपरगाँव के मामलतदार तथा काकासाहेब मिरीकर के सुपुत्र थे, वे भी इसी समय अश्वप्रदर्शनी देखने के हेतु अहमदनगर पधारे थे। चुनाव का कार्य समाप्त होने के पश्चात् काकासाहेब दीक्षित शिरडी जाना चाहते थे। यहाँ पिता और पुत्र दोनों ही घर में विचार कर रहे थे कि काकासाहेब के साथ भेजने के लिए कौन सा व्यक्ति उपयुक्त होगा और दूसरी ओर बाबा अलग ही ढंग से उन्हें अपने पास बुलाने का प्रबन्ध कर रहे थे। शामा के पास एक तार आया कि उनकी सास की हालत अधिक शोचनीय है और उन्हें देखने को वे शीघ्र ही अहमदनगर को आए । बाबा से अनुमति प्राप्त कर शामा ने वहाँ जाकर अपनी सास को देखा, जिनकी स्थिति में अब पर्याप्त सुधार हो चुका था। प्रदर्शनी को जाते समय नानासाहेब पानसे तथा अप्पासाहेब गद्रे की दृष्टि अचानक शामा पर पड़ी। उन्होंने शामा से मिरीकर के घर जाकर काकासाहेब दीक्षित से भेंट करने तथा उन्हें अपने साथ शिरडी ले जाने को कहा। उन्होंने शामा के आगमन की सूचना काकासाहेब दीक्षित और मिरीकर को भी दे दी । सन्ध्या समय शामा मिरीकर के घर आए। मिरीकर ने शामा का काकासाहेब दीक्षित से परिचय करा दिया और फिर ऐसा निश्चय हुआ कि काकासाहेब दीक्षित उनके साथ रात्र १० बजेवाली गाड़ी से कोपरगाव को रवाना हो जाएँ । इस निश्चय के बाद ही एक विचित्र घटना घटी। बालासाहेब मिरीकर ने बाबा के एक बड़े चित्र पर से परदा हटाकर काकासाहेब दीक्षित को उनके दर्शन कराये तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिनके दर्शनार्थ मैं शिरडी जाने वाला हूँ , वे ही इस चित्र के रूप में मेरे स्वागत हेतु यहाँ विराजमान हैं। तब अत्यन्त द्रवित होकर वे बाबा की वन्दना करने लगे । यह चित्र मेघा का था और काँच लगाने के लिए मिरीकर के पास आया था। दूसरा काँच लगवा कर उसे काकासाहेब दीक्षित तथा शामा के हाथ वापस शिरडी भेजने का प्रबन्ध किया गया। दस बजे से पहले ही स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने द्वितीय श्रेणी का टिकट ले लिया। जब गाड़ी स्टेशनपर आई तो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा खचाखच भर हुआ था । उसमें बैठने को तिलमात्र भी स्थान न था।भाग्यवश गार्डसाहेब काकासाहेब दीक्षित की पहचान के निकल आए और उन्होंने इन दोनों को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया। इस प्रकार सुविधापूर्वक यात्रा करते हुए वे कोपरगाँव स्टेशन पर उतरे । स्टेशन पर ही शिरडी को जानेवाले नानासाहेब चाँदोरकर को देखकर उनके हर्ष का पारावारा न रहा। शिरडी पहुँचकर उन्होंने मस्जिद में जाकर बाबा के दर्शन किए। तब बाबा कहने लगे कि “ मैं बड़ी देर से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। शामा को मैंने ही तुम्हें लाने के लिए भेज दिया था।” इसके पश्चात् काकासाहेब ने अनेक वर्ष बाबा की संगति में व्यतीत किए। उन्होंने शिरडी में एक वाड़ा (दीक्षित वाड़ा) बनवाया, जो उनका प्रायः स्थायी घर हो गया। उन्हें बाबा से जो अनुभव प्राप्त हुए , वे सब स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पाठकों से प्रार्थना है कि वे श्री साईलीला पत्रिका के विशेषांक (काकासाहेब दीक्षित) भाग १२ के अंक ६-९ तक देखे । उनके केवल एक दो अनुभव लिखकर हम यह कथा समाप्त करेंगे। बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया था कि अन्त समय आने पर बाबा उन्हें विमान में ले जाएँगे, जो सत्य निकला। तारीख ५ जुलाई, सन् १९२६ को वे हेमाडपंत के साथ रेल से यात्रा कर रहे थे । दानो में साईबाबा के विषय में बातें हो रहीं थी। वे श्री साईबाबा के ध्यान में अधिक तल्लीन हो गए, तभी अचानक उनकी गर्दन हेमाडपंत के कन्धे से जा लगी और उन्होंने बिना किसी कष्ट तथा घबराहट के अपनी अंतिम श्वास छोड़ दी।

श्री. टेंबे स्वामी

अब हम द्वितीय कथा पर आते हैं; जिससे स्पष्ट होता है कि सन्त परस्पर एक दूसरे को किस प्रकार भ्रातृवत् प्रेम किया करते हैं। एक बार श्री वासुदेवानन्द सरस्वती, जो श्री. टेंबे स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं, ने गोदावरी के तीर पर राजमहेन्द्री में आकर डेरा डाला । वे भगवान् दत्तात्रेय के कर्मकांडी, ज्ञानी तथा योगी भक्त थे। नांदेड़ (निजाम स्टेट) के एक वकील अपने मित्रों के साथ उनसे भेंट करने आए और वार्तालाप करते-करते श्री साईबाबा की चर्चा भी निकल पड़ी। बाबा का नाम सुनकर स्वामीजी ने उन्हें करबद्ध प्रणाम किया और पुंडलकराव (वकील) को एक श्रीफल देकर उन्होंने कहा कि तुम जाकर मेरे भ्राता श्री साई को प्रणाम कर कहना कि न मुझे बिसरे तथा सदैव मुझ पर कृपा दृष्टि रखें । उन्होंने यह भी बतलाया कि सामान्यतः एक स्वामी दूसरे को प्रणाम नहीं करता, परन्तु यहाँ विशेष रूप से ऐसा किया गया है। श्री पुंडलीकराव ने श्रीफल लेकर कहा कि “ मैं इसे बाबा को दे दूँगा तथा आपका सन्देश भी कह दूँगा।” स्वामी ने बाबा को जो ‘ भाई’ शब्द से सम्बोधित किया था, वह बिलकुल ही उचित था। अधर स्वामी जी अपनी कर्मकांडी पद्धति के अनुसार दिनरात अग्निहोत्र प्रज्वलित रखते थे और इधर बाबा की धूनी दिनरात मस्जिद में जलती रहती थी।

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

एक मास के पश्चात् ही पुंडलीकराव अन्य मित्रों सहित श्रीफल लेकर शिरडी को रवाना हुए । जब वे मनमाड पहुँचे तो प्यास लगने के कारण एक नाले पर पानी पीने गए । खाली पेट पानी न पीना चाहिये, यह सोचकर उन्होंने कुछ चिवड़ा खाने को निकाला, जो खाने में कुछ अधिक तीखा-सा प्रतीत हुआ। उसका तीखापन कम करने के लिये किसी ने नारियल फोड़ कर उसमें खोपरा मिला दिया और इस तरह उन लोगों ने चिवड़ा स्वादिष्ट बनाकर खाया । अभाग्यवश जो नारियल उनके हाथ से फूटा, वह वही था, जो स्वामीजी ने पुंडलीकराव को भेंट में देने को दिया था। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें नारियल की स्मृति हो आई । उन्हें यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि भेंट स्वरूप दिए जाने वाला नारियल ही फोड़ दिया गया है। डरते-डरते और काँपते हुए वे शिरडी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने बाबा के दर्शन किए। बाबा को तो यहाँ नारियल के सम्बन्ध में स्वामी से बेतार का तार प्राप्त हो चुका था। इसीलिये उन्होंने पहले से ही पुंडलीकराव से प्रश्न किया कि “ मेरे भाई की भेजी हुई वस्तु लाओ। ” उन्होंने बाबा के चरण पकड़ कर अपना अपराध स्वीकार करते हुये अपनी चूक के लिये उनसे क्षमा याचना की। वे उसके बदले में दूसरा नारियल देने को तैयार थे, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया कि “ उस नारियल का मूल्य इस नारियल से कई गुना अधिक था और उसकी पूर्ति इस साधारण नारियल से नहीं हो सकती ।” फिर वे बोले कि “ अब तुम कुछ चिन्ता न करो । मेरी ही इच्छा से वह नारियल तुम्हें दिया गया तथा मार्ग में फोड़ा है। तुम स्वयं में कर्त्तापन की भावना क्यों लाते हो ? १ कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ कर्म करते समय अपने को कर्त्ता न जानकर अभिमान तथा अहंकार से परे होकर ही कार्य करो, तभी तुम्हारी द्रुत गति से प्रगति होगी। २ कितना सुन्दर उनका यह आध्यात्मिक उपदेश था।

१. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ - गीता- ३/२७ ॥

२. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ गीता ३ ॥ १९ ॥

श्री बालाराम धुरन्धर (१८७८-१९२५)

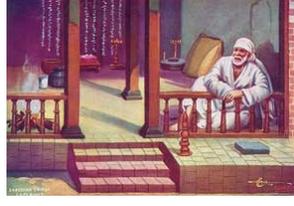
सान्ताकूज, बम्बई के श्री. बालाराम धुरन्धर प्रभु जाति के एक सज्जन थे। वे बम्बई के उच्च न्यायालय में एडवोकेट थे तथा किसी समय शासकीय विधि विद्यालय (Govt Law School) बम्बई के प्राचार्य (Principal) भी थे। उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब सात्विक तथा धार्मिक था। श्री. बालाराम ने अपनी जाति की योग्य सेवा की और इस सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित कराई । इसके पश्चात् उनका ध्यान आध्यात्मिक और धार्मिक विषयों पर गया। उन्होंने ध्यानपूर्वक गीता, उसकी टीका ज्ञानेश्वरी तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया । वे पंढरपुर के भगवान विठोबा के परम भक्त थे। सन् १९१२ में उन्हें श्री साईबाबा के दर्शनों का लाभ हुआ। छः मास पूर्व उनके भाई बाबुलजी और वामनराव ने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किये थे और उन्होंने घर लौटकर अपने मधुर अनुभव भी श्री. बालाराम व परिवार के अन्य लोगों को सुनाए। तब सब लोगों ने शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। यहाँ शिरडी में उनके पहुँचने के पूर्व ही बाबा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि “ आज मेरे बहुत से दरबारीगण आ रहे हैं।” अन्य लोगों द्वारा बाबा के उपरोक्त वचन सुनकर धुरन्धर परिवार को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में किसी को भी इसकी पहले से सूचना न दी थी। सभी ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बैठकर वार्तालाप करने लगे। बाबा ने अन्य लोगों को बतलाया कि “ ये मेरे दरबारीगण हैं, जिनके सम्बन्ध में मैंने तुमसे पहले कहा था।” फिर धुरन्धर भ्राताओं से बोले कि “ मेरा और तुम्हारा परिचय ६० जन्म पुराना है।” सभी नम्र और सभ्य थे, इसलिए वे सब हाथ जोड़े हुए बैठे-बैठे बाबा की ओर निहारते रहे। उनमें सब प्रकार के सात्विक भाव जैसे अश्रुपात, रोमांच तथा कण्ठावरोध आदि जागृत होने लगे और सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् वे सब अपने निवासस्थान पर भोजन को गए और भोजन तथा थोड़ा विश्राम लेकर पुनः मस्जिद में आकर बाबा के पाँव दबाने लगे। इस समय बाबा चिलम पी रहे थे। उन्होंने बालाराम को भी चिलम देकर एक फूँक लगाने का आग्रह किया। यद्यपि अभी तक उन्होंने कभी धूम्रपान नहीं किया था, फिर भी चिलम हाथ में लेकर बड़ी कठिनाई से उन्होंने एक फूँक लागाई और आदरपूर्वक बाबा को लौटा दी। बालाराम के लिए तो यह अनमोल घड़ी थी। वे ६ वर्षों से श्वास-रोग से पीड़ित थे, पर चिलम पीते ही वे रोगमुक्त हो गए। उन्हें फिर कभी यह कष्ट न हुआ। ६ वर्षों के पश्चात् उन्हें एक दिन पुनः श्वास रोग का दौरा आया। यह वही महापुण्यशाली दिन था, जब कि बाबा ने महासमाधि ली। वे गुरुवार के दिन शिरडी आये थे। भाग्यवश उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी उत्सव देखने का अवसर मिल गया। आरती के समय बालाराम को चावड़ी में बाबा का मुखमंडल भगवान् पांडुरंग सरीखा दिखाई पड़ा

श्री साईबाबांच्या शुभाशिर्वादासह

। दूसरे दिन कांकड़ आरती के समय उन्हें बाबा के मुखमंडल की प्रभा अपने परम इष्ट भगवान् पांडुरंग के सदृश ही पुनः दिखाई दी।

श्री. बालाराम धुरन्धर ने मराठी में महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम का जीवनचरित्र लिखा है, परन्तु खेद है कि पुस्तक प्रकाशित होने तक वे जीवित न रह सके। उनके बन्धुओं ने इस पुस्तक को सन् १९२८ में प्रकाशित कराया। इस पुस्तक के प्रारम्भ में पृष्ठ ६ पर उनकी जीवनी से सम्बन्धित एक परिक्षेपक में उनकी शिरड़ी यात्रा का पूरा वर्णन है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु॥



उपसंहार :

अध्याय - ५१ पूर्ण हो चुका है और अब अन्तिम अध्याय (मूल ग्रन्थ का ५२ वाँ अध्याय) लिखा जा रहा है। इसमें हेमाङ्गपंत ने अन्तिम समालोचना की है और उसी प्रकार सूची लिखने का वचन दिया है, जिस प्रकार कि अन्य मराठी धार्मिक काव्यग्रन्थों में विषय की सूची अन्त में लिखी जाती है। अभाग्यवश हेमाङ्गपंत के कागजपत्रों की छानबीन करने पर भी वह सूची प्राप्त न हो सकी। तब बाबा के एक योग्य तथा धार्मिक भक्त ठाणे के अवकाशप्राप्त मामलतदार श्री. बी.व्ही. देव ने उसे रचकर प्रस्तुत किया। पुस्तक के प्रारम्भ में ही विषयसूची देने तथा प्रत्येक अध्याय में विषय का संकेत शीर्षक स्वरूप लिखना ही आधुनिक प्रथा है, इसलिए यहाँ अनुक्रमणिका नहीं दी जा रही है। अतः इस अध्याय को उपसंहार समझना ही उपयुक्त होगा। अभाग्यवश हेमाङ्गपंत उस समय तक जीवित न रहे कि वे अपने लिखे हुए इस अध्याय की प्रति में संशोधन करके उसे छपने योग्य बनाते।

श्री सद्गुरु साई की महानता

“ हे साई, मैं आपकी चरण वन्दना कर आपसे 'शरण' की याचना करता हूँ, क्योंकि आप ही इस अखिल विश्व के एकमात्र आधार हैं। ” यदि ऐसी ही धारणा लेकर हम उनका भजन-पूजन करें तो यह निश्चय है कि हमारी समस्त इच्छायें शीघ्र पूर्ण होंगी और हमें अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाएगी। आज निन्दित विचारों के तट पर माया-मोह के झंझावात से धैर्य रूपी वृक्ष की जड़ें उखड़ गई हैं। अहंकार रूपी वायु की प्रबलता से हृदय रूपी समुद्र में तूफान उठ खड़ा हुआ है, जिसमें क्रोध और घृणा रूपी घड़ियाल तैरते हैं और अहंभाव एवं सन्देह रूपी नाना संकल्प-विकल्पों की संतत भँवरों में निन्दा, घृणा और ईर्ष्यारूपी अगणित मछलियाँ विहार कर रही हैं। यद्यपि यह समुद्र इतना भयानक है तो भी हमारे सद्गुरु साई महाराज उसमें अगस्त्य स्वरूप ही हैं। इसलिए भक्तों को किंचित्मात्र भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सद्गुरु तो जहाज हैं और वे हमें कुशलतापूर्वक इस भयानक भव-समुद्र से पार उतार देंगे।

प्रार्थना

श्री सच्चिदानंद साई महाराज को साष्टांग नमस्कार करके उनके चरण पकड़ कर हम सब भक्तों के कल्याणार्थ उनसे प्रार्थन करते हैं कि “ हे साई! हमारे मन की चंचलता और वासनाओं को दूर करो। हे प्रभो! तुम्हारे श्रीचरणों के अतिरिक्त हममें किसी अन्य वस्तु की लालसा न रहे। तुम्हारा यह चरित्र घर-घर पहुँचे और इसका नित्य पठन-पाठन हो और जो भक्त इसका प्रेमपूर्वक अध्ययन करें, उनके समस्त संकट दूर हों।

फलश्रुति (अध्ययन का पुरस्कार)

अब इस पुस्तक के अध्ययन से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखूँगा। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से मनोवांछित फल की प्राप्ति होगी। पवित्र गोदावरी नदी में स्नान कर, शिरडी के समाधि मन्दिर में श्री साईबाबा की समाधि के दर्शन कर लेने के पश्चात् इस ग्रन्थ का पठन-पाठन या श्रवण प्रारम्भ करोगे तो तुम्हारी तिगुनी आपत्तियाँ भी दूर हो जायेंगी। समय-समय पर श्री साईबाबा की कथा-वार्ता करते रहने से तुम्हें आध्यत्मिक जगत् के प्रति अभिरुचि हो जाएँगी और यदि तुम इस प्रकार नियम तथा प्रेमपूर्वक अभ्यास करते रहे तो तुम्हारे समस्त पाप अवश्य नष्ट हो जायेंगे। यदि संचमुच ही तुम आवागमन से मुक्ति चाहते हो तो तुम्हें साई कथाओं का नित्य पठन-पाठन, स्मरण और उनके चरणों में प्रगाढ़ प्रीति रखनी चाहिये। १ साई कथारूपी समुद्र का मंथन कर उसमें से प्राप्त रत्नों का दूसरों को वितरण करो, जिसे से तुम्हें नित्य नूतन आनन्द का अनुभव होगा और श्रोतागण अधःपतन से बच जाएंगे। यदि भक्तगण अनन्य भाव से उनकी शरण आयें तो उनका “मैं” नष्ट होकर बाबा से अभिन्नता प्राप्त हो जाएँगी, जैसे कि नदी समुद्र में मिल जाती है। यदि तुम तीन अवस्थाओं (अर्थात् -जागृति, स्वप्न और निद्रा) में से किसी एक में भी साई-चिन्तन में लीन हो जाओ तो तुम्हारा सांसारिक चक्र से छुटकारा हो जाएगा

। स्नान कर प्रेम और श्रद्धायुक्त होकर जो इस ग्रन्थ का एक सप्ताह में पठन समाप्त करेंगे, उनके सारे कष्ट दूर हो जाएँगे २ या जो इसका नित्य पठन या श्रवण करेंगे, उन्हें सब भयों से तुरन्त छुटकारा मिल जाएगा।

२. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्य युक्ताउपासते ॥ गीता ९ ॥१४॥

इसके अध्ययन से हर एक को अपनी श्रद्धा और भक्ति के अनुसार फल मिलेगा। परन्तु इन दोनों के अभाव में किसी भी फल की प्राप्ति होना संभव नहीं है। यदि तुम इस ग्रन्थ का आदरपूर्वक पठन करोगे तो श्री साई प्रसन्न होकर तुम्हें अज्ञान और दरिद्रता के पाश से मुक्त कर, ज्ञान, धन और समृद्धि प्रदान करेंगे। यदि एकाग्रचित्त होकर नित्य एक अध्याय ही पढ़ोगे तो तुम्हें अपरिमित सुख की प्राप्ति होगी। इस ग्रन्थ को अपने घर पर गुरु-पूर्णिमा, गोकुल अष्टमी, रामनवमी, वियादशमी और दीपावली के दिन अवश्य पढ़ना चाहिए। यदि ध्यानपूर्वक तुम केवल इसी ग्रन्थ का अध्ययन करते रहोगे तो तुम्हें सुख और सन्तोष प्राप्त होगा और सदैव श्री साई चरणारविंदों का स्मरण बना रहेगा और इस प्रकार तुम भवसागर से सहज ही पार हो जाओगे। इसके अध्ययन से रोगियों को स्वास्थ्य, निर्धनों को धन, दुःखित और पीड़ितों को संपन्नता मिलेगी तथा मन के समस्त विकार दूर होकर मानसिक शान्ति प्राप्त होगी।

मेरे प्रिय भक्त और श्रोतागण ! आपको प्रणाम करते हुए मेरा आपसे एक विशेष निवेदन है कि जिनकी कथा आपने इतने दिनों और महीनों से सुनी है, उनके कलिमलहारी और मनोहर चरणों को कभी विस्मृत न होने दें। जिस उत्साह, श्रद्धा और लगन के साथ आप इन कथाओं का पठन या श्रवण करेंगे, श्री साईबाबा वैसे ही सेवा करने की बुद्धि हमें प्रदान करेंगे। लेखक और पाठक इस कार्य में परस्पर सहयोग देकर सुखी हों।

प्रसाद-याचना

अन्त में हम इस पुस्तक को समाप्त करते हुए सर्वशक्तिमान परमात्मा से निम्नलिखित कृपा या प्रसादयाचना करते हैं-“ हे ईश्वर ! पाठकों और भक्तों को श्री साई-चरणों में पूर्ण और अनन्य भक्ति दो। श्री साई का मनोहर स्वरूप ही उनकी आँखों में सदा बसा रहे और वे समस्त प्राणियों में देवाधिदेव साई भगवान् का ही दर्शन करें। एवमस्तु। ”

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु॥

सप्ताहे पारायणः सप्तम विश्राम

॥ ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः

समाप्त



आरती

आरती साई बाबा । सौख्यदातार जीवां । चरणजतलीं द्यावा
दासा विसावां , भक्तां विसावा । आरती० ॥ जाळुनिया अनंग । स्वस्वरूपीं
राहे दंग मुमुक्षु जनां दावी । निज डोळा श्रीरंग, डोळा श्रीरंग । आरती १ ।
जया मनीं जैसा भाव । तया तैसा अनुभव । दाविसी दयाघना । ऐसी तुझी
ही माव, तुझी ही माव । आरती ० ॥ २ ॥ तुमचे नाम घ्यातां । हरे संसृति
व्यथा । अगाध तव करणीं । मार्ग दाविसी अनाथा, दाविसी अनाथा ।
आरती० ॥ ३ ॥ कलियुगीं अवतार । सगुण ब्रह्म साचार । अवतीर्ण
झालासी । स्वामी दत्त दिगंबर । दत्त दिगंबर । आरती ० ॥ ४ ॥
आठा दिवसां गुरुवारीं । भक्त करीति वारी । प्रभुपद पहावया । भव भय
निवारी । भय निवारी आरती० ॥ ५ ॥ माझा निज द्रव्य ठेवा । तव
चरणरज सेवा । मागणें हेचि आतां । तुम्हां देवाधिदेवा, देवाधिदेवा ।
आरती० (॥ ६ ॥ इच्छित दीन चातक । निर्मल तोय निसुख । पाजावें
माधवा या । सांभाळ आपुली भाक, आपुली भाक । आरती साई बाबा ।
सौख्य दातार जीवा ० ॥ ७ ॥

भावार्थ

हे जीवों को सुख देने वाले साई बाबा ! हम तुम्हारी आरती करते
हैं । अपने दास और भक्तों को अपने चरणों की शीतल छाया में स्थान
दो । प्रदीप्त भावसे तुम सदा आत्मलीन रहते हो और मुमुक्षु जनों को ईश्वर
की प्राप्ति करा देते हो । जैसा जिसका भाव होता है, उसे तुम वैसा ही
अनुभव करा देते हो । हे दयालु ! तुम्हारा कुछ ऐसा ही वैशिष्ट्य है । तुम्हारे
श्रीचरणों का ध्यानमात्र करने से भक्त इस संसार के भय से मुक्त हो जाता
है । तुम सदैव दीन और अनाथों की रक्षा करते रहे हो । तुम्हारी कार्यशैली
अपरंपार है । हे दत्त ! इस कलयुग में तुम सगुण ब्रह्म के रूप में अवतीर्ण
हुए हो । इसीलिए जो भक्त नित्य गुरुवार को तुम्हारे पास आवे, उन्हें
सांसारिक भय से मुक्त करके भगवद्-दर्शन योग्य बनाओ । हे देवाधिदेव !
तुम्हारे चरणकमल ही मेरी सम्पत्ति हैं । जिस प्रकार मेघ स्वाति नक्षत्र की
बूँद से चातक पक्षी की प्यास बुझा देता है, उसी प्रकार माधव (यहाँ अपना
नाम लगायें) की भी प्यास बुझाकर अपने वचनों का पालन करो ।
ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः ॥
ॐ शांति : शांति: शांति:

